ज्ञान शांति मैत्री

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

MBA – 101

प्रबंध के सिद्धांत एवं संगठनात्मक व्यवहार

(एमबीए प्रथम सेमेस्टर)

प्रबंधन विद्यापीठ

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गाँधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र), भारत

विश्य सूची

खण्ड – 1

इकाई – 1 प्रबंध एवं नियोजन **5 – 58**

अध्ययन के उद्देश्य
1.0 प्रस्तावना
1.1 प्रबंध की परिभाषा
1.2 प्रबंध के तत्व
1.3 प्रबंध की विशेषताएँ
1.4 प्रबंध के कार्य
1.5. प्रबंध की प्रकृति
1.6 प्रबंध के सिद्धान्त
1.7 प्रबंध के स्तर
1.8 प्रशासन और प्रबंध
1.9 प्रबंध एक पेशा है
1.10 प्रबन्धकीय भूमिकाएँ
1.11 प्रबंध की विभिन्न विशेषताएँ
सारांश
अभ्यास

इकाई – 2 नियोजन **59 – 82**

अध्ययन के उद्देश्य
2.0 प्रस्तावना
2.1 नियोजन का अर्थ
2.2 नियोजन की विशेषताएँ
2.3 नियोजन का महत्व
2.4 नियोजन की सीमाएँ
2.5 नियोजन प्रक्रिया
2.6 नियोजन के प्रकार
सारांश
अभ्यास

खण्ड – 2

इकाई – 1 निर्णयन **83 – 103**

अध्ययन के उद्देश्य
3.0 प्रस्तावना
3.1 निर्णयन का अर्थ
3.2 निर्णयन की परिभाषाएँ
3.3 निर्णयन की विशेषताएँ
3.4 निर्णयन प्रक्रिया
3.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध
3.6 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी विशेषताएँ
3.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी प्रक्रिया
3.8 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधके लाभ

3.9 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी सीमाएँ
सारांश
अभ्यास

इकाई – 2 पूर्वानुमान एवं संगठन 104 – 115
अध्ययन के उद्देश्य
4.0 प्रस्तावना
4.1 पूर्वानुमान
4.2 पूर्वानुमान की आवश्यकता
4.3 पूर्वानुमान की तकनीक
4.4 संगठन का अर्थ
4.5 संगठन प्रक्रिया
4.6 औपचारिक व अनौपचारिक संगठन
सारांश
अभ्यास

इकाई – 3 अधिकार एवं उत्तरदायित्व, प्रबंध का विस्तार, केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण 116 – 146
अध्ययन का उद्देश्य
5.0 प्रस्तावना
5.1 अधिकार का अर्थ
5.2 उत्तरदायित्व का अर्थ
5.3 अधिकार व उत्तरदायित्व में अंतर
5.4 प्रबंध का विस्तार
5.5 विकेन्द्रीयकरण
5.6 केन्द्रीयकरण
सारांश
अभ्यास

इकाई – 4 अधिकारों का प्रत्यायोजन 147 – 156
अध्ययन के उद्देश्य
6.0 प्रस्तावना
6.1 प्रत्यायोजन की परिभाषाएँ
6.2 प्रत्यायोजन की विशेषताएँ
6.3 प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व
6.4 अधिकारों के प्रत्यायोजन की प्रक्रिया
6.5 प्रत्यायोजन के प्रकार
सरांश
अभ्यास

इकाई – 5 विभागीयकरण, औपचारिक एवं अनौपारिक संगठन 157 – 182
अध्ययन के उद्देश्य
7.0 प्रस्तावना
7.1 विभागीयकरण का अर्थ
7.2 विभागीयकरण का महत्व
7.3 विभागीयकरण का आधार
7.4 औपचारिक संगठन

7.5 अनौपचारिक संगठन

खण्ड – 3

इकाई – 1 समन्वय	**183–195**

अध्ययन के उद्देश्य
8.0 प्रस्तावना
8.1 समन्वय का अर्थ
8.2 समन्वय का महत्व
सारांश
अभ्यास

इकाई – 2 अभिप्रेरण	**196–224**

अध्याय का उद्देश्य
9.0 प्रस्तावना
9.1 अभिप्रेरण का अर्थ तथा परिभाषाएँ।
9.2 अभिप्रेरण की विशेषताएँ।
9.3 अभिप्रेरण की प्रक्रिया।
9.4 अभिप्रेरण का महत्व
9.5 अभिप्रेरण के सिद्धान्त
9.5 अभिप्रेरण की विचारधारा
9.6 मौद्रिक तथा अमौद्रिक अथवा प्रेरणाएं।
सारांश
अभ्यास

इकाई – 3 नियंत्रण एवं प्रबंध अंकेक्षण	**225–249**

अध्ययन के उद्देश्य
10.0 प्रस्तावना
10.1 नियंत्रण का अर्थ
10.2 नियंत्रण का महत्व
10.3 नियंत्रण की सीमाएँ
10.4 नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध
10.5 नियंत्रण की प्रक्रिया
10.6 नियंत्रण तकनीकें
10.7 प्रबंधकीय अंकेक्षण
सारांश
अभ्यास

खण्ड – 4

इकाई – 1 संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत व्यवहार	**250–267**

अध्ययन के उद्देश्य
11.0 प्रस्तावना
11.1 संगठनात्मक व्यवहार
11.2 संगठनात्म व्यवहार की परिभाषाएँ
11.3 संगठनात्मक व्यवहार की परिभाषाएँ

11.4 संगठनात्मकता के मुख्य अंग
11.5 संगठनात्मकता की मूल धारणाएं
11.6 व्यक्तित्व का अर्थ
11.7 व्यक्तित्व की परिभाषाएँ
11.8 व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ
11.9 व्यक्तित्व के निर्धारित घटक
सारांश
अभ्यास

इकाई – 2	नेतृत्व एवं परिवर्तन का प्रबंध	268–310

अध्ययन के उद्देश्य
12.0 प्रस्तावना
12.1 नेतृत्व का अर्थ
12.2 नेतृत्व की परिभाषाएँ
12.3 नेतृत्व की विशेषताएँ
12.4 प्रबंध कला एवं नेतृत्व
12.5 नेतृत्व का महत्व
12.6 एक अच्छे नेता के गुण
12.7 नेतृत्व की शैलियां
12.8 परिवर्तन का प्रबंध
12.9 नियोजित परिवर्तन
सारांश
अभ्यास

इकाई – 3	संघर्श का प्रबंध एव कार्य दबाव	311–341

13.0 प्रस्तावना
13.1 संघर्ष का अर्थ एवं परिणाम
13.2 संघर्ष की प्रकृति
13.3 संघर्ष के प्रकार
13.4 संघर्ष के समाधान की विधियां
13.5 कार्य दबाव का अर्थ
13.6 कार्य दबाव के प्रकार
13.7 कार्य दबाव के कारण
13.8 कार्य दबाव का प्रबन्ध
सारांश
अभ्यास

खण्ड – 1

इकाई – 1 प्रबंध एवं नियोजन

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

1.0 प्रस्तावना

1.5 प्रबंध की परिभाषा

1.6 प्रबंध के तत्व

1.7 प्रबंध की विशेषताएँ

1.8 प्रबंध के कार्य

1.4.1 नियोजन

1.4.2 संगठन

1.4.3 नियुक्तिकरण

1.4.4 निर्देशन

1.4.5 नियंत्रण

1.5. प्रबंध की प्रकृति

1.5.1 प्रबंध विज्ञान के रूप में

1.5.2 प्रबंध कला के रूप में

1.6 प्रबंध के सिद्धान्त

1.7 प्रबंध के स्तर

1.7.1 उच्चस्तरीय प्रबंध

1.7.2 मध्यस्तरीय प्रबन्ध

1.7.3 निम्नस्तरीय प्रबन्ध

1.8 प्रशासन और प्रबंध

1.8.1 प्रशासन और प्रबंध में अंतर

1.8.2 प्रशासन प्रबन्धन में शामिल

1.8.3 प्रबन्धन और प्रशासन के बीच कोई भेद नहीं

1.9 प्रबंध एक पेशा है

1.9.1 व्यवसायीकरण के निहितार्थ

1.10 प्रबन्धकीय भूमिकाएँ

1.11 प्रबंध की विभिन्न विशेषताएँ

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगे :—

- प्रबंध की परिभाषा
- प्रबंध के तत्व, विशेषताएँ और कार्य
- प्रबंध की प्रकृति
- प्रबंध के स्तर
- प्रशासन और प्रबन्धन में अन्तर

1.0 प्रस्तावना

प्रबंध एक संगठित समूह गतिविधि है, जो आदमी के आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एक केन्द्रिय निर्देशन और नियंत्रण एजेंसी व्यापार के लिए चिंता का विषय है। उत्पादक संसाधन सामग्री, श्रम, पूँजी, आयोजन, कौशल, प्रशासनिक क्षमता और प्रबन्धन के उद्यमी को पहल करने के लिए सौंपा जाता है। इस प्रकार प्रबन्धन एक व्यावसायिक उद्यम और प्रभावी नेतृत्व प्रदान करता है। सक्षम प्रबंधन और प्रभावी प्रबन्धकीय नेतृत्व के बिना उत्पादन के संसाधन केवल संसाधन रहते हैं और कभी भी उत्पाद नहीं बन सकते। अर्थव्यवस्था में बढती प्रतिस्पर्धा और बदलते पर्यावरण के तहत, व्यावसायिक उद्य्म की सफलता के लिए योग्य व कुशल प्रबंधकी अवश्यकता होती है। प्रबंधगुणवत्ता समाज और देश के कल्याण को प्रभावित करती है।

1.1 प्रबंध

विभिन्न विद्वानों ने प्रबंध को इसकी विशेषताओं के आधार पर अलग—अलग ढंग से परिभाषित किया है। कुछ विद्वानों ने प्रबंध को 'अन्य लोगों से कार्य करवाने की कला के रूप में परिभाषित किया है तो कुछ ने इसको ''क्रियात्मक रुप'' में समझा है :—

थियो हैमन ने प्रबंधको निम्नलिखित अर्थों में समझाया हैः

(i) <u>**प्रबंध संज्ञा के रूप में :**</u> इस अर्थ में प्रबंधका आशय उन सभी व्यक्तियों से है जो दूसरों से कार्य करवाने में संलग्न हैं, जैसे – संचालक मंडल, प्रमुख संचालक, महाप्रबंधन आदि।

(ii) <u>**प्रबंध प्रक्रिया के रूप मे :**</u> इसका आशय प्रबन्धकों द्वारा किए जाने वाले कार्यों से है। जैसे – नियोजन, संगठन, स्टाफिंग, समन्वय, निर्देशन, नियंत्रण आदि।

(iii) <u>**प्रबंध अनु□ासन के रूप में :**</u> 'प्रबंध' शब्द का उपयोग ज्ञान की शाखा के रूप में भी होता है जिसमें प्रबंध के सिद्धान्तों का एक विषय के रूप में अध्ययन होता है।

(iv) **हेरोल्ड कूल्टज्** के अनुसार, 'प्रबंध औपचारिक रूप से संगठित समूहों में अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करने तथा करवाने की कला है।''

(v) **जार्ज आर. टेरी** के अनुसार, ''प्रबंधएक विशेष प्रक्रिया है जिसमें नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण एवं नियंत्रण सम्मिलित है। इनमें से प्रत्येक में विज्ञान एवं कला दोनों का प्रयोग करते हुए पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए इनका अनुसरण किया जाता है''।

(v) **एफ.डब्लयु टेलर**, ''प्रबंधयह जानने की कला है कि आप क्या करवाना चाहते हैं और उसके बाद यह देखना कि वे इसे सर्वोत्तम एवं मितव्ययिता वाली विधि से करें''।

1.2 प्रबंध के तत्व

उपरोक्त परिभाषाओं से हम प्रबंधके तत्वों को इस प्रकार समझ सकते हैं :–

(i) **संगठनात्मक क्रियाएँ** :–

प्रबंधएक क्रियाओं का समूह है। प्रबंधक्रियाओं और व्यक्तित्व के बीच में समन्वय स्थापित करता है।

(ii) **उद्दे□य (लक्ष्य गठन)** :–

प्रबंधके कुछ परिभाषित लक्ष्य हैं। लक्ष्य कार्यों और व्यक्ति की प्रतिक्रिया पर विचार स्थापित करते हैं। प्रबन्धन की क्रिया आरंभ हाने से पहले लक्ष्य का गठन जरुरी है।

(iii) **लक्ष्य सिद्धि और मूल्यांकन** :–

प्रबंधलक्ष्य उपलब्धि की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करता है।

(iv) **संगठनात्मक अस्तित्व** :–

प्रबंधन इस प्रतियोगी दुनिया में संगठन के अस्तित्व को बनाने और मार्गदर्शन करने के लिए कुशलता से उन्हें उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग करने की उम्मीद करता है। पूर्वानुमान और संगठनात्मक अस्तित्व के लिए प्रबन्धन के महत्वपूर्ण घटक हैं। संगठन को बदलने के लिए और अपनाने के लिए भी प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है।

(v) **कार्यान्वयन :–**

कार्यान्वयन प्रबंधका मार्ग है। नीतियों और कार्यक्रमों को प्रबंधद्वारा लागू करता है।

प्रबंध की विशेताएँ

प्रबंधकी विषेशताएँ निम्नलिखित हैं :–

(i) **यह एक सार्वभौमिक क्रिया है:–**

प्रत्येक व्यावसायिक (औद्योगिक उपक्रम) तथा गैर व्यावसायिक संस्था (शिक्षण संस्थाएं, सरकारी कार्यालय, खेल का मैदान, कृषि–कार्य, सेना, क्लब एवं अन्य सामाजिक संस्थान) को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु मानवीय तथा भौतिक साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने के लिए नियोजन, संगठन, नियुक्तियाँ, निर्देशन, नियंत्रण आदि की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार सभी संस्थाओं में प्रबंधप्रक्रिया एक ही प्रकार से संचालित की जाती है और संचालन में लगभग एक समान सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है।

(ii) **यह एक गतिील व्यवस्था है:–**

वातावरण में लगातार परिवर्तन होने के कारण अनेक पुराने सिद्धान्तों का स्थान नये सिद्धान्त ले चुके हैं। अभी भी सामाजिक, तकनीकी, राजनैतिक व औद्योगिक वातावरण में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार नये सिद्धान्तों की खोज जारी है और किसी सिद्धान्त को अन्तिम नहीं माना जा सकता। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि प्रबंधमें कुछ भी स्थाई नहीं है। परिवर्तनों के विपरीत प्रभाव के डर से प्रबंधन इनका पहले ही अनुमान लगा लेते हैं और अपनी संस्था की नीतियों व योजनाओं को ऐसा मोड़ देते हैं कि कल जब भविष्य में ये परिवर्तित होंगे तब उनकी संस्था के परिणामों को प्रभावित नहीं करेंगे। कई बार प्रबंधन व्यावसायिक वातावरण को अपने पक्ष में बदलने का प्रयास करते हैं।

(iii) **यह एक सामाजिक विज्ञान है:–**

सामाजिक विज्ञान का अभिप्राय ऐसे विज्ञान से है जिसका संबंध प्राणियों से होता है। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों की तरह प्रबंधभी एक सामाजिक विज्ञान है। इसका संबंध भी सामाजिक प्राणी के रूप में 'मनुष्य' से है, जो संवेदनशील, विवकेशील एवं गतिशील प्राणी है तथा निर्जीव पदार्थों की तरह पूर्णतया नियमबद्ध नहीं किया जा सकता है। मनुष्य को आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। यही कारण है कि सामाजिक शास्त्रों का सिद्धान्त, भौतिक शास्त्रों के सिद्धान्तों की तरह कठोर नहीं हो सकते। अतः प्रबंधन इन सिद्धान्तों को अपने मार्ग–दर्शक के रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन अन्तिम निर्णय लेने के लिए उन्हें अन्य बातों को ध्यान में रखना पड़ता है।

(iv) **यह विभिन्न दृष्टियों वाला ज्ञान है :–**

प्रबंधएक विभिन्न दृष्टियों और उपागमों वाला ज्ञान है। इसका अभिप्राय है कि यद्यपि प्रबंधएक विशेष शास्त्र के रूप में विकसित हो चुका है लेकिन यह अनेक शास्त्रों का ऋणी है जिससे इसने ज्ञान और धारणाएँ ग्रहण की हैं। प्रबंधशास्त्र को विकसित करने में जिन दूसरे शास्त्रों का सहारा लिया गया है उनमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, गणित आदि प्रमुख है। प्रबंधशास्त्र ने इन विभिन्न शास्त्रों के विचार एवं धारणाओं को एकत्र करके विभिन्न संस्थाओं के प्रबंधके उद्देश्य से अपनी नई धारणाएँ एवं सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है।

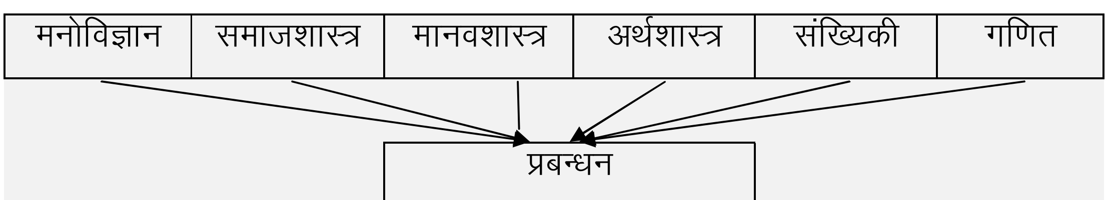

चित्र – 1.1 एक विभिन्न दृष्टियों वाला

(v) **यह विज्ञान और कला दोनों हैं :–**

प्रबंधमें कला तथा विज्ञान दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। कला का अभिप्राय किसी कार्य को व्यवस्थित ढंग से करने की एक पद्धति से है। इस संदर्भ में प्रबंधको कला इसलिए कहा जाता है क्योंकि प्रबंधप्रक्रिया में प्रबंधन को मानव समूह के साथ कार्य करना होता है और एक कुशल प्रबंधन हर कार्य को व्यवस्थित या क्रमबद्ध तरीके से करने का प्रयास करता है, जैसे–मानवीय एवं भौतिक साधनों में समन्वय स्थापित करना। दूसरी ओर प्रबंधको विज्ञान

इसलिए कहा जाता है क्योंकि विज्ञान की ही भांति इसके भी निश्चित सिद्धान्त एवं नियम हैं जो प्रायः सामान्य रूप से लागू होते हैं। उदाहरण के लिए कार्य–विभाजन एवं विशिष्टीकरण का सिद्धान्त सभी क्षेत्रों में लागू होते हैं। इस सिद्धांत का अभिप्राय है कि यदि कार्य–विभाजन योग्यता एवं रुचि के अनुसार किया जाये तथा एक व्यक्ति को बार–बार एक ही कार्य सौंपा जाये तो उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। अतः प्रबंधकला एवं विज्ञान दोनों ही है।

(vi) **यह एक अदृ□य भक्ति है** :–

प्रबंधएक ऐसी शक्ति है जिसको प्रत्यक्ष या मूर्त रूप में नहीं देखा जा सकता, केवल संस्था की सफलता के मूल्यांकन के आधार पर इसकी अनुभूति की जा सकती है। उदाहरण के लिए कोई संस्था उत्तरोतर उन्नति की ओर अग्रसर है तो समझा जायेगा कि प्रबंधअच्छा है। इसके विपरीत यदि कोई संस्था अवनति की ओर जा रही है तो प्रबंधकी असफलता का संकेत मिलता है। अतः प्रबंधको अमूर्त, अदृश्य या अप्रत्यक्ष शक्ति की संज्ञा दी जा सकती है।

(vii) **यह एक उद्दे□य परक प्रक्रिया है** :–

प्रत्येक संगठन की स्थापना किसी न किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु की जाती है। प्रबंधएक ऐसा माध्यम/शक्ति है जो इन उद्देश्यों को सरल बना देता है। प्रबंधन अपने विशेष ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर भावी घटनाओं का पूर्वानुमान लगाता है व योजनाएँ बनाता है। वह अधीनस्थों की कार्य–प्रगति पर लगातार नज़र रखता है और उनका मार्ग–दर्शन करता है। समय–समय पर उन्हें अभिप्रेरित करता है और अन्ततः संगठन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 प्रबंध से आप क्या समझते हैं? प्र.2 प्रबंध के किन्हीं तीन तत्वों के नाम बताओ प्र.3 प्रबंध की कोई तीन विशेषताएँ बताइये।

1.4 प्रबंध के कार्य

प्रबंध को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रबंध प्रक्रिया के अन्तर्गत (नियोजन, संगठन, नियुक्तियाँ, निर्देशन एवं नियंत्रण) एक दूसरे से संबंधित क्रियाओं को सम्मिलित

किया जाता है। इन क्रियाओं को ही प्रबंध के कार्यों या तत्वों के नाम से जाना जाता है। प्रबंध के कार्य निम्नलिखित हैं:–

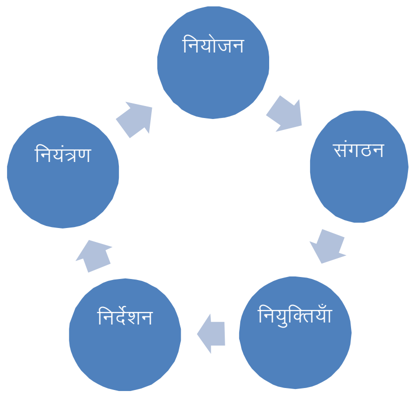

चित्र – 1.2 प्रबंध के कार्य

(i) **नियोजन**

इसका अभिप्राय कुछ करने से पहले सोचना है। अन्य शब्दों में निर्धारित परिणाम प्राप्त करने के लिए भावी कार्यक्रम की रुपरेखा तैयार करना, नियोजन कहलाता है। नियोजन के अर्न्तगत यह निश्चित किया जाता है कि क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है, तथा किस व्यक्ति द्वारा किया जाना है। यदि कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व इन सभी बातों पर गहन सोच–विचार न किया जाए तो व्यवसाय के उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

नियोजन एक लम्बी प्रक्रिया है जिसे पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं–

- उद्देश्य निर्धारित करना
- पूर्वानुमान लगाना
- विकल्प का चयन करना
- समीक्षा करना
- सीमाएँ विकसित करना
- योजना को लागू करना।

(ii) **संगठन:–**

इसका अभिप्राय सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न अंगों में मैत्रीपूर्ण समायोजन करना है। प्रबंधके प्रथम कार्य 'नियोजन' को कार्यरूप देने के लिए कार्य–भूमिकाओं का एक ढांचा

बनाना तथा कायम रखना जरुरी है। कार्य–भूमिकाओं के इस ढांचे का तैयार करना ही संगठन कहलाता है। नियोजन तो किसी विचार को लिख देना मात्र ही है, लेकिन इस विचार को वास्तविकता में बदलने के लिए समूह की आवश्यकता होती है तथा मानव समूह को एक व्यवस्था में बांधने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण कार्य को विभिन्न छोटे–छोटे कार्यों में बांटना इन कार्यों को विशेष पदों में जोड़ना, विभिन्न पदों को विभाग के रूप में एकीकृत करना, विभिन्न पदों पर नियुक्त होने वाले कर्मचारियों के अधिकार एवं दायित्व स्पष्ट करना, तथा विभिन्न पदों के मध्य संबंधों की स्पष्ट व्याख्या करना सम्मिलित है।

प्रबंधके संगठन कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैंः–

- कार्य की पहचान तथा विभाजन
- विभागीकरण
- कार्य सौंपना
- सूचनाएँ प्रेषित करने के लिए संबंध स्थापित करना

(iii) **नियुक्तिकरणः**–

इसका अभिप्राय पदों को लोगों से भरना और उन्हें भरे रहने देना है। नियोजन द्वारा विचारों का लिखित रूप दिया जाता है। संगठन इन विचारों को वास्तविकता में बदलने के उद्देश्य से विविध पदों का स्वरूप तैयार करता है तथा नियुक्तिकरण के अन्तर्गत इन पदों को व्यक्तियों से भरा जाता है ताकि कार्यों का निष्पादन किया जा सके। इस प्रकार नियुक्तिकरण (स्टाफिंग) प्रक्रिया द्वारा संगठन के सभी स्तरों पर उपयुक्त, योग्य एवं शिक्षित अधिकारी एवं कर्मचारी उपलब्ध कराये जाते हैं। क्योंकि संगठन की सफलता प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कुशलतापूर्वक किए गए कार्य–निष्पादन पर आधारित है इसलिए प्रबंधके स्टाफिंग कार्य का महत्व और बढ़ गया है। नियुक्तिकरण कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं :

- मानव शक्ति आवश्यकताओं का आकलन
- भर्ती
- चयन
- कार्य पर लगाना
- प्रशिक्षण एवं विकास।

(iv) **निर्देशन** :–

इसका अभिप्राय संगठन में मानव संसाधन को निर्देश देना, उनका मार्गदर्शन करना, संदेशवाहन करना व उसे अभिप्रेरित करना है। निर्देशन में निम्नलिखित चार क्रियाओं को शामिल किया गया है:–

➢ **पर्यवेक्षण** :–

इसका अभिप्राय अपने अधीनस्थों के दिन–प्रतिदिन के काम की प्रगति की देखभाल करने एवं उनका मार्गदर्शन करने से है। पर्यवेक्षण, निर्देशन कार्य का एक महत्वपूर्ण तत्व है। पर्यवेक्षण में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि यह अधिकारी एवं अधीनस्थ में आमने–सामने होता है।

➢ **सन्देशवाहन** : –

इसका अभिप्राय तथ्यों, विचारों, भावनाओं आदि को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हस्तांतरण करने व समझने की कला से है। एक प्रबंधन को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का लगातार यह बताना पड़ता है कि उन्हें क्या करना है, तथा कब करना है तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को जानना भी जरुरी है। यह सब करने के लिए प्रभावपूर्ण संचार व्यवस्था का विकास किया जाना आवश्यक है। संदेशवाहन आपसी समझ को बढ़ाकर सहयोग की भावना पैदा करना है जिससे संगठन में समन्वय का वातावरण विकसित होता है।

➢ **नेतृत्व** :–

इसका अभिप्राय दूसरों को इस ढंग से प्रभावित करने से है ताकि वे वही करें जो नेतृत्व चाहे। निर्देशन में नेतृत्व की मुख्य भूमिका रहती है। केवल नेतृत्व गुण के माध्यम से ही एक प्रबंधन अपने अधीनस्थों में विश्वास पैदा कर सकता है तथा उसमें उत्साह भर सकता है।

➢ **अभिप्रेरणा** :–

इसका अभिप्राय उस प्रक्रिया से जो वांछित उद्देश्य प्राप्ति हेतु लोगों में उत्तेजना पैदा करता है।

(v) **नियंत्रण** :–

इसका अभिप्राय वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के नज़दीक लाना है। इसके अन्तर्गत प्रबंधन यह देखते हैं कि कार्य निश्चित योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं। वास्तविक परिणामों का पूर्व–निर्धारित प्रमापों के साथ मिलान करके विचलनों का पता लगाया जाता है। इसे बाद नकारात्मक विचलनों के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है ताकि

प्राप्त परिणामों व इच्छित परिणामों के अन्तर को न्यूनतम किया जा सके। अतः नियंत्रण प्रक्रिया के लागू होने से कार्य की प्रगति में आने वाली सभी बाधाएँ दूर हो जाती है और सभी व्यक्तियों के प्रयास इच्छित दिशा में अग्रसर होने लगते हैं। निष्कर्ष के रूप में प्रक्रिया के चार मुख्य तत्व हैंः–

- प्रमापों का निर्धारण
- वास्तविक प्रगति का मापन
- वास्तविक प्रगति की पूर्व निर्धारित प्रमापों से तुलना
- सुधारात्मक कार्यवाही करना।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	'कुछ करने से पहले सोचना,' यह प्रबंधका कौन सा कार्य है?
प्र.5	संगठन और नियुक्तियाँ में क्या अंतर है?
प्र.6	क्या नियंत्रण एवं नियोजन जुड़े हुए हैं?

1.9 प्रबंध की प्रकृति

प्रबंधकी प्रकृति के संबंध में एक विवाद यह है कि प्रबंधविज्ञान है अथवा कला। कुछ प्रबंधविशेषज्ञ इसे केवल विज्ञान मानते हैं तो कुछ इसे कला की श्रेणी में रखते हैं। यह विवाद बहुत पुराना एवं भ्रमपूर्ण है। प्रबंधकी प्रकृति के इस तथ्य को समझने के लिए सर्वप्रथम विज्ञान एवं कला का अर्थ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है।

1.5.1 प्रबंध विज्ञान के रूप मेंः–

विज्ञान वह क्रमबद्ध ज्ञान समूह है जो मनुष्य द्वारा अवलोकन एवं प्रयोगों के आधार पर प्राप्त किया जाता है। और जिसको प्रमाणित करना सम्भव है। विज्ञान की मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैंः–

- **जी.आर.टेरी**. के शब्दों में 'विज्ञान किसी तथ्य, विषय या अध्ययन के उद्देश्य का सामान्य सत्यों की जानकारी के सन्दर्भ में संग्रहीत एवं स्वीकृत क्रमबद्ध ज्ञान है'।
- **केन्ज** के अनुसारः 'विज्ञान वह क्रमबद्ध ज्ञान–समूह है जो कारण और परिणाम के बीच में संबंध स्थापित करता है'।

विज्ञान की विशेषताएँ

– व्यवस्थित ज्ञान समूह
– तथ्यों के संग्रह, विश्लेषण एवं प्रयोगों पर आधारित
– सार्वभौमिक प्रयोग
– कारण एवं परिणाम
– परिणामों की वैधता की जांच एवं पूर्वानुमान सम्भव

प्रबंध में विज्ञान की उपरोक्त सभी विशेषताएँ हैं। किंतु, क्योंकि प्रबंध एक सामाजिक क्रिया है और मानव संसाधन से चलता है, कारण एवं परिणाम की विशेषता इस पर लागू नहीं होती। अतः प्रबंध पूर्णतः विज्ञान नहीं है।

1.5.2 प्रबंध एक कला के रूप में :–

कला का अभिप्राय ज्ञान के सैद्धान्तिक प्रयोग से है। किसी कार्य को सर्वोत्तम विधि से करना ही कला है। कला किसी कार्य को करने की विधि निश्चित करती है और यह बताती है कि उद्देश्यों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। कला एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है क्योंकि प्रत्येक कलाकार का काम करने का अपना अलग तरीका होता है।

जी.आर.टेरी. के अनुसार, ''चातुर्य के प्रयोग से इच्छित परिणाम प्राप्त करना ही कला है।''

कला की विशेषताएँ

– व्यक्तिगत कुशलता
– व्यावहारिक ज्ञान
– सार्थक परिणाम प्राप्ति
– अभ्यास द्वारा विकास
– रचनात्मक शक्ति।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रबंधविज्ञान और कला दोनों हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.7	क्या प्रबंध सम्पूर्ण विज्ञान है?
प्र.8	क्या प्रबंध कला है?

1.10 प्रबंध के सिद्धान्त

आज व्यवसाय ने विस्तृत रूप धारण कर लिया है जिसके कारण दिन– प्रतिदिन के कार्यों में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं और उपक्रम के प्रबन्धकों को इन समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। समस्याओं का समाधान करने एवं व्यवसाय को कुशलतापूर्वक तथा ठीक तरीके से चलाने के लिए प्रबन्धकों को मार्ग–दर्शन की जरुरत होती है। प्रबंधके सिद्धान्त प्रबन्धकों का मार्ग–दर्शन करते हैं। प्रबंधके सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने से पहले सिद्धान्त शब्द का अर्थ समझना जरुरी है। विभिन्न विद्वानों ने सिद्धान्त को निम्न प्रकार से पारिभाषित किया है :–

(i) **जी.आर.टेरी** के अनुसार, ''सिद्धान्त एक आधारभूत कथन अथवा सत्य है जो विचार या कार्य का मार्ग–दर्शन करता है''।

(ii) **ऐडविन. वी. फिलिप्पो** के अनुसार, ''सिद्धान्त एक आधारभूत सत्य होता है और सामान्यतः यह कारण एवं परिणाम में सम्बन्ध की व्याख्या करता है''।

(iii) **कूण्टज़ तथा डोनेल** ने प्रबन्धकीय सिद्धान्तों की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''प्रबन्धकीय सिद्धान्त सामान्य वैधता के आधारभूत सत्य हैं जो प्रबन्धकीय क्रियाओं के परिणामों का पूर्वानुमान लगाने की क्षमता रखते हैं।''

सिद्धान्त की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि ये किसी विषय के ऐसे आधारभूत सत्य के रूप में होते हैं जो कारण एवं परिणाम के संबंध को व्यक्त करते हैं और इनको तैयार करने में विशेषज्ञों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

1.6.2 प्रबंध के सिद्धान्तों की प्रकृति

प्रबंध के सिद्धान्तों की प्रकृति निम्न तथ्यों से स्पष्ट होती है :–

(i) **सार्वभौमिक अनुकूलता**ः सार्वभौमिकता का अभिप्राय उस सत्य से है जो सभी क्षेत्रों (व्यावसायिक एवं गैर–व्यावसायिक) में समान रूप से लागू होता है और प्रबंधके सिद्धान्तों में यह गुण विद्यमान है। प्रत्येक व्यावसायिक (औद्योगिक उपक्रम) तथा गैर–व्यावसायिक संस्था (शिक्षण संस्थाएं, खेल का मैदान, कृषि –फार्म, सेना, क्लब एवं अन्य सामाजिक संस्थान) सभी को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु लगभग एक समान सिद्धान्तों को अपनाना होता है।

(ii) **सामान्य मार्ग–निर्देशन**ः प्रबंधके सिद्धान्त भौतिक एवं रसायन शास्त्रों के सिद्धान्तों की भांति कठोर नहीं है। भौतिक एवं रसायन शास्त्रों के सिद्धान्तों को जैसा लिखा गया है वे उसी

भांति पूर्णरूप से खरे उतरते हैं, जबकि प्रबंधके सिद्धान्त सामान्य मार्ग–निर्देशन के रूप में होते हैं और इनको कठोरता से लागू नहीं किया जा सकता।

(iii) **अभ्यास एंव प्रयोगों द्वारा निर्धारण** : प्रबंधके सिद्धान्त पेशेवर लोगों के सामने उपस्थित हुई अनेक समस्याओं के परिणाम हैं। पहले समस्याएँ उत्पन्न हुई, फिर उनके समाधान का प्रयास किया गया तथा इसी प्रयास में अनेक शोधकार्य सम्पन्न हुए और अंततः समाधान ढूंढ लिए गए। इस प्रकार अभ्यास द्वारा ढूंढे गए समाधानों को ही हम प्रबंधके सिद्धान्त के रूप में जानते हैं।

(iv) **लोचशीलता** : प्रबंधके सिद्धान्त जो आज उपलब्ध हैं वे अन्तिम सत्य के रूप में नहीं हैं। जैसे–जैसे राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं और नई– नई समस्याएँ सामने आ रही हैं तो पुराने सिद्धान्तों में सुधार किए जा रहे हैं और नए सिद्धान्तों का जन्म हो रहा है। अतः प्रबंधके सिद्धान्त गतिशील प्रकृति के हैं अर्थात उन्हें स्थाई नहीं कहा जा सकता।

(v) **मुख्यतः व्यवहारात्मकः** प्रबंधके सिद्धान्तों का सीधा संबंध मानवीय व्यवहार से है। प्रबंधके अंतर्गत मुख्य रूप से मानव का ही प्रबंधकिया जाता है और मानव एक सामाजिक प्राणी है जिसकी अपनी इच्छाएँ, स्वभाव व अपेक्षाएँ होती हैं। अर्थात उसे किसी बंधन में नहीं बांधा जा सकता है। यही कारण है कि प्रबंधके सिद्धान्त मानवीय व्यवहार से प्रभावित होते हैं और कई बार यही मानवीय व्यवहार प्रबंधके सिद्धान्तों के बीच में अवरोध बन कर खड़ा हो जाता है। उदाहरण के लिए कार्य–विभाजन का सिद्धान्त कुशलता वृद्धि के लिए अपनाया जाता है लेकिन एक ही काम को बार–बार करते रहने से व्यक्ति ऊबने लगता है (यही मानवीय व्यवहार है) और कार्यकुशलता कम हो जाती है। अतः प्रबंधके सिद्धान्तों के सीमित उपयोग होने की प्रकृति है।

(vi) **कारण व परिणाम संबंध** : प्रबंधके सिद्धान्त कारण व परिणाम में संबंध स्थापित करते हैं। अर्थात ये स्पष्ट करते हैं कि यदि किसी विशेष परिस्थिति में एक विशेष ढंग से काम किया जाए तो उसके ये परिणाम होंगे। उदाहरण के लिए, यदि कार्य–विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार, सम्पूर्ण कार्य को अनेक भागों में बांट दिया जाए और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि एवं योग्यता के अनुसार कार्य सौंपा जाए तो कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। यहां काम का बंटवारा कारण है और कार्यकुशलता में वृद्धि परिणाम। प्रबंधके अन्य सिद्धान्त भी इसी प्रकार कारण व परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

(vii) **अनिश्चित** : प्रबंधके सिद्धान्त निश्चित नहीं हैं। इन पर परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः परिस्थितियों के अनुसार ही इन्हें लागू करने अथवा न करने का निर्णय लिया जाता है। उदाहरण के लिए, कार्य–विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार एक कर्मचारी को कुल काम का एक विशेष हिस्सा ही बार –बार सौंपना चाहिए ताकि उसकी कुशलता में वृद्धि हो। लेकिन यदि एक ही काम को बार–बार करने में वह तंग आ चुका है तो इस सिद्धान्त को लागू करने से लाभ नहीं होता। अतः इसमें परिवर्तन की आवश्यकता होगी।

1.6.3 प्रबंध के आधारभूत सिद्धान्त

अपने–अपने अनुभव एवं शोधकार्यों के आधार पर विभिन्न विशेषज्ञों ने प्रबंधके अलग–अलग सिद्धान्तों की व्याख्या की है। फ्रांस के **हेनरी फेयोल** ने अपनी पुस्तक '**जनरल एण्ड इन्डस्ट्रीयल मैनेजमैंट**' में प्रबंधके 14 सिद्धान्तों का वर्णन किया है। उसने प्रबंधके सिद्धान्तों तथा तत्वों में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रबंधके सिद्धान्त आधारभूत सत्य हैं और कारण एवं परिणाम में संबंध स्थापित करते हैं जबकि प्रबंधके तत्व इसके कार्यों की ओर संकेत करते हैं। प्रबंधसिद्धान्तों को प्रस्तुत करते हुए **फेयोल** ने दो बातों पर अधिक जोर दिया है। प्रथम, प्रबंधके सिद्धान्तों की सूची बहुत बड़ी नहीं होनी चाहिए, बल्कि सुझावात्मक होनी चाहिए तथा केवल ऐसे सिद्धान्तों की व्याख्या की जानी चाहिए जो अधिकतर परिस्थितियों में लागू होते हों। द्वितीय, प्रबंधके सिद्धान्त कठोर नहीं बल्कि लचीले होने चाहिए, अर्थात आवश्यकता पड़ने पर उनमें आसानी से परिवर्तन किया जा सके। **फेयोल** द्वारा प्रमुख 14 सिद्धान्त निम्न हैंः–

(i) **कार्य–विभाजनः** फेयोल का यह सिद्धान्त बताता है कि यथासम्भव संपूर्ण कार्य को विभिन्न भागों में बांट देना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार कार्य का एक भाग ही सौंपा जाना चाहिए, न कि एक व्यक्ति को संपूर्ण कार्य। जब एक व्यक्ति बार–बार संपूर्ण कार्य के एक हिस्से को करेगा तो धीरे–धीरे वह उस कार्य का विषेशज्ञ बन जाएगा और परिणाम स्वरूप विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होंगे।

(ii) **अधिकार एवं उत्तरदायित्वः** इस सिद्धान्त के अनुसार, अधिकार एवं उत्तरदायित्व साथ–साथ चलते हैं। अधिकार एवं उत्तरदायित्व के साथ– साथ चलने का अभिप्राय यह है कि जब किसी व्यक्ति को कोई भी कार्य सौंपा जाता है और हम उस कार्य के परिणाम के प्रति उसको उत्तरदायी भी ठहराना चाहते हैं, तो ऐसा तभी संभव है यदि उत्तरदायित्व को निभाने

के लिए पर्याप्त अधिकार भी उसे सौंपे गए हों। अधिकारों के अभाव में किसी व्यक्ति का कार्य के प्रति उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं होगा। **फेयोल** के शब्दों में, ''अधिकारों का परिणाम ही उत्तरदायित्व है। यह अधिकार का स्वाभाविक परिणाम और आवश्यक रूप में अधिकार का ही दूसरा पहलू है तथा जब भी अधिकारों का प्रयोग किया जाता है, उत्तरदायित्व का जन्म स्वतः ही हो जाता है''।

(iii) **अनुशासन** : किसी भी कार्य का सफलतापूर्वक निष्पादन करने के लिए अनुशासन होना आवश्यक है। **फेयोल** के अनुसार, अनुशासन से अभिप्राय आज्ञाकारिता, अधिकारों के प्रति श्रद्धा तथा निर्धारित नियमों का पालन करने से है। सभी स्तरों पर अच्छी पर्यवेक्षण व्यवस्था प्रदान करके, नियमों की स्पष्ट व्याख्या करके एवं पुरस्कार एवं दण्ड पद्धति को लागू करके अनुशासन स्थापित किया जा सकता है। प्रबंधन स्वयं को अनुशासित करके अधीनस्थों के लिए एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

(iv) **आदेश की एकता** : प्रबंधके इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी को एक समय पर केवल एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए और वह कर्मचारी उसी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। यदि एक व्यक्ति को आदेश देने वाले कई अधिकारी होंगे तो वह यह समझ नहीं पायेगा कि किसके आदेश को प्राथमिकता दे और इस प्रकार अपने–आप को भ्रमित स्थिति में पाता है। ऐसी व्यवस्था के चलते अधीनस्थों की कार्यकुशलता कम होती है। दूसरी ओर, एक से अधिक अधिकारी होने पर प्रत्येक चाहेगा कि उसके आदेश का पालन हो। ऐसी स्थिती में उनमें झगड़े की संभावना रहती है। परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में भी कमी आती है।

आदेश की एकता के सिद्धान्त को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है:

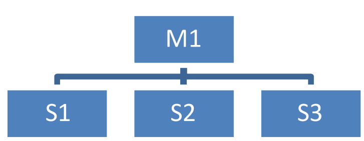

चित्र 1.3 आदेश की एकता

प्रथम चित्र में S_1,S_2 व S_3 तीनों अधीनस्थों का एक ही प्रबंधन M_1 है। S_1 को केवल M_1 से आदेश प्राप्त होता है और इसी तरह S_2 व S_3 को भी। यहां आदेश की एकता के सिद्धान्त का पालन किया जा रहा है। अतः यह सही दृष्टिकोण है।

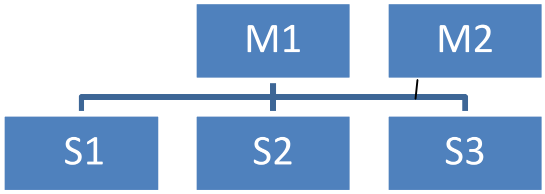

चित्र 1.3 आदेश की एकता की अवहेलना

द्वितिय चित्र में S_1,S_2 व S_3 तीनों अधीनस्थों को आदेश देने वाले M_1व M_2 दो प्रबंधन हैं। जैसे S_1 को एक ही समय पर M_1 व M_2 दोनों से आदेश प्राप्त होते हैं। (यही स्थिति S_2 व S_3 की भी है) वह समझ नहीं पाएगा कि किसके आदेश को प्राथमिकता दे। दोनों ही प्रबंधन चाहेंगे कि पहले उसके आदेश का पालन हो। इसी बात को लेकर उनमें भी मनमुटाव होगा। यहां आदेश की एकता के सिद्धान्त की अवहेलना हो रही है। अतः यह एक गलत दृष्टिकोण है।

धनात्मक प्रभाव

- अधीनस्थों के लिए भ्रमित स्थिति पैदा नहीं होती।
- अधीनस्थों की कार्यकुशलता में वृद्धि।
- अधिकारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि।
- उत्तरदायित्व निर्धारण में आसानी।
- सौहार्दपूर्ण वातावरण।

टूल बाक्स — 1

आदेश की एकता एवं निर्देश की एकता

इस संबंध में फेयोल ने कहा है कि, ''एक संगठन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए निर्देश की एकता महत्वपूर्ण है जबकि कर्मचारियों की कुशलता को बढ़ाने के लिए आदेश की एकता आवश्यक है''।

5. **निर्देश की तुलना** : इस सिद्धान्त का अभिप्राय है कि संगठन में सभी कार्यों का लक्ष्य एक ही होना चाहिए। सभी क्रियाएं एक ही उद्देश्य को पाने के लिए हों।

यहां आदेश की एकता तथा निदेश की एकता में अंतर स्पष्ट करना जरुरी है। आदेश की एकता से अभिप्राय यह है कि एक कर्मचारी को आदेश देने वाला एक समय पर एक ही व्यक्ति होना चाहिए तथा निर्देश की एकता का अर्थ है कि समान उद्देश्यों वाली सभी क्रियाओं पर नियंत्रण करने वाला एक ही व्यक्ति होना चाहिए। इस संबंध में फेयोल ने कहा है, ''एक संगठन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए आदेश की एकता आवश्यक है''।

धनात्मक प्रभाव

- एक अधिकारी के एक जैसी क्रियाओं से संबंधित होने के कारण विशिषटीकरण से लाभ।
- संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि।
- उदेश्य प्राप्ति में आसानी।
- क्रियाओं में एकरूपता से समन्वय में मदद।

आदेश की एकता तथा निर्देश की एकता में अंतर

अंतर का आधार	आदेश की एकता	निर्देश की एकता
1. अर्थ	इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी को एक समय पर केवल एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए और वह कर्मचारी उसी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।	इस सिद्धान्त के अनुसार, समान उद्देश्य वाली विभिन्न क्रियाएँ एक ही अध्यक्ष के अधीन पूरी की जानी चाहिए और उनके लिए एक ही योजना बनाई जानी चाहिए।
2. उदेश्य	इसका उद्देश्य दोहरी अधीनस्थता को रोकना है	इसका उद्देश्य क्रियाओं के अनदेखा होने को रोकना है।
3. प्रभाव	इससे कर्मचारी व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होते हैं।	इससे पूरा संगठन प्रभावित होता है।

(6) **व्यक्तिगत हित सामान्य हित के अधीनः** इस सिद्धान्त को 'व्यक्तिगत हित पर सामान्य हित की प्राथमिकता' का नाम दिया जा सकता है। इस दृष्टि सामान्य हित अथवा संस्था का हित

ही सर्वोपरि है। यदि सामान्य हित व व्यक्तिगत हित को प्राथमिकता के क्रम में रखने के लिए कहा जाए तो निश्चित रूप से सामान्य हित को ऊपर रखा जाएगा : जैसे– एक प्रबंधन को काई भी निर्णय लेने से व्यक्तिगत रूप से हानि होती है लेकिन संस्था को भारी लाभ–तो संस्था के लाभ को प्राथमिकता देते हुए निर्णय लेना चाहिए। इसके विपरीत, यदि किसी निर्णय से प्रबंधन को व्यक्तिगत लाभ होता है लेकिन संस्था को भारी हानि–तो ऐसा निर्णय नहीं लेना चाहिए।

उदाहरण के लिए, एक कम्पिनी के क्रय प्रबंधन को 100 टन कच्चा माल क्रय करना है। बाज़ार में अन्य पूर्तिकर्ताओं के साथ ही उसका बेटा भी उस कच्चे माल की पूर्ति करता है। प्रबंधन कच्चे माल को अपने बेटे की फर्म से बाजार भाव से अधिक पर क्रय कर लेता है। इससे प्रबंधन को व्यक्तिगत रूप से लाभ होगा लेकिन कम्पिनी को भारी हानि। यह अवांछनीय स्थिति है।

धनात्मक प्रभाव

- मानवता का पालन
- संस्था के लाभ से सभी को लाभ।
- संस्थागत उद्देश्यों की प्राप्ति।
- व्यक्तिगत एवं संस्थागत उद्देश्यों में समन्वय।

(7) **कर्मचारियों का पारिश्रमिक** : **फेयोल** का मत है कि कर्मचारियों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उचित होना चाहिए ताकि कर्मचारियों व मालिकों दोनों को अधिकतम संतुष्टि मिल सके। प्रबंधन का कर्तव्य है कि वह सुनिश्चित करे कि सभी को कार्य के अनुसार पारिश्रमिक दिया जा रहा है। यदि कर्मचारियों को उनकी सेवाओं का उचित प्रतिफल नहीं दिया जाता है तो वे कार्य को अपनी पूरी क्षमता, लगन व ईमानदारी से नहीं करेंगे। परिणामस्वरूप संस्था को असफलता का सामना करना पड़ेगा। उचित प्रतिफल अनेक तत्वों, जैसे–जीवन–स्तर की लागत, श्रमिकों की मांग, उनकी योग्यता आदि पर निर्भर करता है। फेयोल का कहना है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए सामान्य पारिश्रमिक के अतिरिक्त मौद्रिक एवं अमौद्रिक प्रेरकों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए, माना कि महंगाई दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दूसरे, कम्पनी अच्छे लाभ अर्जित कर रही है। ऐसी स्थिति में बिना मांगे ही कर्मचारियों के पारिश्रमिक में वृद्धि कर देनी

चाहिए। ऐसा न करने पर कर्मचारी मौका मिलते ही कम्पनी को छोड़ देंगे। पुनः भर्ती पर खर्च करना पड़ेगा जिससे कम्पनी को हानि होगी।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारियों के प्रोत्साहन व संतुष्टि में वृद्धि।
- कर्मचारियों में समर्पण भावना का विकास।
- श्रम–परिवर्तन दर में कमी।

(8) **केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण** : इस सिद्धान्त के अनुसार, अधिकारियों को चाहिए कि पूर्ण केंद्रीकरण के स्थान पर प्रभावी केंद्रीकरण को अपनाएं। प्रभावपूर्ण केंद्रीकरण से फेयोल का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि अधिकारों को पूर्ण रूप से केंद्रित कर दिया जाए, बल्कि उनका मानना यह है कि महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार अधिकारियों को अपने पास रखने चाहिएं जबकि दैनिक व कम महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार अधीनस्थों को सौंप देना चाहिए। केंद्रीकरण व विकेंद्रीकरण का अनुपात विभिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग हो सकता है। जैसे–एक छोटे व्यवसाय में केंद्रीकरण व बड़े व्यवसाय में विकेंद्रीकरण की मात्रा अधिक रखना लाभदायक रहता है।

उदाहरण के लिए, उद्देश्यों एवं नितीयों के निर्धारण, व्यवसाय के विस्तार, आदि के निर्णय लेने के अधिकार अधिकारियों के पास सुरक्षित रहने चाहिए, दूसरी ओर, कच्चा माल क्रय करने, कर्मचारियों को छुटटी देने, आदि के अधिकार अधीनस्थों को सौंप देने चाहिए।

धनात्मक प्रभाव

- अधिकारियों के कार्यभार में कमी।
- बेहतर एवं शीघ्र निर्णय।
- अधीनस्थों के प्रोत्साहन में वृद्धि।

अवहेलनात्मक प्रभाव

- पूर्ण केंद्रीकरण से अधिकारियों तथा पूर्ण विकेंद्रीकरण से अधीनस्थों के कार्यभार में अनावश्यक वृद्धि।

- पूर्ण केंद्रीकरण में अधिकारियों द्वारा उतावले व गलत निर्णय तथा पूर्ण विकेंद्रीकरण में अधीनस्थों द्वारा कमजोर निर्णय लेना।
- पूर्ण केंद्रीकरण से अधीनस्थों के प्रोत्साहन में कमी।

(9) **सोपान श्रृंखला** : इसका अभिप्राय एक औपचारिक अधिकार रेखा से है जो उच्चतम अधिकारी से निम्नतम अधीनस्थ तक एक सीधी रेखा में चलती है। **फेयोल के विचार** में इस श्रृंखला का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। अर्थात प्रत्येक संदेशवाहनक ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर एक सीधी रेखा में चलना चाहिए। यहां मुख्य शर्त यह है कि संदेशवाहन के दौरान सोपान श्रृंखला की किसी कड़ी अथवा पद को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

फेयोल की सीढ़ी : फेयोल के इस सिद्धान्त को एक सीढ़ी अथवा दोहरी श्रृंखला द्वारा स्पष्ट किया है।

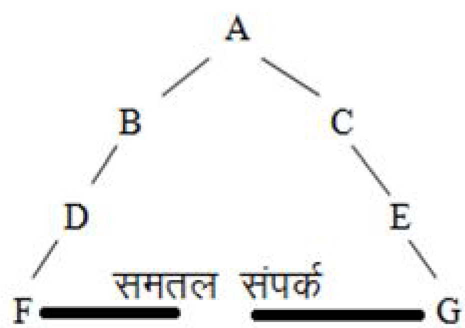

चित्र 1.4 सोपान श्रृंखला

उदाहरण के लिए, चित्र में दर्शाये गए विभिन्न कर्मचारियों में से एफ कर्मचारी से सम्पर्क करना चाहता है। सोपान श्रृंखला सिद्धान्त के अनुसार एफ को पहले ई के माध्यम से ए तक पहुंचना होगा। किंतु यदि एफ को सी से सम्पर्क करना है तो समतल संपर्क के अनुसार वो सीधा संपर्क कर सकता है। यह इसलिए मुमकिन है क्योंकि सी तथा एफ एक हा स्तर पर हैं।

<u>समतल संपर्क :</u> यह सोपान श्रृंखला के सिद्धान्त का अपवाद है। इस अवधारणा का विकास आकस्मिकता के समय समान स्तर के कर्मचारियों द्वारा सीधा संपर्क स्थापित करने के लिए किया गया ताकि संदेश पहुँचने में देरी न हो।

धनात्मक प्रभाव

- सूचनाओं का व्यवस्थित प्रवाह।
- अधिकारों के पूर्ण आदर से बेहतर संबंध।
- समस्याओं का शीघ्र हल।

अवहेलनात्मक प्रभाव

- निकटस्थ अधिकारियों को अनदेखा करने से संबंधों में कटुता।
- सूचनाएं समय पर उपस्थित न होने से समस्याओं में वृद्धि।

टूल बाक्स – 2
समतल संपर्क
केवल समान स्तर के कर्मचारियों से ही समतल सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

(10) **व्यवस्था अथवा क्रमबद्धता**ः व्यवस्था अथवा क्रमबद्धता के सिद्धान्त के अनुसार, सही व्यक्ति को सही कार्य पर लगाया जाना चाहिए तथा सही वस्तु को सही स्थान पर रखा जाना चाहिए। फेयोल के शब्दों में प्रत्येक उपक्रम में दो अलग–अलग व्यवस्थाएं होनी चाहिएः जैसे–भौतिक साधनों के लिए भौतिक व्यवस्था तथा मानवीय साधन के लिए सामाजिक व्यवस्था, भौतिक साधनों को व्यवस्थित करने का अर्थ यह है कि हर वस्तु के लिए एक उचित स्थान होना चाहिए और हर वस्तु अपने उचित स्थान पर ही होनी चाहिए। इसी तरह मानवीय साधनों का व्यवस्थित कराने का अर्थ यह है कि हर व्यक्ति के लिए एक उचित स्थान होना चाहिए और हर व्यक्ति अपने निश्चित स्थान पर ही होना चाहिए। इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं को लागू करने से हर व्यक्ति को यह पता होगा कि उसका कार्य स्थल कहां है, उसे क्या करना

है और उसकी जरुरत की वस्तुएँ किस स्थान पर मिलेंगी। परिणामतः संस्था में उपलब्ध सभी साधनों का अनूकूलतम उपयोग हो सकेगा।

उदाहरण के लिए कारखाने में काम करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को यह पता होना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर औज़ार कहां उपलब्ध होंगे। इसी प्रकार उन्हे पता होना चाहिए कि पर्यवेक्षक जरूरत पड़ने पर कहां उपलब्ध होगा। यहां मुख्य बात यह है कि केवल टूल बाक्स व पर्यवेक्षक का स्थान निश्चित होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर दोनों का अपने–अपने निर्धारित स्थान पर पाया जाना अति आवश्यक है। ऐसा न होने पर मशीनों में टूट–फूट से भारी हानि हो सकती है।

धनात्मक प्रभाव

- भौतिक संसाधनों व मानव–शक्ति का प्रभावपूर्ण उपयोग।
- आवश्यकता पड़ने पर संसाधनों को खोजने में समय की बर्बादी नहीं।
- बेहतर अनुशासन।

(11) **समताः** यह सिद्धान्त बताता है कि प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थों के साथ व्यवहार करते समय न्याय एवं उदारता का प्रदर्शन करना चाहिए, जिससे उनमें अपने कार्य के प्रति समर्पण एवं अपनेपन की भावना का संचार हो। किसी भी कर्मचारी के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार न करके सबके साथ समान व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए। फेयोल ने इस सिद्धान्त के संबंध में यह स्पष्ट किया है कि यदि एक कर्मचारी बहुत अच्छा काम करता है और दूसरा कामचोर प्रकृति का है तो दोनों के साथ समान व्यवहार नहीं होना चाहिए, बल्कि दूसरे के साथ निश्चित रूप से सख्त रवैया अपनाया जाना चाहिए। ऐसा करना ही अपने आप में समता होगी। इस विचारधारा को मददे नज़र रखते हुए ही टेलर ने विभेदात्मक पारिश्रमिक पद्धति प्रस्तुत की है।

उदाहरण के लिए, एक श्रमिक एक दिन में 10 इकाइयां माल को तैयार करता है। एक दूसरा श्रमिक जो कि प्रबंधन का रिश्तेदार है 8 इकाइयां तैयार करता है और दोनों को बराबर की मजदूरी दी जाती है। यह समता के सिद्धान्त का उल्लंघन है। दूसरे श्रमिक को पहले से कम मजदूरी प्राप्त होनी चाहिए।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारी संतुष्ट रहते हैं।
- संगठन के प्रति समपर्ण भावना में वृद्धि होती है।
- कुशल कर्मचारी अपनी कुशलता को और बढ़ाने का प्रयास करते हैं।
- अकुशल कर्मचारी कुशलता प्राप्ति का प्रयास करते हैं।

(12) **कर्मचारियों में स्थायित्वः** प्रबंधकी दृष्टि से कर्मचारियों का दिन–प्रतिदिन बदला जाना सर्वथा अहितकर है और यह अकुशल प्रबंधव्यवस्था का संकेत है। इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार, कर्मचारियों में स्थायित्व बना रहना चाहिए ताकि कार्य व्यवस्थित रूप से चलता रहे। फेयोल का मत है कि कर्मचारियों के कार्यकाल में अस्थायित्व बुरे प्रबंधका कारण भी है और परिणाम भी। ऊँची श्रम–परिवर्तन दर से कर्मचारियों को बार–बार चुने जाने व उनको प्रशिक्षण देने की लागतें बढ़ जाती है, और संस्था की साख में कमी आती है। संस्था की इस तरह की साख कर्मचारियों में अनिश्चितता की भावना पैदा करती है और वे हर समय नये कार्यों की खोज में व्यस्त रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनमें संस्था के प्रति समर्पण की भावना जागृत नहीं हो पाती।

उदाहरण के लिए, माना कि एक कम्पनी में कर्मचारियों के साथ दुर्व्यहार किया जाता है और कम्पनी का वातावरण भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ऐसी स्थिति में कर्मचारी लम्बे समय तक कम्पनी में नहीं रुकेंगे। अर्थात अवसर मिलते ही वे कम्पनी को छोड़कर चले जाएंगे। यह स्थिति सर्वथा अहितकर है।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारियों के विश्वास में वृद्धि।
- संस्था की साख में वृद्धि।
- कुशल कर्मचारियों का संस्था की ओर झुकाव।
- कम प्रशिक्षण लागत।

(13) **पहल–क्षमता** : पहल–क्षमता का अभिप्राय अपने विचारों को प्रकट करते हुए कार्य करने की क्षमता से होता है। फेयोल के अनुसार, प्रबंधन का कर्तव्य है कि वह अपने कर्मचारियों में

अधिकारों की सीमा तथा अनुशासन के अंतर्गत रहते हुए किसी कार्य को करने या निर्णय लेने से पहले उस कार्य को करने की भावना को उत्प्रेरित करे। ऐसा तभी सम्भव होगा जब प्रबंधन अधीनस्थों के विचारों का स्वागत करेगा। एक बार ऐसा करने से अधीनस्थ बार–बार नये व उपयोगी विचारों के साथ अपने–आप को प्रस्तुत करेंगे और धीरे–धीरे वे संगठन के अटूट अंग बन जाएंगे। इस प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए प्रबंधन को अपनी निष्ठा प्रतिष्ठा को भी त्याग देना चाहिए।

उदाहरण के लिए, एक सेल्समैन बिक्री प्रबंधन को एक नई विज्ञापन विधि को लागू करने का सुझाव देता है। बिक्री प्रबंधन उसे यह कह कर डांट देता है कि जाओ तुम्हारे बस की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में वह भविष्य में कभी कोई सुझाव देने की नहीं सोचेगा, क्योंकि उसकी पहल–क्षमता को दबा दिया गया है। इसके विपरीत, यदि उसके सुझाव को ध्यान से सुन लिया जाता (भले ही लागू न करें) तो वह भविष्य में कोई बेहतर सुझाव देने की हिम्मत कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने से उसकी पहल–क्षमता में वृद्धि होगी।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारियों की सोच शक्ति में वृद्धि।
- कर्मचारियों का निर्णयों को लागू करने में सहयोग।
- कर्मचारियों की संस्था के प्रति अपनेपन की भावना में वृद्धि।

(14) **सहयोग की भावना** : इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रबंधन को लगातार कर्मचारियों में टीम भावना के विकास का प्रयास करते रहना चाहिए। ऐसा करने के लिए प्रबंधन को अपने अधीनस्थों से वार्तालाप के दौरान 'मैं' के स्थान पर 'हम' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

उदाहरण के लिए, प्रबंधन को अधीनस्थों के सामने हमेशा यह कहना चाहिए कि 'हम यह काम करेंगे' न कि 'मैं यह काम करूँगा'। प्रबंधन के इस व्यवहार से अधीनस्थों में टीम की भावना का संचार होगा।

धनात्मक प्रभाव

- टीम भावना से काम करने की प्रेरणा।
- उद्देश्य प्राप्ति में आसानी।

- मधुर संबंध।

फेयोल ने अपने प्रबंधके सिद्धान्तों के बारे में स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रबंधका संबध मानव से होने के कारण इसमें कुछ भी अंतिम नहीं कहा जा सकता। किन सिद्धान्तों को किस समय और किस परिस्थिति में, कितनी मात्रा में प्रयुक्त किया जाए, यह प्रबंधके अनुभव, कुशलता एवं निर्णय–शक्ति पर निर्भर करता है। अतः फेयोल द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों में लोचशीलता का तत्व विद्यमान है।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.9 प्रबंधके सिद्धान्तों के अर्थ व प्रकृति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्र.10 प्रबंधके सिद्धान्तों का महत्व संक्षेप में समझाईये।

प्र11 प्रबंधके सिद्धान्तों को उचित रूप से समझाना क्यों आवश्यक है? पांच कारण बताइए।

प्र12 फेयोल द्वारा दिए गए प्रबंधके निम्नलिखित सिद्धान्तों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

(क) निर्देश की एकता

(ख) समता

(ग) सहयोग की भावना

(घ) व्यवस्था

(ङ) केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण

(च) पहल–क्षमता

1.7 प्रबंध के स्तर

प्रबंधके स्तरों की कोई निश्चित संख्या नहीं है। इनकी संख्या व्यवसाय की प्रकृति, आकार आदि द्वारा निर्धारित होती है। ब्रैच ने प्रबंधके स्तरों का निम्नलिखित तीन भागों में बांटा है :–

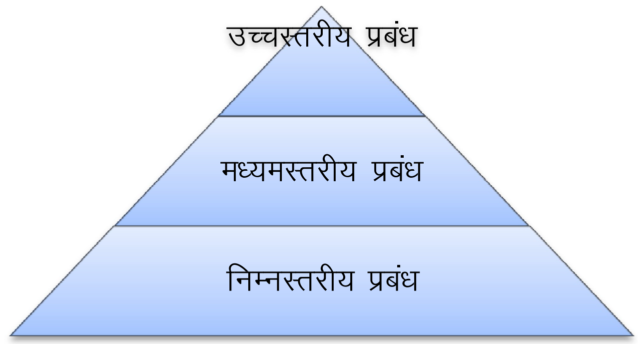

चित्र 1.5 प्रबंध के स्तर– उच्चस्तरीय प्रबंध

1.7.1 उच्चस्तरीय प्रबंधः–

उच्चस्तरीय प्रबंधमें संचालक मण्डल, मुख्य कार्यकारी अधिकारी आदि को सम्मिलित किया जाता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी एक अकेला व्यक्ति भी हो सकता है अथवा कुछ अधिकारी भी और एक समिति भी। मुख्य कार्यकारी अधिकारी को अनेक नामों से पुकारा जाता है– जैसे प्रबंधसंचालक, मुख्य प्रबन्धक, प्रधान आदि। उच्चस्तरीय प्रबंधके पास सभी प्रबन्धकीय अधिकारी होते हैं और इस आधार पर ही उच्च स्तर के अधिकारी व्यवसाय के स्वामियों अथवा अंशधारियों के प्रति उत्तरदायी हैं।

1.7.2 मध्यस्तरीय प्रबंधः–

मध्यस्तरीय प्रबन्ध, उच्चस्तरीय तथा निम्नस्तरीय प्रबंधके मध्य स्थित होता है। इसके मध्यस्तरीय प्रबंधउच्चस्तरीय प्रबंधसे आदेश लेते हैं और निम्नस्तरीय प्रबंधसे कार्य करवाते हैं। ये अपने कार्य के लिए उच्चस्तरीय प्रबंधके प्रति उत्तरदायी होते हैं।

1.7.3 निम्नस्तरीय प्रबंधः–

यह प्रबंधका सबसे नीचा का स्तर है और इसका श्रमिकों से सीधा संबंध होता है। ये उनकी साधारण समस्याओं को तो स्वयं ही निपटा देते हैं और गम्भीर समस्याओं को मध्यस्तरीय प्रबन्धकों तक पहुँचाते हैं। ये अधीनस्थ से काम को और बेहतर ढंग से करवाते हैं और बेहतर ढंग से करने का सुझाव भी देते हैं।

प्रबंध के स्तर

उच्चस्तरीय प्रबन्ध	मध्यस्तरीय प्रबन्ध	निम्नस्तरीय प्रबन्ध
• संचालक मंडल • मुख्य कार्यकारी • अध्यक्ष • प्रबंधसंचालक • मुख्यप्रबन्धक	• विभागीय प्रबन्धक • उप–विभागीय प्रबन्धक • कार्यात्मक प्रबन्धक	• फोरमैन • पर्यवेक्षक

अपनी प्रगति जांचिए
प्र13. प्रबंध के तीन स्तर क्या हैं?
प्र.14 प्रबंध का निम्न स्तर कौन सा है?

1.8 प्रशासन और प्रबन्ध

प्रशासन और प्रबंधदोनो का अर्थ समान समझा जाता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। यहां पर प्रबंधऔर प्रशासन को भिन्न स्वीकारा गया है। इन्हें ठीक से समना आवश्यक है।

1.8.1 प्रबंधऔर प्रशासन में अन्तर

ओलिवर भौल्डन के अनुसार, प्रशासन संगठन का निर्माण करता है, प्रबंधइनका प्रयोग करता है। प्रशासन लक्ष्य निर्धारित करता है, प्रबंधइन्हें पूरा करने का प्रयत्न करता है। प्रशासन द्वारा निर्धारित संगठन–तन्त्र का प्रयोग प्रबंधनिर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए करता है।

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि प्रशासन लक्ष्य व नीतियाँ निर्धारित करता है तथा प्रबंधउन्हें प्राप्त करने एवं लागू करने का प्रयास करता है अर्थात प्रशासन का कार्यक्षेत्र प्रबंधसे व्यापक है।

विलियम आर. स्पीगल के अनुसार, 'प्रशासन किसी व्यवसायिक संस्था का वह भाग है जिसका सम्बन्ध संस्थागत उद्देश्य निश्चित करना तथा नीतियों का निर्धारण करना है जिसका अनुसरण करना उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

1.8.2 प्र□ासन प्रबन्धन में भामिल

ब्रैच के अनुसार 'प्रबन्धन सामाजिक क्रिया है जो किसी उपक्रम के निर्धारित उद्देश्य अथवा कार्य को सम्पन्न करने के लिए क्रियाओं का प्रभावपूर्ण नियोजन एवं नियमन करने के उत्तरदायित्व को आवश्यक मानता है।

'प्रशासन प्रबंधका भाग है एवं व्यावसायिक प्रक्रियाओं की प्रगति को योजना के अनुरूप नियमित एवं नियंत्रित कार्य के लिए कार्य–विधियों के निर्धारण एवं पालन करने से संबंधित है'।

1.8.3 प्रबन्धन और प्र□ासन में कोई भेद नहीं

आधुनिक विचारधारा के अनुसार प्रबन्धन और प्रशासन में कोई भेद नहीं किया जा सकता।

थियो हैमन के अनुसार– 'प्रशासनिक तथा प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन करने के लिए भिन्न–भिन्न वर्गीय पक्षों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रत्येक प्रबंधन का दोनों प्रकार की क्रियायों का निष्पादन करना पड़ता है तथा वे अपना कुछ समय प्रशासकीय व कुछ प्रबन्धकीय कार्यों में लगाते हैं।

किम्बल एवं किम्बल के अनुसार– 'यह अन्तर बहुत भ्रमात्मक है। प्रबंधएवं प्रशासन एक दूसरे के पर्यायवाची हैं'।

उपरोक्त दृष्टिकोण के संज्ञान से ऐसा कहा जा सकता है कि इन दोनों क्रियाओं का संगठनात्मक स्तर से सम्बन्ध है।

पहले स्तर के प्रबन्धकीय कार्य कम एवं प्रशासकीय कार्य अधिक होते हैं। दूसरे स्तर में प्रशासकीय व प्रबन्धकीय कार्य लगभग बराबर मात्रा में होते हैं। तीसरे यानि उच्चस्तर में प्रशासकीय कार्य कम एवं प्रबन्धकीय कार्य अधिक करते हैं।

1.9 प्रबंध– एक पे□ो के रूप में

पे□ो का अर्थ

प्रबंधकी प्रकृति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रबंधएक पेशा है? यह निश्चित करने के लिए सर्वप्रथम पेशे का अर्थ एवं इसकी विशेषताओं का अध्ययन करना आवश्यक है। पेशे का अर्थ समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अध्ययन सार्थक सिद्ध होगा।

(1) **वेकस्टर भब्दको□ा के अनुसार** – ''पेशा वह व्यवसाय है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करके दूसरे व्यक्तियों को निर्देश, मार्ग–दर्शन या परामर्श देता है''।

(2) **हॉज तथा जानसन के अनुसार** – 'व्यवसाय एक पेशा है जिसके लिए कुछ विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है जिसे उच्च स्तरीय समानता द्वारा समाज में एक सम्बन्धित वर्ग की सेवार्थ प्रयुक्त किया जाता है''।

(3) **प्रो. डाल्टन ई. मेक फारलैण्डः** ने पेशे की निम्नलिखित पांच विशेषताओं का उल्लेख किया है:–

(i) विशिष्ट ज्ञान एवं तकनीकी कौशल का होना

(ii) प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने की औपचारिक व्यवस्था

(iii) पेशे का विकास करने के लिए एक प्रतिनिधि संस्था का होना

(iv) व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए आचार–संहिता का होना

(v) आर्थिक स्वार्थ के स्थान पर सेवा भावना को प्राथमिकता देना

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पेशे के अंतर्गत एक व्यक्ति लम्बे प्रशिक्षण एवं अनुभव द्वारा प्राप्त व्यक्तिगत निपुणता का प्रयोग समाज के भिन्न – भिन्न वर्गों की सेवा में निष्पक्ष रूप से करता है।

- क्या प्रबंधएक पेशा है?

पेशे का अर्थ समझने के बाद अब प्रश्न उठता है कि क्या प्रबंधको पेशे के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए अथवा नहीं? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह देखना होगा कि क्या पेशे वाली सभी विशेषताएँ प्रबंधमें हैं? पेशे की विभिन्न विशेषताओं और उनके प्रबंधमें विद्यमान होने के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवेचन महत्वपूर्ण हैं:

(1) **वि□िाश्ट ज्ञान एवं तकनीकी कौ□ालः** पेशे की पहली विशेषता यह है कि एक पेशेवर व्यक्ति में विशिष्ट ज्ञान एंव तकनीकी चातुर्य होना चाहिए। प्रबंधएक विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता है जिसके अपने प्रयोगों पर आधारित सिद्धान्त एवं नियम हैं, जिन्हें व्यावहारिक प्रयोग में लाने के लिए विशेष चातुर्य की जरुरत पड़ती है। इस विशेषता के आधार पर प्रबंधको पेशा माना जा सकता है।

(2) **प्र□िाक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने का औपचारिक व्यवस्थाः** प्रबंधके विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था आज अनेक संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करा दी गई है।

भिन्न–भिन्न विश्वविद्यालयों एवं प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रबंधके सिद्धान्तों को निपुणता के साथ सिखलाया जा रहा है। आजकल अधिकतर प्रबंधन या तो इन प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रबंधकी शिक्षा ग्रहण करके इस पेशे में प्रवेश लेते हैं अथवा प्रबंधसाहित्य को पढ़कर, प्रबंधगोष्ठियों में हिस्सा लेकर व प्रबंधपाठयक्रम सम्बन्धी कार्यक्रम जो कम्पनी या विश्वविद्यालय द्वारा संचालित किए गए हों, में हिस्सा लेकर यह ज्ञान प्राप्त करते हैं। व्यवसायिक संस्थायें भी उन्हीं लोगों को प्रबंधन के रूप में चुनाव करती हैं जो प्रशिक्षित एवं अनुभवी हें। यद्यपि यह सही है कि अभी भी अनेक व्यक्ति प्रबन्धकीय योग्यता के इस औपचारिक प्रशिक्षण के बिना ही इस पद पर कार्यरत हैं, लेकिन इन प्रबन्धकों की प्रबन्धकीय क्षमता को भी कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि इस पद पर पहुंचने के लिए उन्होंने अनेक संस्थाओं में विभिन्न छोटे–बड़े पदों पर काम करके अनुभव प्राप्त किया होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों प्रकार के प्रबन्धकों में लगभग एक–सी योग्यता होती है। अतः पेशे की इस विशेषता के आधार पर प्रबंधको पेशा माना जा सकता है।

(3) **प्रतिनिधि पेिवर संघ का होना** : पेशे की तीसरी विशेषता के रूप में इसके लिए एक प्रतिनिधि संघ का होना आवश्यक है, जिसके निम्नलिखित मुख्य कार्य होते हैंः–

(i) अपने सदस्यो के व्यवहार को नियन्त्रित करना

(ii) पेशे की विभिन्न क्रियाओं का मार्ग–दर्शन करने के लिए आचार–संहिता तैयार करना।

(iii) अपने सदस्यों की छवि को एक पेशेवर के रूप में बनाना एवं विकास करना

(iv) अपने सदस्यों की न्यूनमत योग्यता निर्धारित करना

(v) पेशे के प्रवेश को नियमित करना

भारत में दूसरे पेशों में इस तरह के प्रतिनिधि संघ स्थापित हो चुके हैं– जैसे–वकालत के पेशे के लिए बार काउन्सिल ऑफ इन्डिया, चिकित्सा के पेशे के लिए मैडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया, तथा लेखाशास्त्र के पेशे के लिए इन्स्टीच्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टैंटस। इसी तरह के संघों की स्थापना प्रबंधके सम्बन्ध में भी भारत तथा विदेशों में हो चुकी है। भारत में ऑल इंडिया मैनेजमैंट एसोसिएशन के नाम से प्रबंधसंघ की स्थापना की गई है, तथा देश के विभिन्न भागों में स्थानीय प्रबंधसंघ बनाए गए हैं, जो ए.आई.एम.ए से संबंधित है। इन प्रबंधसंघों द्वारा प्रबन्धकों के सामाजिक दायित्व की ओर विशेष ध्यान देने के साथ–साथ पेशेवर आचार–संहिता को भी तैयार किया जा रहा है।

भारत में प्रबंधसंघ पेशेवर संघों के निर्धारण की ओर अग्रसर तो है लेकिन आज इनका मुख्य कार्य प्रबंधके विभिन्न क्षेत्रों में शोध करना ही है। यह भी सच है कि प्रबन्धकीय व्यवहार को नियमित बनाने के लिए कोई विशेष नियम नहीं बनाए गए हैं और न ही प्रबंधपेशे में प्रवेश करने के बारे में कोई समानता है। उदाहरण के लिए, वकालत का कार्य करने के लिए कानून की उपाधि का होना आवश्यक है लेकिन प्रबंधन बनने के लिए ऐसी कोई उपाधि निश्चित नहीं की गई है। इसी प्रकार एक चार्टर्ड एकाउण्टैंट का काम करने के लिए इन्स्टीच्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टैंटस का सदस्य होना आवश्यक है लेकिन प्रबंधन बनने के लिए ए.आई.एम.ए. का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। अतः कहा जा सकता हे कि भारत में प्रबंधके संदर्भ में पेशे की यह विशेषता खरी साबित नहीं होती तथा इस आधार पर प्रबंधको पूर्णतः पेशा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(4) **आचार–संहिता** : एक पेशे के सदस्य निर्धारित आचार–संहिता का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। आचार–संहिता के अंतर्गत पेशे से समबन्धित नियम ईमानदारी, सत्यनिष्ठा एवं नैतिकता के पैमाने को सम्मिलित किया जाता है। पहले से स्वीकृत पेशों– जैसे कानून, चिकित्सा, लेखाशास्त्र आदि के लिए आचार–संहिता निश्चित कर दी गई है लेकिन प्रबंधके सम्बन्ध में इस तरह की कोई समान आचार–संहिता निश्चित नहीं की गई है और न ही प्रबन्धकीय कार्यों में प्रवेश के लिए किसी लाईसैंस की आवश्यकता है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रबंधपूर्ण रूप से एक पेशा नहीं है। प्रबंधके सम्बन्ध में जो आचार–संहिता विकसित हो रही है उसमें मुख्यतः संस्था के गोपनीय रहस्यों को गुप्त रखना, संस्था की आंतरिक जानकारी को अपने हित के लिए उपयोग न करना, संस्था के उपलब्ध साधनों का संस्था के दीर्घकालीन कल्याण के लिए उपयोग करना आदि को सम्मिलित किया जा रहा है।

(5) **आर्थिक स्वार्थ के स्थान पर सेवा भावना को प्राथमिकता** : अन्य धन्धों एवं व्यापार की भांति ही पेशा करना भी जीवित रहने के लिए धन अर्जित करने का एक साधन है, जिसमें विशेष ज्ञान के आधार पर उचित पारिश्रमिक लेकर समाज की सेवा की जाती है। यही कारण है कि पेशेवर लोगों को समाज में सम्मान प्राप्त होता हे। उदाहरण के लिए, एक डॉक्टर चिकित्सा के पेशे से अपनी आजीविका चलाता है लेकिन समाज सेवा उसका मुख्य उदेश्य होता है। यद्यपि प्रबंधके सम्बन्ध में इस तरह की कोई आचार– संहिता नहीं है, फिर भी प्रबन्धकों के सामाजिक दायित्व पर बहुत जोर दिया जा रहा है और उनसे यह उम्मीद की

जाती है कि वे कम से कम लागतों से अधिक कुशलता अर्जित करके कर्मचारियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं, समाज और देश की सेवा करेंगे और अपने आर्थिक लाभ को भुलाकर संस्था के कल्याण के लिए अपनी समस्त योग्यता एवं अनुभव को दाव पर लगा देंगे। इस दृष्टिकोण से प्रबंधको पेशे के रूप में स्वीकार करने में अधिक संकोच नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त विविचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रबन्ध, पेशे की कुछ विशेषताओं को पूरा करता है तथा कुछ अन्य विशेषताओं का इसमें अभी पूरा विकास नहीं हुआ है। प्रबंधको पेशे के रूप में विकास की धीमी गति का मुख्य कारण अधिकतर औद्योगिक उपक्रमों का संचालन कुछ प्रमुख औद्योगिक घरानों द्वारा किया जाना है जिससे पेशेवर प्रबन्धको का विकास अधिक गति से नहीं हो सका है। परन्तु फिर भी शनैः शनैः पेशेवर प्रबन्धकों की मांग बढ़ रही है। सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि भारत में प्रबंधका पेशे के रूप में विकास हो रहा है। जैसे–जैसे विकास की गति में तेज़ी आयेगी, वैसे–वैसे प्रबंधके पेशे के रूप में स्वीकृति मिलती रहेगी।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.15	प्रबन्धन एवं प्रशासन में क्या संबंध है?
प्र.16	क्या प्रबन्धन एक पेशा है?

1.10 प्रबन्धकीय भूमिकाएँ

प्रबन्धकीय भूमिकाओं के संबंध में मुख्य प्रश्न यह उठता है कि क्या उसके अंतर्गत प्रबंधप्रक्रिया में उपरोक्त बताए गए पांच ही कार्य किए जाते हैं? और क्या इसी क्रम में उन्हें पूरा किया जाता है? हेनरी मिंज़बर्ग ने इस संबंध में गहन अध्ययन किया। मिज़बर्ग अपने शोधकार्यों के आधार पर इस नतीजे पर पहुंचे कि एक प्रबंधन इन पांचों कार्यों के स्थान पर कुछ अलग तरह की भूमिकाएँ अदा करता है। उन्होंने प्रबंधन की दस भूमिकाओं का विकास किया जिन्हें तीन श्रेणियों में बांटा गया है। इन सभी दस भूमिकाओं का कोई विशेष क्रम नहीं है। ये भूमिकाएँ निम्नलिखित हैं :–

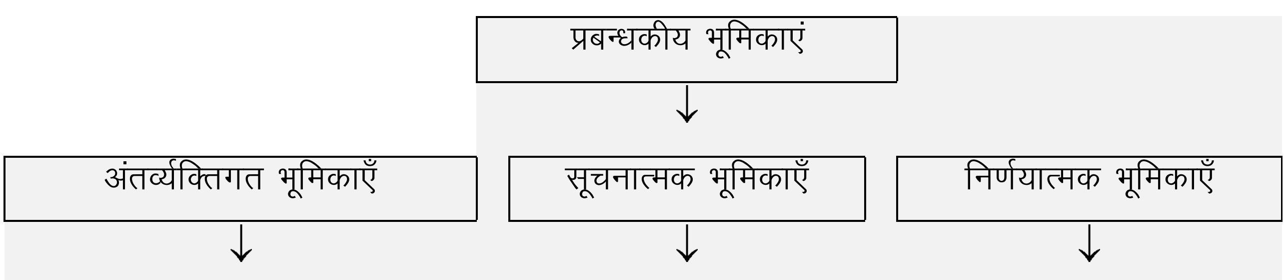

(i)मुख्य व्यक्ति की भूमिका (ii)नेता की भूमिका (iii)संपर्क अधिकारी की भूमिका		(i)मॉनिटर की भूमिका (ii)विस्तारक की भूमिका (iii)अभिवक्ता की भूमिका		(i)साहसी की भूमिका (ii)बाधा निरोधक की भूमिका (iii)साधन वितरक की भूमिका (iv)सौदेबाज की भूमिका

चित्र – 1.6 प्रबन्धकीय भूमिकाएँ

(A) **अंतर्व्यक्तिगत भूमिकाएं**

प्रबंधके अर्न्तगत एक व्यक्ति (अर्थात प्रबन्धक) द्वारा अन्य व्यक्तियों के माध्यम से संगठन के उद्देश्यों को पूरा किया जाता है। इसलिए इसे अंतर्व्यक्तिगत क्रिया कहा जाता है। अन्य शब्दों में, प्रबंधक्रिया को सार्थक बनाने के लिए एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित होना जरुरी है। इस संबंध में एक प्रबंधन निम्नलिखित तीन भूमिकाएँ अदा करता है:

(i) **मुख्य व्यक्ति की भूमिका** संगठन में प्रबंधन एक मुख्य व्यक्ति के रूप में होता है। इस भूमिका में प्रबंधन को निम्नलिखित कार्य करने होते हैं:–

– संगठन की ओर से सामाजिक उत्सवों में उपस्थित होना

– भ्रमणकारियों का स्वागत करना

– कर्मचारियों की शादियों में उपस्थित होना

– किसी महत्वपूर्ण ग्राहक के साथ भोजन करना

(ii) **नेता की भूमिका** : एक नेता की भूमिका में प्रबंधन अपने अधीनस्थों का मार्ग–दर्शन करता है। वह उन्हें यह बताता है कि किस कार्य को, किस विधि में कम से कम समय में किया जा सकता है।

(iii) **संपर्क अधिकारी की भूमिका** : इस भूमिका के अर्न्तगत प्रबंधन संगठन में अन्य विभागों के प्रबन्धकों के साथ संपर्क स्थापित करके अनेक जानकारियां प्राप्त करता है। प्रबन्धकों की यह भूमिका संगठन के सभी विभागों में मधुर संबंध स्थापित करने में सहायक होती है।

(B) **सूचनात्मक भूमिकाएँ**

प्रबंधन की यह भूमिका संदेशवाहन से संबंधित है। प्रबंधन अपने बॉस तथा अधिनस्थाओं के साथ आवश्यक सूचनाओं का आदान–प्रदान करता है। अपने अधीनस्थों को यह आदेश व निर्देश देता है तथा उनसे सुझाव, शिकायत आदि प्राप्त करता है। इसी प्रकार वह अपने बॉस से आदेश व निर्देश प्राप्त करता है और अपने सुझाव, शिकायतें आदि उसके पास भेजता है। मिज़बर्ग ने निम्नलिखित सूचनात्मक भूमिकाओं का वर्णन किया हैः

(i) **मॉनीटर की भूमिकाः** एक मॉनीटर की भूमिका में प्रबंधन संगठन के आंतरिक व बाहरी वातावरण पर निगाह रखता है। वातावरण का अभिप्राय संगठन के निर्णयों को प्रभावित करने वाले आंतरिक व बाध्य तत्वों से है। प्रबंधन इन तत्वों से संबंधित सूचनाएँ एकत्रित करता है तथा उनका विश्लेषण करता है।

(ii) **विस्तारक की भूमिकाः** एक विस्तारक की भूमिका में प्रबंधन अपने अधीनस्थों को उन सूचनाओं से अवगत करवाता है जो उनकी पहुंच में नहीं हैं। ये सूचनाएँ आंतरिक व बाध्य वातावरण से संबंधित हो सकती हैं।

(iii) **अधिवक्ता की भूमिकाः** अधिवक्ता की भूमिका में प्रबंधन संगठन के बाहर के लोगों के साथ संगठन के प्रतिनिधि के रूप में बात–चीत करता है। जैसे, अंशधारकों को कम्पनी की वित्तीय स्थिति की जानकारी देना, प्रैस के लोगों के संगठन के बारे में बातचीत करना, उपभोक्ताओं को सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने का आश्वासन देना, सरकार को नियमों के पालन का आश्वासन देना, आदि।

(C) **निर्णयात्मक भूमिकाः** प्रबंधन की इस भूमिका के बारे में कहा जाता है कि यदि प्रबंधमें से निर्णय को घटा दिया जाए तो शेष कुछ नहीं बचता। इसका अभिप्राय यह है कि प्रबंधन को निर्णय ही तो लेने होते हैं। यदि वह निर्णय नहीं लेता तो फिर उसका कोई औचित्य शेष नहीं रह जाता। अतः प्रबंधन को अनेक दैनिक व अन्य महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। प्रबंधन की निर्णयात्मक भूमिकाएं निम्नलिखित हैंः

(i) **साहसी की भूमिका** : इस भूमिका में प्रबंधन आधुनिक व्यवसायिक वातावरण का सामना करने के लिए काम करने की नई–नई विधियों की खोज करता है व उन्हें लागू करता है।

(ii) **बाधा–रोधक की भूमिकाः** इस भूमिका में प्रबंधन संगठन में उपस्थित किसी भी बाधा को अतिशीघ्र दूर करने का प्रयास करता है, जैसे, बिजली का फेल होना, मशीन का अचानक

खराब हो जाना, अधीनस्थों में झगड़ा हो जाना, किसी देनदार का दिवालिया हो जाना, कच्चे माल की पूर्तीकर्ता द्वारा हड़ताल की धमकी देना, आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिनका अतिशीघ्र निपटारा करना होता है।

(iii) **साधन वितरक की भूमिका**: प्रत्येक संगठन में साधन (जैसे–धन, माल, मशीन आदि) सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। प्रबंधन का यह कर्तव्य होता है कि वह सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करे। ऐसा तभी संभव है यदि साधनों का उचित वितरण किया जाये, अर्थात जिस स्थान पर जितने साधनों की आवश्यकता हो, वहां उतने ही दिए जाने चाहिए। प्रबंधन इस भूमिका के अंतर्गत साधनों के उचित बंटवारे की व्यवस्था करता है।

(iv) **सौदेबाज की भूमिका** : इस भूमिका के अंतर्गत प्रबंधन अनेक आंतरिक एवं बाध्य लोगों से विभिन्न मुद्दों पर सौदेबाजी करता है: जैसे– हड़ताल के मुद्दे को लेकर संघ के प्रधान से सौदेबाजी करना: अर्थात श्रमिक संघ के प्रधान के साथ यह निश्चित करना कि उन्हें क्या सुविधा प्रदान करने से हड़ताल समाप्त हो सकती है।

1.11 प्रबंधकी विभिन्न विचारधाराएँ

प्रबंधका प्रचलन उतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता। विशेषकर जब से मनुष्य समूहों में काम करने लगे हैं, इसकी आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। जब अनेक व्यक्ति समूह में काम करते हैं तो उनकी क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए उनका प्रबंधकरना आवश्यक है। प्रबंधका जो स्वरूप हम आज देख रहे हैं, यह प्रारम्भ से ही ऐसा नहीं था। समय–समय पर अनेक प्रबंधविशेषज्ञों ने अपने प्रयोगों एवं अनुभव के आधार पर प्रबंधके बारे में अलग– अलग विचार व्यक्त किए हैं। कुछ प्रबंधविशेषज्ञों ने भौतिक साधनों को अधिक महत्व दिया है तो कुछ ने मानवीय साधन को। इसके अतिरिक्त कुछ प्रबंधविशेषज्ञों ने प्रणाली अध्ययन पर जोर दिया है। प्रबंधके संबंध में व्यक्त किए गए इन तीनों विचारों का संबंध निर्णय से है। अर्थात पहले विचार के अनुसार, प्रबन्धकों द्वारा निर्णय लेते समय भौतिक साधनों पर प्राथमिकता दी जाती है। दूसरे विचार के अनुसार, मानवीय साधनों पर प्राथमिकता दी जाती है, तीसरे विचार के अनुसार निर्णय लेते समय प्रबन्धकों द्वारा सभी संबंधित तत्वों को ध्यान में रखा जाता है।

जैसे–जैसे प्रबंधके बारे में नये–नये विचार प्रस्तुत किए जा रहे प्रबंध विचारधारा का विकास होता रहा। प्रबंधविचारधारा के विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित तीन शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है:

क. परंपरागत दृष्टिकोण

ख. नव–परंपरागत दृष्टिकोण

ग. आधुनिक दृष्टिकोण

प्रत्येक दृष्टिकोण को पुनः शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है। प्रबंधविचारधारा के विकास की कहानी को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है।

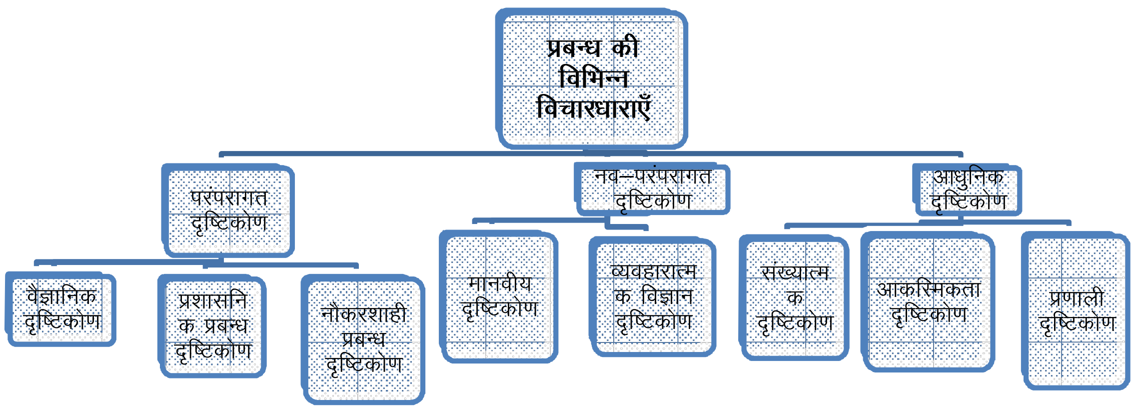

चित्र – 1.7 प्रबंधकी विभिन्न विचारधाराएँ

1.11.1 परंपरागत दृष्टिकोण:

प्रबंधका परंपरागत दृष्टिकोण सन 1940 के आस–पास विकसित हुआ। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत विकसित हुए सिद्धांतों को आज भी स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि मानव उत्पादन का एक निष्क्रिय संसाधन है और इसे नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इसकी यह भी मान्यता है कि कर्मचारी आर्थिक प्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं। इस दृष्टिकोण की तीन शाखाएँ हैं–

(i) वैज्ञानिक प्रबन्ध

(ii) प्रशासनिक प्रबन्ध

(iii) नौकरशाही प्रबन्ध।

इन्हें परंपरागत दृष्टिकोण के स्तंभ भी कहा जाता है। अब हम इनका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

(i) **वैज्ञानिक प्रबंध**

वैज्ञानिक प्रबंधदृष्टिकोण के जन्मदाता **फ्रेडरिक डब्लयु. टेलर** है। वैज्ञानिक प्रबंधके सिद्धांतों को विकसित करने में टेलर के अतिरिक्त **फ्रैक व लिलियन गिलब्रेथ, हेनरी एल.गैट, तथा हेरिंगटन इमरसन** का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अब हम इन चारों प्रबंधविशेषज्ञों के वैज्ञानिक प्रबंधमें योगदान की व्याख्या करेंगे।

(क) टेलर का योगदान

एफ.डब्लयू.टेलर एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जो थोड़े ही समय (1878–1884) में एक साधारण श्रमिक से मुख्य इंजीनियर के पद पर पहुंचे। सन 1878 में ये एक श्रमिक के रूप में अमेरिका की मिडवेल स्टील कम्पनी में भर्ती हुए और अपनी लगन एवं मेहनत के कारण 6 वर्ष की अल्प अवधि में (सन 1884) में इसी कम्पनी में मुख्य इंजीनियर के पद पर पहुंच गए। इस अवधि में टेलर ने अनेक प्रयोग किए और यह पाया कि एक श्रमिक को जितना काम करना चाहिए वह उससे बहुत कम काम करता है। इस समस्या को दूर करने के लिए उन्होंने अनेक सुझाव दिए और अंततः प्रबंधको वैज्ञानिक रूप दिया। सन 1901 तक बीथलहैम स्टील वर्क्स में काम करने के उपरांत उन्होंने प्रबंधपरामर्शदाता के रूप में अपनी सेवाएँ देनी प्रारम्भ की। सन 1903 में उनका एक शोध–पत्र **कारखाना प्रबंध**के नाम से प्रकाशित हुआ। सन 1911 में इनकी '**वैज्ञानिक प्रबंधके सिद्धांत**' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसने प्रबंधजगत में तहलका मचा दिया था।

- **वैज्ञाानिक प्रबंधका अर्थ**

वैज्ञानिक प्रबंधका शाब्दिक अर्थ प्रबंधको वैज्ञानिक ढंग से करना है। अर्थात प्रबंधकी रुढ़िवादी विचारधाराओं को छोड़कर आधुनिक वैज्ञानिक विचारधाराओं का प्रयोग करना ही वैज्ञानिक प्रबंधहै। इस संबंध में टेलर ने कहा है कि प्रबन्धकों को कोई भी काम करने से पहले उसका गहन विश्लेषण करना चाहिए और उसी के आधार पर निर्णय लेना चाहिए।

- **वैज्ञाानिक प्रबंधके सिद्धान्त**

एफ.डब्लयू. टेलर द्वारा प्रतिपादित प्रबंधकी वैज्ञानिक विचारधारा निम्नलिखित पांच सिद्धान्तों पर आधारित है।

(i) **रुढ़िवादी के स्थान पर विज्ञान के प्रयोग का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के अनुसार, एक संस्था के अंदर जो भी काम किया जाए उसके प्रयोग हिस्से की गहन जांच करनी चाहिए ताकि काम करने की एक ऐसी पद्धति का विकास किया जा सके जिससे अधिक व बढ़िया काम न्यूनतम लागतों पर संभव हो। यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि हमें लकीर का फकीर बन कर काम की पुरानी पद्धतियों को ही नहीं अपनाते रहना चाहिए बल्कि हर समय नये–नये उपयोगों द्वारा नवीनतम पद्धतियों की खोज करके अपने काम को सरल बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(ii) **श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन एवं प्रशिक्षण का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के अनुसार, श्रमिकों का चयन एवं प्रशिक्षण वैज्ञानिक रीति से किया जाना चाहिए। संस्था में किए जाने वाले सभी कार्यों में से श्रमिकों के चयन का कार्य अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि एक गलत नियुक्ति संस्था के पूरे वातावरण को दूषित कर सकती है। श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन का अभिप्राय किसी काम के लिए वांछित योग्यता रखने वाले व्यक्तियों का चयन करना है। श्रमिकों का ठीक ढंग से चयन कर लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसको समय–समय पर आवश्यक प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। उत्तम तरीकों से दिया गया प्रशिक्षण श्रमिकों की कार्यकुशलता में निखार लाता है। जिसका लाभ स्वयं श्रमिकों को व संस्था दोनों को प्राप्त होता है।

(iii) **श्रम एवं प्रबंधके मध्य सहयोग का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के अनुसार, संस्था के अंदर ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिसमें श्रम (उत्पादन का मुख्य साधन) एवं प्रबंधदोनों एक–दूसरे को अपना पूरक समझें। अर्थात श्रमिक वर्ग यह समझे कि प्रबंधन वर्ग के सहयोग के बिना उसका काम नहीं चल सकता और प्रबंधन वर्ग यह समझे कि श्रमिक वर्ग के सहयोग के बिना उसका अस्तित्व खतरे में है। ऐसी भावना जागृत हो जाने पर दोनों वर्ग एक ही लक्ष्य (अर्थात अधिक व अच्छा उत्पादन) का पीछा करें और सफलता निश्चित रूप से उनके कदमों में होगी। टेलर ने ऐसी अवस्था को मानसिक क्रान्ति का नाम किया है। उनका विश्वास है

कि यदि दोनों पक्षों में मानसिक क्रान्ति आ जाये तो उनके सभी झगड़े समाप्त हो जाएंगे। परिणामस्वरुप, दोनों वर्गों को अधिक लाभ की प्राप्ति होगी।

(iv) **अधिकतम उत्पादन का सिद्धान्त** : इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रबंधन वर्ग एवं श्रमिक वर्ग दोनों को अधिकतम उत्पादन करने का पूरा प्रयास करना चाहिए: अर्थात संस्था में उपलब्ध साधनों से जितना अधिक से अधिक उत्पादन हो सके उस लक्ष्य तक पहुंचने में कोई कमी नहीं छोड़नी चाहिए। इसका सीधा प्रभाव संस्था के लाभों पर पड़ेगा अर्थात लाभ अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाएगा अधिक लाभ होने के कारण संस्था में काम करने वाले सभी व्यक्तियों को अधिक पारिश्रमिक प्राप्त होगा और परिणाम स्वरूप वे संस्था के प्रति अधिक वफादार होंगे।

(v) **समान उत्तरदायित्व विभाजन का सिद्धान्त** : इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था के दो मुख्य वर्गों (प्रबंधन वर्ग एवं श्रमिक वर्ग) में काम एवं उससे संबंधित दायित्वों का स्पष्ट बंटवारा कर देना चाहिए। जो वर्ग जिस काम को अधिक कुशलता से कर सके उसे वही काम सौंपना चाहिए। जैसे–एक काम को पूरा करने का समय प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए जबकि इसको कार्यरूप देने का उत्तरदायित्व श्रमिकों को सौंपना चाहिए। इस प्रकार यदि समय का ठीक से निर्धारण न किया गया तो इसके लिए प्रबंधन उत्तरदायी होगा और यदि काम को ठीक से प्रकार पूरा न किया गया तो इसके लिए श्रमिक उत्तरदायी होंगे। इस सिद्धान्त को लागू करने पर न तो सारा श्रेय किसी एक वर्ग को मिलेगा और न ही सारा उत्तरदायित्व किसी एक वर्ग पर थोपा जा सकेगा।

(ख) **फ्रैंक व लिलियन गिलब्रेथ का योगदान**

वैज्ञानिक प्रबंधके विकास में **फ्रैंक गिलब्रेथ** तथा उसकी पत्नी **लिलियन गिलब्रेथ** के योगदान का बहुत महत्व है। इन्होंने गति अध्ययन में विशेष योगदान दिया। गति अध्ययन के अंतर्गत व्यक्तियों एवं मशीनों द्वारा काम के दौरान की जाने वाली हरकतों (जैसे उठाना, रखना, पकड़ना, दबाना, घुमाना, जोड़ना, छेद करना आदि) का गहन अध्ययन किया गया। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि अनेक ऐसी अनावश्यक हरकतें हैं, जिन्हें खत्म किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि आवश्यक हरकतों को भी न्यूनतम किया जा सकता है। इस प्रकार काम करने के तरीकों में सुधार करके कार्यकुशलता में असंभावित वृद्धि की जा सकती है।

एक प्रयोग के दौरान जोकि फ्रैंक गिलब्रेथ ने किया था, यह पाया गया कि भवन निर्माण का काम करने वाला एक राज एक ईंट लगाने में 18 बार हरकतें करता है। लेकिन अनावश्यक

हरकतों को कम करके इनको केवल 5 तथा कुछ दशाओं में केवल 2 तक सीमित किया जा सकता है।

इन्होंने गति अध्ययन के साथ–साथ समय अध्ययन भी किया। समय अध्ययन के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि एक काम को पूरा करने में कितना प्रमापित समय लगना चाहिए। प्रमापित समय का अभिप्राय किसी काम को पूरा करने में लगने वाले ऐसे समय से है, जो सामान्य परिस्थितियों में एक औसत श्रमिक को लगाना चाहिए।

श्रीमति गिलब्रेथ जोकि मनोविज्ञान में पी.एच.डी. थीं, ने उद्योग में मानवीय तत्व पर विशेष जोर दिया। उन्होंने थकान के मनोवैज्ञानिक प्रभावों की व्याख्या की। इस प्रकार **गिलब्रेथ दंपति** ने वैज्ञानिक प्रबंधके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(ग) **हेनरी एल.गैंट का योगदान**

गैंट ने मजदूरी निर्धारण की कार्य एवं बोनस योजना प्रारम्भ की। इस योजना में समय, कार्य एवं मजदूरी दर प्रति इकाई प्रमापित कर दी जाती है। कार्यक्षमता के आधार पर दी जाती है और कार्यक्षमता के आधार पर श्रमिकों को तीन श्रेणियों में बांट दिया जाता है, जैसे –

(i) प्रमापित कार्य से कम काम करने वाले श्रमिक – इन्हें समयानुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है।

(ii) प्रमापित कार्य के बराबर काम करने वाले श्रमिक – इन्हें समयानुसार अथवा कार्यानुसार (दोनों से बराबर मजदूरी आती है) मजदूरी के अतिरिक्त 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक बोनस दिया जाता है।

(iii) प्रमापित कार्य से अधिक काम करने वाले श्रमिक– इन्हें कार्यानुसार मजदूरी के अतिरिक्त, कार्यानुसार मजदूरी पर 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक बोनस दिया जाता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मजदूरी निर्धारण की इस योजना में न्यूनतम मजदूरी की गारंटी होती है और कुशल श्रमिकों को अकुशल श्रमिकों की अपेक्षा अधिक मजदूरी प्राप्त होती है। इस योजना में बोनस की अच्छी दर होने के कारण यह सभी श्रमिकों को अधिक काम करने के लिए प्रेरित करती है।

गैंट ने यह भी कहा था कि उन पर्यवेक्षकों को भी बोनस दिया जाना चाहिए जो अपने श्रमिकों से वांछित स्तर तक काम लेने में सफल रहते हैं।

गैंट ने श्रमिकों की कुशलता के स्तर को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने की सलाह भी दी। प्रत्येक श्रमिक के काम को एक बार चार्ट पर प्रदर्शित किया जाता था। जो श्रमिक अपने काम को पूरा कर लेते उनके बार चार्ट को काली स्याही से और जो अपना काम पूरा न कर पाते, उनके बार चार्ट को लाल स्याही से भरा जाता था। गैंट का मानना था कि ऐसा करने से श्रमिकों पर प्रतिपादित काम को पूरा करने का मनोवैज्ञानिक दबाव रहता है और परिमाणतः वे अधिक से अधिक काम करने का प्रयास करते हैं।

(ii) **प्र�ासनिक प्रबन्ध**

प्रबंधकी प्रशासनिक प्रबंधविचारधारा का प्रतिपदान **हेनरी फेयोल** ने किया। इस विचारधारा को प्रक्रिया प्रबंधभी कहा जाता है। जिस प्रकार टेलर को 'वैज्ञानिक प्रबंधका पिता कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार फेयोल को 'प्रशासनिक प्रबन्ध' का पिता कहा जाता है। इन्होंने प्रबंधका ज्ञान फ्रांस की कई बड़ी कम्पनियों में प्रबंधन के रूप में काम करके प्राप्त किया।

फेयोल ने अपना कैरिअर 1860 में फ्रांस के एक कम्पनी में जूनियर इंजीनियर के रूप में प्रारंभ किया। सन 1872 मे उन्हें वरिष्ठ प्रबंधन तथा 1888 में उसी कम्पनी में मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त कर लिया गया। जब वे इस कम्पनी में आये तब कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी और कम्पनी दिवालीयापन के कगार पर थी। उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर न केवल इस कम्पनी को दिवालिया होने से बचाया बल्कि उसे एक समृद्ध कम्पनी में बदल दिया।

फेयोल अनेक प्रयोगों के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रबंधक्रिया, लेखांकन, विक्रय, उत्पादन, तथा वित्त संबंधी क्रियाओं से भिन्न एक ऐसी विशेष क्रिया है जिसको सभी संगठनों (व्यवसायिक तथा गैर–व्यवसायिक) में एक ही तरह से पूरा किया जाता है।

फेयोल ने इस निष्कर्ष से प्रबंधकी दो विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

(1) प्रबंधएक क्रिया है जो अन्य व्यवसायिक क्रियाओं से भिन्न है तथा

(2) प्रबंधमें सार्वभौमिकता का गुण है।

प्रथम विषेशता का स्पष्टीकरणः फेयोल ने सभी व्यवसायिक क्रियाओं को 6 भागों में विभक्त किया है जिसमें से प्रबंधक्रिया भी एक है। ये 6 क्रियाएँ निम्नलिखित हैंः

(i) तकनीकी क्रियाएँः उत्पादन संबंधी क्रियाएँ।

(ii) वाणिज्यिक क्रियाएँः क्रय विक्रय संबंधी क्रियाएँ।

(iii) वित्तिय क्रियाएँः वित संबंधी क्रियाएँ

(iv) सुरक्षा क्रियाएँः सम्पत्ति एवं लोगों की सुरक्षा संबंधी क्रियाएँ।

(v) लेखांकन क्रियाएँ : लेखे रखने संबंधी क्रियाएँ।

(vi) प्रबन्धकीय क्रियाएँः प्रबन्धकीय क्रियाओं में नियोजन, संगठन, समन्वय, आदेश देना एवं नियंत्रण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रबंधएक क्रिया है जिसे पूरा करने के लिए नियोजन, संगठन, नियुक्तियां, निर्देशन, नियंत्रण आदि उप–क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है।

दूसरी विशेषता का स्पष्टीकरणः फेयोल ने यह स्पष्ट किया कि प्रबंधएक ऐसी क्रिया है जो व्यावसायिक तथा गैर–व्यावसायिक सभी संगठनों में समान रूप से लागू होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रबंधके अंतर्गत जो भी किया जाता है वह सभी संगठनों में समान रूप से किया जाता है। फेयोल ने प्रबंधके पांच कार्य और चौदह सिद्धान्त प्रस्तुत किये, और कहा कि जो संगठन इनकी पालना करेगा, उसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

- **फेयोल के अनुसार प्रबंधके कार्य**

  नियोजन, संगठन, समन्वय, आदेश देना तथा नियंत्रण

- **फेयोल के अनुसार प्रबंधके सिद्धान्त**

➢ कार्य विभाजन

➢ अधिकार एवं दायित्व

➢ अनुशासन

➢ आदेश की एकता

➢ निर्देश की एकता

➢ व्यक्तिगत हित पर सामान्य हित को प्राथमिकता

➢ कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक

➢ प्रभावपूर्ण केन्द्रिकरण

➢ व्यवस्था अथवा क्रमबद्धता

➢ समता

➢ कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व

➢ पहल–शक्ति

- ➢ सोपान की श्रृंखला तथा समतल संपर्क
- ➢ सहयोग की भावना
- ➢ प्रशासनिक प्रबंधका मूल्यांकन

महत्व : फेयोल ने प्रबंधके क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत कुछ मुख्य विचार, जिनसे प्रबंधजगत को बहुत लाभ हुआ है निम्नलिखित हैं:

- प्रबंधकी सार्वभौमिकता
- प्रबंधन पैदा नहीं होते, बनाए जाते हैं
- केवल अधिकारों को सौंपा जा सकता है उत्तरदायित्व को नहीं
- एक प्रबंधन के नियंत्रण का विस्तार चार या छः से अधिक नहीं होने चाहिए
- एक व्यक्ति को केवल एक ही कार्य करना चाहिए।
- ऊपर से नीचे तक अधिकारों का स्पष्ट बंटवारा होना चाहिए

आलोचना : कुछ प्रबंधविषेशज्ञों ने फेयोल के विचारों का विरोध किया है। विरोध के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं हैः–

- फेयोल द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्तों में विरोधाभास है
- ये सिद्धान्त अध्ययन पर आधारित नहीं हैं।
- ये सिद्धान्त संगठन का मशीनीकरण करते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक प्रबंधकी आलोचना अधिक व्यावहारिक नहीं है। फेयोल द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त आज भी अटल हैं और प्रबन्धकों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

- **टेलर एवं फेयोल का तुलनात्मक अध्ययन**

  टेलर एवं फेयोल दोनों ही प्रख्यात विशेषज्ञ हुए हैं। प्रबंधके क्षेत्र में दोनों का अमूल्य योगदान रहा है। टेलर एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिन्होंने अपना जीवन एक श्रमिक के रूप में प्रारंभ किया था। यही कारण है कि उन्होंने श्रमिकों को काम करते हुए नज़दीक से देखा है। उनकी समस्याओं को समझा है तथा उनकी कार्यकुशलता के स्तर को पहचाना है। श्रमिकों की कार्यकुशलता के संबंध में टेलर ने अनेक प्रयोग किए और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि एक श्रमिक को जितना काम करना चाहिए उससे बहुत कम काम करता है। श्रमिकों की

कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए टेलर ने अनेक सुझाव दिए। टेलर के अध्ययन का केन्द्र श्रमिकों की कार्यकुशलता था। यही कारण है कि इन्हें कुशलता विशेषज्ञ के नाम से जाना जाता है।

इसके विपरीत, फेयोल ने अपना जीवन एक उच्च प्रबंधन के रूप में आरंभ किया। यही कारण है कि उन्होंने उच्च प्रबन्धकों की समस्याओं को नज़दीक से देखा व समझा है। उच्च प्रबन्धकों की समस्याओं को दूर करने के लिए फेयोल ने अनेक अमूल्य सिद्धान्तों को जन्म दिया। फेयोल के अध्ययन का केन्द्र उच्च प्रबन्धकों की समस्यों होने के कारण ही इन्हें प्रशासन विषेशज्ञ के नाम से जाना जाता है।

दोनों प्रबंधविशेषज्ञों के प्रबंधजगत में दिए गए योगदान में कुछ समानताएँ और कुछ असमानताएँ हैं। ये निम्नलिखित हैं:–

- **समानताएँ**

टेलर व फेयोल के विचारों में निम्नलिखित बातों के संबंध में समानता पाई जाती है:–

(1) **प्रबन्धकीय समस्याओं का समाधानः** दोनों प्रबंधविषेशज्ञों ने अपने– अपने अनुभवों एवं प्रयोगों के आधार पर प्रबन्धकीय समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए हैं। दोनों द्वारा प्रस्तुत किए गए समाधान सिद्धांतों के रूप में विद्यमान है।

(2) **व्यावहारिक पक्ष पर बलः** टेलर व फेयोल दोनों का वास्तविक कार्य से सीधा संबंध था। यही कारण है कि उन्होंने हर कार्य के व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया है। अर्थात जो सुधार संभव थे उन्होंने उन्हीं के संबंध में अपने सुझाव दिए हैं। उन्होंने ऐसा कोई भी सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया जिसको व्यावहारिकता में न लाया जा सके।

(3) **अच्छे औद्योगिक संबंधों पर बलः** दोनों का यह मत है कि यदि स्वामी व श्रमिकों में अच्छे संबंध स्थापित हो जाएं तो उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

- **असमानताएँ**

टेलर व फेयोल के विचारों में निम्नलिखित मतभेद हैं:

(1) **सिद्धान्तों का क्षेत्रः** टेलर के सिद्धान्त उत्पादन क्रियाओं से संबंधित हैं जबकि फेयोल के सिद्धान्त सभी प्रकार की प्रबन्धकीय क्रियाओं से संबंधित हैं।

(2) **सिद्धान्तों का नामः** टेलर ने अपने सिद्धान्तों को वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धान्तों के नाम से पुकारा है। दूसरी ओर, फेयोल ने अपने सिद्धान्तों को प्रशासन का सामान्य सिद्धान्त कहा है।

(3) **सिद्धान्तों का उद्देश्यः** टेलर के सिद्धान्तों का उद्देश्य श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। फेयोल के सिद्धान्तों का उद्देश्य प्रबन्धकों की प्रशासनिक कार्यकुशलता में वृद्धि करना है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आज प्रबंधजगत में अनेक परिवर्तन आ चुके हैं। इन्हीं परिवर्तनों के कारण टेलर के सिद्धान्त कुछ नज़र आने लगे हैं। दूसरी ओर, फेयोल के सिद्धान्त आधुनिक परिवेश में एकदम खरे उतरते हैं। लेकिन फिर भी टेलर के योगदान को कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि उनके सिद्धान्त भी किसी न किसी रूप में प्रबन्धकों का मार्गदर्शन अवश्य करते हैं।

(iv) **नौकरशाही प्रबंध– इस विचारधारा का** प्रतिपादन जर्मनी के मैक्स वैबर ने किया। वैबर के अनुसार, प्रबन्धकीय अनियिमताओं के समाप्त करने के लिए सख्त नियम बनाए जाने चाहिए। बड़े संगठन में नौकरशाही प्रबंधसे ही सफलता मिलती है।

- **नौकरशाही प्रबंधकी विशेषताएँ**

नौकरशाही प्रबंधकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः

(1) **उचित कार्य विभाजनः** उचित कार्य विभाजन का अभिप्राय, विशिष्टीकरण के आधार पर कार्य का निपटान करने से है। अर्थात जो व्यक्ति जिस कार्य का विशेषज्ञ हो उसे वही कार्य सौंपना चाहिए।

(2) **स्पष्ट अधिकार श्रृंखलाः** वरिष्ठ–अधिनस्थ संबंधों को स्पष्टतः परिभाषित कर दिया जाना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी अपने तथा अपने अधिनस्थ द्वारा लिए निर्णय के लिए अपने बॉस के प्रति उत्तरदायी होता है।

(3) **नियमों की व्यवस्थाः** संगठन के अंदर लिए जाने वाले कार्यों के लिए स्पष्ट नियम बनाये जाने चाहिएं तथा उनका सख्ती से पालन भी किया जाना चाहिए।

(4) **लोगों में व्यक्तिगत संबंधः** इस प्रबंधविचारधारा के अंतर्गत व्यक्तिगत संबंधों को अनदेखा किया जाता है। पुरस्कार संबंधों के आधार पर नहीं बल्कि कुशलता के आधार पर दिए जाने चाहिए।

(5) **पदोन्नति का आधार योग्यताः** इस प्रबंधविचारधारा के अनुसार, पदोन्नति का आधार योग्यता होना चाहिए।

इस प्रबंधविचारधारा के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैंः

गुण

- श्रम–विभाजन से विशेषज्ञता प्राप्त होती है।
- कर्मचारियों के व्यवहार में नियमितता आती है।
- पदोन्नति का आधार योग्यता को माने जाने के कारण कर्मचारियों की कुशलता में वृद्धि होती है।
- संगठन लगातार चलता रहता है क्योंकि व्यक्ति पर नहीं पदों पर ध्यान दिया जाता है।

दोषः

- कागज़ी कार्यवाही में वृद्धि।
- लाल फीताशाही में वृद्धि।
- आपसी संबंधों की भावना का कोई महत्व नहीं।
- श्रमिकों मे क्षमता का अभाव।
- श्रमिकों द्वारा परिवर्तन का विरोध।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि नौकरशाही प्रबंधका प्रयोग केवल उन संगठनों में किया जा सकता है जहां परिवर्तनों का प्रभाव न पड़ता हो अथवा परिवर्तन धीमी गति से होते हों अथवा परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता हो। ऐसा प्रायः सरकारी विभागों तथा बड़े व्यवसायिक संगठनों में होता है। दूसरी ओर, एक परिवर्तनशील व्यवसायिक संगठन में नौकरशाही प्रबंधको नहीं अपनाया जा सकता।

1.11.2 **नव–परंपरागत दृष्टिकोण**

प्रबंधविचारधारा का नव–परंपरागत दृष्टिकोण सन 1930 के आस–पास विकसित हुआ। इस दृष्टिकोण का आधार परंपरागत दृष्टिकोण ही है। इसके अंतर्गत परंपरागत दृष्टिकोण को कुछ सुधारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। परंपरागत तथा नव–परंपरागत दृष्टिकोण में मुख्य अंतर मानवीय संसाधन के साथ किए जाने वाले व्यवहार का लेकर है। जहां एक ओर, परंपरागत दृष्टिकोण के अंतर्गत, मानवीय संसाधन को अनदेखा करते हुए काम तथा भौतिक संसाधनों को महत्व दिया जाता था, वहीं दूसरी ओर, नव–परंपरागत दृष्टिकोण में मानवीय संसाधन के महत्व का समझा गया है। नये दृष्टिकोण के अंतर्गत व्यक्तिगत तथा समूहों के महत्व पर जोर दिया गया है।

इस दृष्टिकोण के दो आधारभूत स्तंभ हैं: मानवीय संबंध दृष्टिकोण तथा व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण।

(i) **मानवीय संबंध दृष्टिकोण**

टेलर का वैज्ञानिक प्रबंधदृष्टिकोण तथा फेयोल का प्रशासनिक प्रबंधदृष्टिकोण दोनों ही उत्पादन कुशलता तथा कार्य स्थल पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार स्थापित करने में असफल रहे। इनकी असफलता का मुख्य कारण मानवीय संसाधन की ओर ध्यान न दिया जाना था। मानवीय संबंध दृष्टिकोण की उत्पत्ति का भी यही कारण है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **एल्टन मेयो** ने पहली बार मानवीय संबंध दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। इस दृष्टिकोण को अंतिम रूप देने के लिए मेयो ने अपने सहयोगियों के साथ कुछ प्रयोग किए। इन प्रयोगों को हॉथोर्न प्रयोग के नाम से जाना जाता है।

ये प्रयोग 1927 से 1932 के यू.एस.ए. की वैस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी के हॉथोर्न प्लॉट में हुए थे। इन प्रयोगों के हॉथोर्न में होने के कारण ही इन्हें हॉथोर्न प्रयोग कहा जाता है। इस प्लॉट में टेलिफोन के पुर्जे तैयार किये जाते थे जहां 29000 श्रमिक काम करते थे। अपने प्रयोगों के दौरान मेयो एवं साथियों ने निम्नलिखित तत्वों का अध्ययन किया:–

- रोशनी एवं उत्पादकता में संबंध
- कार्य की दशाओं एवं उत्पादकता में संबंध (कार्य की दशाओं में रोशनी, हवा, विश्राम की अवधि, विश्राम की बारंबारता आदि को सम्मिलित किया जाता है।
- अनौपचारिक समूह एवं उत्पादकता में संबंध तथा
- आर्थिक प्रेरणाओं एवं उत्पादकता में संबध

इन प्रयोगों का यह परिणाम निकला कि उत्पादकता का संबंध उतना कार्य की दशाओं से नहीं है, जितना कि भावनात्मक तत्वों से है। मेयो तथा उसके साथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्य के समय श्रमिकों के मध्य अनौपचारिक संबंध महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उन्होंने कहा कि श्रमिक केवल उत्पादन का साधन नहीं हैं बल्कि वह एक सामाजिक प्राणी भी है जिसकी कुछ इच्छाएँ, भावनाएँ एवं प्रवृत्तियां हैं। यदि श्रमिक को एक सामाजिक प्राणी की दृष्टि से देखा जाए तो वह निश्चित रूप से अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। उन्होंने बताया कि उच्च उत्पादन एवं कर्मचारी सन्तुष्टि परस्पर एक–दूसरे पर आश्रित हैं। मानवीय संबंध का अर्थ भी यही है।

मानवीय संबंध दृष्टिकोण के मूल्यांकन के लिए इसके महत्व एवं सीमाओं का अध्ययन किया जाना जरुरी है। इसका वर्णन इस प्रकार है:–

महत्व अथवा योगदान

इस दृष्टिकोण का महत्व इसके अंतर्गत दिए गए निम्नलिखित सुझावों से स्पष्ट होता हैः

- कार्य की दशाओं एवं उत्पादकता में कोई संबंध नहीं है
- एक श्रमिक की कार्यकुशलता पर अवित्तिय पुरस्कारों का, अच्छा प्रभाव पड़ता है
- जनतंत्रीय, नेतृत्व शैली उत्पादन प्रधान शैली से अधिक प्रभावशाली है
- कारखाना व्यक्तियों का स्थान मात्र नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक संगठन है। अतः श्रमिकों को सामाजिक सन्तुष्टि प्रदान की जानी चाहिए
- श्रमिकों के मनोविज्ञान का बहुत महत्व होता है। अतः उसे समझा जाना चाहिए
- श्रमिको को निर्णयों में भागीदार बनाना चाहिए
- श्रमिकों के मान–सम्मान का ध्यान रखा जाना चाहिए
- कार्य के दौरान नियमित अंतराल पर विश्राम की व्यवस्था होनी चाहिए
- श्रमिकों को समूह में कार्य करने से अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है
- श्रमिकों को सभी सूचनाओं से अवगत रखना चाहिए

सीमाएँ

इस दृष्टिकोण की मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैंः

- इस दृष्टिकोण में मानवीय तत्व पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है तथा शेष तत्वों को अनदेखा कर दिया गया है।
- यह मानना कि व्यवसायिक संगठन को एक परिवार के रूप में स्थापित किया जा सकता है गलत है, क्योंकि इसमें अनेक धर्मों, जातियों व रुचियों के लोग काम करते हैं। ये लोग अलग–अलग समूह तो बना लेते हैं, परिवार नहीं।
- सभी श्रमिकों को अवित्तिय पुरस्कारों से खुश करना असंभव है।
- यह मानना कि लोग अनौपचारिक समूहों में अधिक सन्तुष्ट रहते हैं, गलत है। इस संदर्भ में कुछ शोधकर्ताओं का कहना है कि श्रमिक कारखानों में काम करने आते हैं न कि अनौपचारिक समूह बनाने।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मानवीय संबंध दृष्टिकोण का केंद्र बिंदु व्यक्ति है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, एक सन्तुष्ट व्यक्ति की उत्पादकता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

(ii) **व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण**

मानवीय संबंध प्रबंधदृष्टिकोण में कहा गया है कि सन्तुष्टि व उत्पादकता में सीधा संबंध है अर्थात श्रमिक जितने अधिक सन्तुष्ट होंगे उतना ही अधिक उत्पादन करेंगे। व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण का ही एक सुधरा हुआ रूप है। इसके अंतर्गत मानवीय संबंधों के स्थान पर मानव के व्यवहार का अध्ययन किए जाने की बात कही गई है। इस दृष्टिकोण के प्रवर्तक डगलस मेक्ग्रेगर, चस्टर आई. बरनार्ड, रेनसिस लिकर्ट, क्रिस आर्गरिस, फ्रैडरिक हर्जबर्ग, वारेन जी. बेनिस, क्रिस पार्करा फोलेट, अब्रहम माशलो, तथा राबर्ट टेनिन बॉम हैं। व्यवहारात्मक वैज्ञानिकों का मुख्य योगदान नेतृत्व, संदेशवाहन अभिप्रेरणा, संगठनात्मक परिवर्तन, संगठनात्मक झगड़े आदि क्षेत्रों में रहा। व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण 1940 के बाद प्रचलन में आया।

व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण के कुछ प्रवर्तकों द्वारा किए गए योगदान का विवरण इस प्रकार हैः—

(क) **अब्राहम मा�लो** : माशलो ने आवश्यकता—प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य की आवश्यकताएं अनेक होती हैं तथा उनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है। जैसे ही मनुष्य की पहली आवश्यकता पूरी होती है वह दूसरी के बारे में चिंतित हो जाता है और यह क्रम चलता रहता है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मनुष्य की आवश्यकताएं ही उसके लिए अभिप्रेरण का काम करती है।

(ख) **फ्रेडरिक हर्जबर्गः** हर्जबर्ग के अनुसार, अभिप्रेरक तत्वों के साथ—साथ अनुरक्षक तत्व भी श्रमिकों के उत्साह में वृद्धि करते हैं।

(ग) **डगलस मैक्ग्रेगर'**: मैक्ग्रेगर ने अभिप्रेरणा की परंपरागत विचारधारा को 'एक्स' विचारधारा तथा आधुनिक विचारधारा को 'वाई' विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया।

(घ) **रेनसिस लिकर्टः** अपने शोधकार्य के दौरान लिकर्ट ने अनेक प्रबन्धकों से संपर्क स्थापित किया और निष्कर्ष के रूप में चार मॉडल प्रस्तुत किये। इन्हें लिकर्ट की प्रबंधप्रणाली कहते हैं।

(ङ) **राबर्ट टेनिनबॉमः** टेनिनबॉम ने नेतृत्व व्यवहार की निरंतरता का प्रतिपादन किया। टेनिकवॉम के अनुसार, ऐसा संभव नहीं है कि किसी एक नेतृत्व शैली को सभी परिस्थितियों में लागू किया जा सके। इसलिए इन्होंने एक–दो नहीं बल्कि सात नेतृत्व शैलियों का वर्णन किया।

व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण के प्रवर्तकों ने मानव व्यवहार का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किएः

- कर्मचारियों को नीति–निर्धारण में हिस्सा प्रदान करना चाहिए
- कर्मचारियों से मानवता का व्यवहार करना चाहिए
- प्रबंधन का कर्तव्य है कि स्वस्थ वातावरण प्रदान करे
- थोपे गए नियंत्रण के स्थान पर स्वतः नियंत्रण की पद्धति को अपनाना चाहिए

1.11.3 आधुनिक दृष्टिकोण

प्रबंधविचारधारा का आधुनिक दृष्टिकोण सन 1950 के आस–पास विकसित हुआ। इसके अंतर्गत परंपरागत तथा नव–परंपरागत दृष्टिकोण को कुछ सुधारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टिकोण के तीन आधारभूत स्तंभ हैंः संख्यात्मक दृष्टिकोण, प्रणाली दृष्टिकोण तथा आकस्मिक दृष्टिकोण।

(i) **प्रणाली दृष्टिकोण**

यह प्रबंधका नवविकसित दृष्टिकोण है जिसका उदय 1960 में हुआ। इसका प्रतिपादन **चेस्टर आई. वरनार्ड, हरबर्ट ए. साइमन** व साथियों ने किया। प्रणाली का अभिप्राय छोटी–छोटी एक–दूसरे से संबंधित इकाईयों के समूह से है। विभिन्न इकाईयों के समूह अर्थात एक पूरी ईकाई को प्रणाली तथा छोटी–छोटी ईकाइयों को व्यक्तिगत रूप में उप–प्रणाली कहते हैं। सभी छोटी–छोटी इकाइयां स्वयं में स्वतंत्र होती है। लेकिन संबंधित प्रणाली अन्य उप–प्रणालीयों से किसी न किसी रूप में जुड़ी होती है। सभी उप – प्रणाली एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए मानो कि स्कूटर एक प्रणाली है जिसके इंजन, शाफ्ट, गियर, पहिए, बॉडी आदि अनेक उप–प्रणालीयां हैं। ये सभी उप–प्रणालीयां एक–दूसरे से संबंधित हैं और किसी एक के फेल हो जाने पर मुख्य प्रणाली काम करना बंद कर देती हैं। अतः मुख्य प्रणाली की सफलता उप–प्रणालीयों के सहयोग एवं कुशलता पर निर्भर करती

है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक प्रणाली का अभिप्राय आपस में संबंधित अनेक भागों से है जो एक निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साथ–साथ कार्य करते हैं।

प्रणाली दृष्टिकोण के अनुसार, पूरा संगठन एक प्रणाली है और इसके विभिन्न उसकी उप–प्रणालीया। सभी उप–प्रणालीया मिलकर काम करती हैं तभी संगठन के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है। अतः जब प्रबंधन एक उप – प्रणाली के संबंध में कोई निर्णय लेता है तो यह देख लेना चाहिए कि उस निर्णय का अन्य उप–प्रणालियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(ii) **आकस्मिकता अथवा परिस्थिति मूलक दृष्टिकोण**

आक्समिकता दृष्टिकोण प्रबंधका एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का उदय 1970 के आस–पास हुआ। इसके अनुसार, प्रबन्धकों को निर्णय परिस्थितियों के अनुसार लेना चाहिए, न कि सिद्धान्त के अनुसार। इसका अभिप्राय यह है कि कि कोई भी ऐसा सिद्धान्त / सूत्र / प्रबन्धकीय कार्यवाही नहीं हो सकती जो सभी परिस्थितियों में उपयुक्त रहे। इसका मुख्य कारण है वातावरण की परिवर्तनशीलता। यहां वातावरण का अभिप्राय उन सभी तत्वों के योग से है जिनसे एक संगठन प्रभावित होता है। ये तत्व आंतरिक व बाध्य दोनों प्रकार के होते हैं। आंतरिक तत्वों में उद्देश्य, नीतियां, संगठन ढांचा, प्रबंधसूचना प्रणाली आदि को सम्मिलित किया जाता है। जबकि बाध्य तत्वों में ग्राहक, पूर्तीकर्ता, प्रतियोग, सरकारी नीतियां, राजनैतिक ढांचा, वैधानिक प्रणाली आदि सम्मिलित होते है। ये सभी तत्व परिवर्तनशील हैं इसलिए संगठन के वातावरण को परिवर्तनशील कहा जाता है।

प्रणाली दृष्टिकोण संगठन एवं वातावरण में संबंध स्थापित करने में असफल रहा है। आकस्मिक दृष्टिकोण में इसी कमी को पूरा करने का प्रयास किया गया है। अतः प्रबन्धकों का आधारभूत कर्तव्य है कि वे वातावरण का विश्लेषण करें और विश्लेषण के आधार पर निर्णय लें। प्रबन्धकों को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि किसी कार्य को करने की कोई एक विधि हमेशा उपयुक्त नहीं हो सकती। किसी समस्या के हल के लिए एक परिस्थिति में कोई विशेष विधि उपयुक्त हो सकती है जबकि किसी अन्य परिस्थिति में नहीं। जहां तक प्रबंधके विभिन्न सिद्धान्तों का प्रश्न है वे प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करते हैं तथा वर्तमान गतिशील वातावरण में उनसे यह आशा करना कठिन नहीं है कि ये सिद्धान्त सभी परिस्थितियों में उपयुक्त होंगे।

आकस्मिक दृश्टिकोण की वि�िश्ताएँ

- प्रबन्धकीय कार्यवाही पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है
- प्रबन्धकीय कार्यवाही परिस्थितियों के अनुसार बदलती है
- संगठन का वातावरण आवश्यक होता है

आकस्मिक दृश्टिकोण की सीमाएँ

- यह कहना पर्याप्त नहीं है कि प्रबन्धकीय कार्यवाही परिस्थिति पर निर्भर करती है। यह बताए जाने की आवश्यकता है कि किस परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए।
- एक परिस्थिति अनेक तत्वों से प्रभावित हो सकती है। इन सभी तत्वों का विश्लेषण किया जाना कठिन है। उदाहरण के लिए, नेतृत्व की अनेक शैलियां हैं लेकिन किसी एक शैली को सभी परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार अभिप्रेरण व नियंत्रण की भी अनेक विधियां हैं लेकिन किसी एक विधि को ही सभी परिस्थितियो में लागू नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यह दृष्टिकोण प्रबन्धकों को सर्तक रहने का सुझाव देता है और कहता है कि परिस्थितियों के अनुसार अपने दृष्टिकोण तथा कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाना चाहिए।

सारां�ा

प्रबंधप्रबन्धकीय निर्णयों को लेने तथा उनको क्रियान्वित करने की प्रक्रिया है। प्रबंध मूलतः मनुष्य मशीन, मुद्रा, सामग्रियों तथा विधियों जैसे उत्पादन के विभिन्न घटकों का वर्णन करता है। एक प्रबंधक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस कार्यक्षमता के साथ उत्पादन के इन सीमित साधनों का प्रयोग करता है। उत्पादन के इन साधनों के अनुकूलतम उपयोग में ही प्रबंध की सफलता का रहस्य निहित है। प्रबंध को मानव शरीर में मस्तिष्क के साथ तुलना करके देखा जा सकता है। बिना मस्तिष्क के मानवीय शरीर मात्र हड्डियों तथा स्नायतंत्र का ढांचा सा बनकर रह जाता है तथा कुछ भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार प्रबंध के बिना एक सामग्री, मुद्रा, मशीन, उपकरण जैसे प्रत्येक साधन का ढेर सा होकर रह जाता है। क्योंकि वह केवल प्रबंध ही है जो उसको कार्य रूप में लाता है। वर्तमान में संगठनों की गतिविधियां बढ़ने से प्रबंध का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। तकनीकी उन्नयन नित नई चुनौतियों को उत्पन्न कर रहा हे। अतः प्रबंध

की सफलता प्रबंधक की योग्यता, क्षमता तथा अनुभव पर निर्भर करती हे। मानवीय संबंधों के पैचीदेपन के कारण यह आवश्यक हो गया है कि सफलता प्राप्त करने हेतु प्रबंधक को प्रबंध के सिद्धान्तों तथा तकनीकों की पर्याप्त जानकारी हो।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र□न

प्र.1 प्रबंध से क्या अभिप्राय है?

प्र.2. प्रबंध प्रक्रिया से क्या आशय है?

प्र.3 प्रबंध प्रक्रिया की सार्वभौमिक अवधारणा के बारे मे बताइए।

प्र.4 प्रबंध की महत्ता का समझाइए।

प्र.5 नौकरशाही प्रबंध क्या है?

प्र.6 एफ.डब्लयू. टेलर को वैज्ञानिक प्रबंध का पिता क्यों कहा जाता है?

प्र.7 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के बारे में बताइए।

प्र.8 प्रबंधकीय भूमिकाओं को संक्षेप में बताइए।

प्र.9 प्रबंध की अंतर्वेयक्तिक भूमिकाएं क्या है?

प्र.10 सूचनात्मक भूमिकाएं समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्र□न

प्र.1 'सोपान श्रृंखला' का सिद्धान्त क्या है ? रेखाचित्र की सहायता से 'मिलान पट्टी' की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

प्र.2 प्रबंधका वह सिद्धान्त कौन–सा है जिसके अनुसार एक ही उदेश्य की पूर्ती करने वाली सभी एक–सी क्रियाएं एक अधिकारी के अधीन ही होनी चाहिए तथा उसके लिए एक ही योजना होनी चाहिए? सिद्धान्त को उपयुक्त उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

प्र.3 'आदेश की एकता' सिद्धान्त को संक्षेप में समझाइये। यह 'दिशा की एकता' के सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है?

प्र.4 'समतल संपर्क' क्या है? एक चित्र द्वारा दिखाइए।

प्र.5 प्रबंधका कौन–सा सिद्धान्त कर्मचारियों के प्रति 'न्याय एवं उदारता' के व्यवहार की बात कहता है? प्रबंधमें यह सिद्धान्त क्यों आवश्यक है?

प्र.6 यदि एक संगठन भौतिक तथा मानवीय संसाधनों के लिए सही स्थान उपलब्ध नहीं कराता तो किस सिद्धान्त की अवहेलना होती है? इसके क्या परिणाम होते हैं

प्र.7 प्रबंधविचारधारा के विकास के विभिन्न परंपरागत दृष्टिकोणों की विवेचना कीजिए।

प्र.8 वैज्ञानिक प्रबंधदृष्टिकोण के विकास में टेलर की भूमिका की विवेचना कीजिए।

प्र.9 प्रबंधक्षेत्र में टेलर के योगदान को लिखिए।

प्र.10 वैज्ञानिक प्रबंधमें फ्रैंक व लिलियन गिलब्रेड के योगदान की विवेचना कीजिए।

प्र.11 प्रबंधके क्षेत्र में हेंनरी फेयोल के योगदान को संक्षेप में समझाइये।

प्र.12 वैज्ञानिक प्रबंधका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

प्र.13 टेलर व फेयोल के प्रबंधदृष्टिकोण में अंतर स्पष्ट कीजिए।

प्र.14 नौकरशाही प्रबंधसे आपका क्या अभिप्राय है? इसकी विशेषताएँ क्या है? इसका मूल्यांकन कीजिए।

प्र.15 प्रबंधविचारधारा के विकास में मानवीय संबंधों एवं व्यवहारात्मक विज्ञान के योगदान का वर्णन कीजिए।

प्र.16 प्रबंधके आधुनिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन कीजिए।

खण्ड – 1
इकाई – 2 नियोजन

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

2.0 प्रस्तावना

2.1 नियोजन का अर्थ

2.2 नियोजन की विशेषताएँ

2.3 नियोजन का महत्व

2.4 नियोजन की सीमाएँ

2.5 नियोजन प्रक्रिया

2.6 नियोजन के प्रकार

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएंगे :–

- नियोजन का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- नियोजन की विशेषताएँ
- नियोजन का महत्व
- नियोजन की सीमाएँ
- नियोजन प्रक्रिया
- योजनाओं के प्रकार

2.0 प्रस्तावना

नियोजन प्रबंधका आधारभूत कार्य है। इससे ही प्रबंधके अन्य कार्य आरम्भ होते हैं। जब तक नियोजन द्वारा उद्देश्य एवं उन्हें प्राप्त करने के ढंग का निर्धारण नहीं किया जाता, तब तक संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन व नियंत्रण सभी प्रबन्धकीय कार्य अर्थहीन होते हैं।

2.1 नियोजन का अर्थ

यह प्रबंधका वह कार्य है जिसमें लक्ष्यों का निर्धारण करने तथा उन्हें प्राप्त करने हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसके अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि क्या करना है? कैसे करना है? तथा कब करना है? किसके द्वारा किया जाना है? इन सभी प्रश्नों के बारे में निर्णय लेना ही नियोजन कहलाता है। इन प्रश्नों के बारे में निर्णय लेने की समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन सभी प्रश्नों के एक से अधिक संभावित उत्तर उपलब्ध हों। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नियोजन एक चयनात्मक प्रक्रिया है।

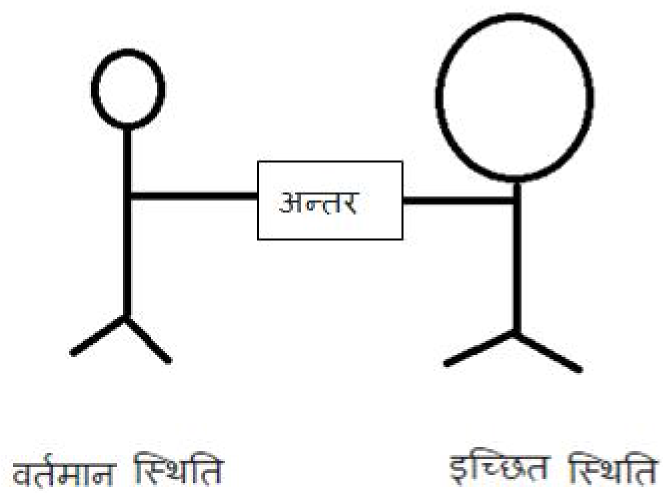

चित्र – 2.1 नियोजन

टूल बाक्स 1
नियोजन इसका अभिप्राय कुछ करने के सोच–विचार करने से है।

नियोजन की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(क) **कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, 'क्या करना है, इसे कैसे करना है, इसे कब करना है और इसे किसके द्वारा किया जाना है का पूर्व निर्धारण करना ही नियोजन है।

(ख) **हैमन** के अनुसार, 'क्या किया जाना है इसका पूर्व निर्घारण ही नियोजन है'।

(ग) **एम.ई.हर्ले के** अनुसार, 'क्या करना है, इसका पूर्व निर्धारण ही नियोजन है। इसके अंतर्गत विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों, कार्यविधियों और कार्यक्रमों में सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाना सम्मिलित होता है'।

2.2 नियोजन की विशेषताएँ

नियोजन की परिभाषाओं का अध्ययन करने पर इसकी विशेषताओं एवं प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती हैः–

- नियोजन का ध्यान उद्देश्य प्राप्ति पर केन्द्रित होता है। प्रबंधका शुभारंभ नियोजन से होता है और नियोजन का शुभारंभ उद्देश्य निर्धारण से। उद्देश्य के अभाव में किसी संगठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।
- नियोजन एक चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें एक से ज्यादा संगठित कार्यों में से चुनाव किया जाता है।

2.3 नियोजन का महत्व

नियोजन प्रबंधका प्रथम एवं सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक प्रबन्धकीय स्तर पर होती है। नियोजन के अभाव में किसी भी व्यवसायिक संस्था की सभी क्रियाएं अर्थहीन हो जाएंगी। संस्थाओं के आकार एवं जटिलताओं में वृद्धि होने के कारण नियोजन का महत्व और भी बढ़ गया है। नियोजन इसलिए भी एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया है, क्योंकि आज व्यवसाय को एक ऐसे वातावरण में जीवित रहना पड़ता है जो अनिश्चित तथा निरंतर परिवर्तनशील है। नियोजन के अभाव में भविष्य की अनिश्चित घटनाओं का अनुमान लगाना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है।

एक व्यवसायिक संस्था में नियोजन का महत्व अथवा लाभ निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता हैः–

(क) **नियोजन दि□ा प्रदान करता हैः** नियोजन प्रक्रिया द्वारा संस्था के उद्देश्यों को सरल एवं स्पष्ट शब्दों में परिभाषित किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि सभी कर्मचारियों को एक ऐसी दिशा मिल जाती है जिसकी ओर सभी के प्रयास केन्द्रित हो जाते हैं। इस प्रकार संस्था के मुख्य उद्देश्यों को प्राप्त करने में नियोजन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

उदाहरण के लिए, माना एक कम्पनी नियोजन के अंतर्गत अपना बिक्री लक्ष्य निर्धारित करती है। अब सभी अन्य विभागः जैसे – क्रय, उत्पादन, सेविवर्गीय, वित्त, आदि बिक्री लक्ष्य के संदर्भ में ही अपने–अपने उद्देश्य निर्धारित करेंगे। इस प्रकार सभी प्रबन्धकों का ध्यान अपने–अपने उद्देश्यों की पूर्ति की ओर केन्द्रित हो जाएगा। जब सब अपने–अपने उद्देश्यों को पूरा कर लेंगे तो बिक्री लक्ष्य को प्राप्त करना निश्चित हो जाएगा। अतः उद्देश्यों के अभाव में संगठन अपंग हो जाता है और उद्देश्य का निर्धारण नियोजन के अंतर्गत ही किया जाता है।

(ख) **नियोजन अनि□चितता का जोखिम कम करता हैः** नियोजन सदैव भविष्य के बारे में किया जाता है और भविष्य अनिश्चित होता है। नियोजन द्वारा भविष्य में संभावित परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाकर विभिन्न क्रियाओं को अच्छे से अच्छे ढंग से नियोजित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार नियोजन द्वारा भावी अनिश्चितताओं से होने वाले जोखिम को कम किया जाता है।

उदाहरण के लिए, बिक्री लक्ष्य निर्धारित करने से पहले बाजार सर्वेक्षण करके यह पता लगाया जा सकता है कि कितनी नई कम्पनियां प्रतियोगिता में उतरने वाली हैं। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर भावी क्रियाओं को नियोजित करके संभावित संकट से छुटकारा पाया जा सकता है।

(ग) **नियोजन आव□यक क्रियाओं के छूटने व अपव्ययी क्रियाओं को कम करता हैः–** नियोजन के अंतर्गत उद्देश्य प्राप्ति के लिए भावी क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है। फलस्वरुप, यह निश्चित हो जाता है कि कब, कहां, क्या व क्यों चाहिए। इससे अव्यवस्था व भ्रम की स्थिति समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न क्रियाओं व विभागों में समन्वय स्थापित होता है जिससे यह संभावना खत्म हो जाती है कि किसी आवश्यक क्रिया को पूरा न किया जाए और अपव्ययी क्रियाएं होती रहे। परिणामतः अपव्यय शून्य की ओर चला जाता है, कुशलता बढ़ती है और लागतें अपने न्यूनतम स्तर पर आ जाती हैं।

उदाहरण के लिए, यदि यह निश्चित हो जाए या कि किसी विशेष महीने में इतनी धनराशि की जरुरत होगी तो वित्त प्रबंधन समय पर व्यवस्था कर लेगा। इस जानकारी के अभाव में उस महीने में धनराशि आवश्यकता से कम या अधिक हो सकती है। दोनों ही स्थितियां अवांछनीय हैं। कम होने कर काम पूरा नहीं हो सकेगे और अधिक होने पर अनावश्यक रुप से नगदी पड़ी रहेगी और ब्याज की हानि होगी।

(घ) **नियोजन नवीनतम विचार विकसित करता हैः** जैसा कि स्पष्ट है कि नियोजन में विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है। किसी कार्य को करने के लिए विभिन्न विकल्प स्वयं ही प्रबंधन के पास नहीं आ पाते बल्कि उनकी खोज करनी पड़ती है। इस प्रयास में नए–नए विचार सामने आते हैं तथा उनमें और अधिक निखार लाने के लिए उनका गहराई से अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार नियोजन से प्रबन्धकों में सोच – विचार करने की शक्ति का संचार होता है और अंततः नव–प्रवर्तन एवं सृजनशीलता को बढ़ावा मिलता है।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है। यह विचार आते ही संबंधित प्रबंधन के मस्तिष्क में नियोजन की कार्यवाही शुरु हो जाएगी। वह कुछ इस प्रकार सोचेगा –

- क्या पहले वाले उत्पाद की ही कुछ और किस्में तैयार की जाएं?
- क्या थोक बिक्री के साथ–साथ फुटकर बिक्री भी की जाए?
- क्या अपने पुराने उत्पाद के लिए ही अन्य स्थानों पर शाखाएं खोली जाएं?
- क्या किसी नए उत्पाद का बाजार में लाया जाए?
- क्या अपने उत्पाद को इंटरनेट के माध्यम से भी बेचा जाए?

इस प्रकार एक के बाद अनेक विचार सामने आएंगे। ऐसा करने पर, यह प्रबंधन कुछ नया व रचनात्मक करने की सोचेगा। कम्पनी के लिए यह एक सुखद स्थिति है, जो नियोजन के माध्यम से पैदा होती है।

(ङ) **नियोजन निर्णयन में सहायक है** : निर्णयन का अर्थ निर्णय लेने की प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत विकल्पों की खोज की जाती है तथा बेहतर विकल्प का चयन किया जाता है। नियोजन के अंतर्गत निर्णयन का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। यह विभिन्न विकल्पों के मूल्यांकन का आधार भी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार नियोजन निर्णयन में सहायक है।

(च) **नियोजन नियन्त्रण के लिए प्रमाप नि□िचत करता है** : नियोजन द्वारा संस्था के उद्देश्यों को निर्धारित करके संस्था मे कार्यरत सभी विभागों एवं व्यक्तियों को बता दिया जाता है कि उन्हें कब, क्या और किस प्रकार करना है। उनके कार्य, समय, लागत आदि के बारे में प्रमाप निश्चित कर दिए जाते हैं। नियन्त्रण में कार्य पूरा होने पर प्रमापित कार्य को असल में हुए कार्य के साथ माप करके विचलनों का पता लगाया जाता है। ऋणात्मक विचलन आने पर अर्थात कार्य इच्छानुसार पूरा न होने पर संबंधित व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जाता है।

उदाहरण के लिए, एक श्रमिक के लिए एक दिन में 10 ईकाई काम करना निश्चित किया जाता है (यह नियोजन की बात है) वह वास्तव में 8 इकाई काम करता है। इस प्रकार 2 इकाई का ऋणात्मक विचलन आता है। इसके लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जाएगा। (वास्तविक कार्य का माप, विचलन की जानकारी व श्रमिक को उत्तरदाया ठहराना नियंत्रण के अंतर्गत आता है) इस प्रकार नियोजन के अभाव में नियंत्रण संभव नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र1.	प्रबन्धन का पहला कार्य क्या है?
प्र.2.	नियोजन से आप क्या समझते हैं?
प्र.3	नियोजन की किन्हीं दो विशेषताओं को बताइये।

2.4 नियोजन की सीमाएँ

नियोजन की आवश्यकता व्यवसायिक तथा गैर–व्यवसायिक दोनों प्रकार की संस्थाओं में होती है। कुछ लोगों का यह मत है कि नियोजन भविष्य के बारे में पूर्वानुमान पर आधारित होता है और भविष्य के बारे में कुछ भी निश्चित रुप से नहीं कहा जा सकता, इसलिए यह एक बेकार की प्रक्रिया है। वास्तव में, इन लोगों का इशारा नियोजन में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों की ओर है। यदि नियोजन को सफल एवं उद्देश्यपूर्ण बनाना है, तो प्रबन्धकों को नियोजन की इन कठिनाइयों अथवा सीमाओं से अवगत होना चाहिए। ये सीमाएँ निम्नलिखित हैंः–

(i) **नियोजन अलोचकता पैदा करता है**ः यद्यपि नियोजन में लोच की विशेषता विद्यमान होती है अर्थात आवश्यकता पड़ने पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु नियोजन में केवल छोटे परिवर्तन ही संभव होते हैं। बड़े परिवर्तन न तो संभव ही होते हैं और न ही संस्था के

लिए हितकर। इस प्रकार बदलती परिस्थितियों के अनुसार योजनाओं में वांछित परिवर्तन न कर पाने के कारण अनेक लाभ के अवसर संस्था के हाथों से निकल जाते हैं। नियोजन में सीमित लोचकता के लिए आंतरिक व बाध्य दोनों तरह के तत्व जिम्मेदार है। इन तत्वों को आंतरिक व बाध्य अलोचकता कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं:

(क) **आंतरिक अलोचकता** : नियोजन के समय संस्था के उद्देश्य, नीतियां, कार्यविधियां, नियम, कार्यक्रम, आदि का निर्धारण कर दिया जाता है। इनमें बार–बार परिवर्तन करना बहुत कठिन है। इसे आंतरिक अलोचकता कहते हैं।

(ख) **बाध्य अलोचकता** : बाध्य अलोचकता का अर्थ अनेक बाध्य तत्वों से नियोजन में सीमित लोचकता का पाया जाना है। नये तत्व नियंत्रणकर्ता के नियन्त्रण में नहीं होते। इसमें मुख्यतः राजनैतिक परिवेश, आर्थिक परिवर्तन, तकनीकी परिवर्तन, प्राकृतिक प्रकोप, प्रतियोगियों की नीतियों आदि को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए, राजनैतिक परिवेश में परिवर्तन के कारण नई सरकार द्वारा व्यापार नीति, कर नीति, आयात नीति आदि में परिवर्तन किए जाने से संस्था द्वारा बनाई गई योजनाएं व्यर्थ हो जाती है। इसी प्रकार प्रतियोगियों की नीतियों में अचानक परिवर्तन से योजनाएं प्रभावहीन हो जाती हैं।

(ii) **नियोजन परिवर्तन�ील वातावरण में काम नहीं करता**: नियोजन भविष्य के बारे में किए गए पूर्वानुमानों पर आधारित होता है। क्योंकि भविष्य अनिश्चित एवं परिवर्तनशील होता है इसलिए पूर्वानुमान प्रायः पूर्ण रुप से सही नहीं हो पाते। अतः योजनाओं को सफलता प्राप्ति का आधार मानना, अंधेरे में तीर चलाने के बराबर है। प्रायः योजना की अवधि जितनी लम्बी होगी, वह उतनी ही कम प्रभावी होगी। इसलिए कहा जा सकता है कि नियोजन परिवर्तशील वातावरण में काम नहीं करता।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी ने पूर्वानुमान लगाया कि सरकार शीघ्र ही किसी विशेष उत्पाद का निर्यात खोलने वाली है। इसी उम्मीद से कम्पनी ने उस उत्पाद का उत्पादन प्रारंभ कर दिया। लेकिन सरकार ने निर्यात नहीं खोला। इस प्रकार गलत अनुमान से नियोजन अशुद्ध हो जाएगा। और लाभ के स्थान पर हानि होगी।

(iii) **नियोजन रचनात्मकता को कम करता है**: नियोजन के अंतर्गत संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली सभी क्रियाओं को पहले से ही निश्चित कर दिया जाता है। फलस्वरुप प्रत्येक व्यक्ति केवल वही करता है और उसी ढंग से करता है जैसा कि

योजनाओं में स्पष्ट किया गया हो। इससे उनकी पहल–क्षमता अर्थात सोच–विचार अधिक उपयुक्त उपायों की खोज करने एवं उन्हें लागू करने पर रोक लग जाती है। **टेरी** के अनुसार, ''नियोजन कर्मचारियों की पहल–क्षमता का गला घोंट देता है और वह उनको लोचहीन ढंग से काम करने के लिए मजबूर करता है।''

(iv) **नियोजन पर अधिक लागतें आती हैं** : नियोजन शब्द जितना छोटा है इसकी प्रक्रिया उतनी ही बड़ी है। एक लम्बा रास्ता तय करने पर ही योजना अर्थपूर्ण बनती है। इस लम्बे रास्ते को पार करने में बहुत समय लग जाता है और इस पूरे समय में अनेक सूचनाएं एकत्रित करने व उनकी विश्लेषण करने में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार लोग, अधिक समय तक एक ही कार्य में व्यस्त रहेंगे, तो संस्था के खर्चो में अनावश्यक बढ़ोतरी होना निश्चित है।

(v) **नियोजन प्रक्रिया में अधिक समय लगता हैः** नियोजन एक निश्चित स्थिति का सामना करने के लिए तो वरदान है लेकिन इसकी प्रक्रिया में अधिक समय लगने के कारण यह आकस्मिक आपातस्थिति का सामना नहीं कर सकते। आकस्मिक स्थिति का अभिप्राय यह है कि एकदम से कोई ऐसा समस्या उत्पन्न हो जाना अथवा लाभ का कोई ऐसा अवसर दिखाई देना, जिसके बारे में पहले से कोई नियोजन नहीं किया है और अब तुरंत निर्णय लेना जरुरी है। ऐसी स्थिति में यदि प्रबंधन यह सोचे कि इनके बारे में पहले नियोजन प्रक्रिया को पूरा किया जाए और निर्णय ले, तो हो सकता है तब तक इतना समय लग जाए कि उपस्थित समस्या गम्भीर रुप धारण कर ले अथवा लाभ का अवसर हाथ से निकल जाए। अतः नियोजन में अधिक समय लगने के कारण कार्यवाही में देरी होती है।

(vi) **नियोजन सफलता की गारंटी नहीं देता** : कई बार प्रबंधन यह समझ बैठता है कि योजनाएं बन लेने से ही सारी समस्या हल हो गई। इस धारणा से प्रभावित होकर वे वास्तविक कार्य में लापरवाही बरतने लग जाते हैं, जिसके विपरीत परिणाम भुगतने पड़ते हैं। इस प्रक्रिया का नियोजन प्रबन्धकों को सुरक्षा का झूठा लालच देकर उन्हें लापरवाह बना देता है। अतः हम कह सकते हैं कि नियोजन कर लेना मात्र से ही सफलता सुनिश्चित नहीं हो जाती है बल्कि इसके लिए अनेक प्रयास करने पड़ते हैं।

नियोजन की सीमाओं का अध्ययन कर लेने पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि नियोजन अनावश्यक है अथवा यह एक विलासिता है जिसे केवल बड़े संगठन ही सहन कर सकती हैं। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। यह प्रबंधका एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस पर पर्याप्त ध्यान

दिया जाना आवश्यक है। अतः यह नहीं कि योजनाऐं बनाई जाएं, अथवा नहीं, बल्कि यह कि उन्हें अच्छे ढंग से कैसा बनाया जाए। योजनाओं के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को दूर करके उन्हें प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र 4. आंतरिक एवं बाध्य आलोच क्या है?
प्र. 5. नियोजन रचनात्मकता को कम कैसे करती है?
प्र.6 क्या नियोजन एक महंगी क्रिया है?

2.5 नियोजन प्रक्रिया

जब हम नियोजन को प्रबंधके सम्बन्ध में देखते हैं तो प्रबंधका एक अंग होने के कारण इस क्रिया को नियोजन प्रक्रिया कहा जाता है। दूसरी ओर, जब इसका व्यक्तिगत रुप से अध्ययन किया जाता है तो यह प्रक्रिया कहलाती है, क्योंकि इसे पूरा करने के लिए एक के बाद एक अनेक सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। जहां तक नियोजन प्रक्रिया मे सम्मिलित सीढ़ियों/कदमों का प्रश्न है ये समस्या के आकार पर निर्भर करता हैं। भिन्न सस्थाओं में नियोजन प्रक्रिया भिन्न हो सकती है।

नियोजन प्रक्रिया
↓
उद्देश्य
↓
सीमाएं विकसित करना
↓
वैकल्पिक कार्यवाहियों की पहचान करना
↓
एक विकल्प का चयन करना
↓
योजना का लागू करना
↓
समीक्षा करना

चित्र – 2.2 नियोजन प्रक्रिया

नियोजन की आवश्यकता किसी समस्या को सुलझाने या किसी अवसर का लाभ उठाने के लिए होती है। इसी संदर्भ में एक प्रबंधन उपक्रम की ताकत व कमजोरी का विशेलेषण करता है।

इस विशलेष में उपक्रम के आंतरिक एवं बाहरी वातावरण का ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए वहां कारखाने स्थापित करने को प्राथमिकता दे रही है तो एक बुद्धिमान प्रबंधन निश्चित रुप से इस अवसर का लाभ उठाना चाहेगा। यहीं से नियोजन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। व्यवसायिक संस्थाओं में नियोजन प्रक्रिया में प्रायः निम्नलिखित कदम निहित होते हैं:

(i) **उद्दे□य निर्धारित करना** : उद्देश्य वे अंतिम बिंदु होते हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए समस्त क्रियाएं की जाती है। नियोजन प्रक्रिया में सर्वप्रथम उद्देश्यों को निर्धारित एवं परिभाषित किया जाता है ताकि सभी संबंधित कर्मचारियों को इनकी जानकारी हो जाए और वे इन्हें प्राप्त करने में पूरा योगदान दे सकें। उद्देश्यों का एक प्राथमिकता क्रम होता है जैसे– संस्थागत उद्देश्य, विभागीय उद्देश्य व व्यक्तिगत उद्देश्य। इसी क्रम में इन्हें निर्धारित एवं परिभाषित किया जाता है।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी अपने बिक्री को 2000 करोड़ रुपये तक ले जाना चाहती है। (यह कम्पनी का संस्थागत उद्देश्य है) इस उद्देश्य को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है – माना कम्पनी के चार प्रमुख उत्पाद हैं जिनकी अपेक्षित बिक्री क्रमशः 1000 करोड़ रुपये, 500 करोड़ रुपये, 300 करोड़ रुपये व 200 करोड़ रुपये निर्धारित की जाती है। इसी संदर्भ में अन्य सभी विभागों के उद्देश्य निर्धारित किए जाऐंगे : जैसे– उत्पादन विभाग को जानकारी प्राप्त हो जाएगी कि उसे किस–किस उत्पाद का कितना–कितना उत्पादन करना है। अंत में प्रत्येक विभाग में कार्यरत कर्मचारियों को बता दिया जाएगा कि उनसे क्या अपेक्षित है।

(ii) **सीमाएँ विकसित करना** : नियोजन आधार अथवा सीमाएँ वे तत्व/मान्यताएं होती हैं जो विभिन्न विकल्पों के संभावित परिणामों को प्रभावित करती हैं। किसी विकल्प के बारे में अंतिम निर्णय लेने से पहले इन मान्यताओं के पूर्वानुमान लगाए जाते हैं। जितने अधिक पूर्वानुमान सही होंगे नियोजन उतना ही अधिक सफल रहेगा। नियोजन के आधार दो प्रकार के होते हैं:

(क) **आंतरिक आधार** : पूंजी, श्रम, कच्चा माल, मशीन आदि।

(ख) **बाहरी आधार** : सरकारी नीतियां, व्यवसायिक प्रतियोगिता, ग्राहकों की रुचि, ब्याज दर, कर दर आदि।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है। कम्पनी के पास ग्रामीण क्षेत्र में कारखाना स्थापित करना एक विकल्प है। यहां पूंजी, माल व श्रम की उपलब्धता इसके आंतरिक आधार हो सकते हैं तथा सरकार की औद्योगिक नीति बाहरी आधार। प्रबंधन को इन सभी आधारों का पूर्वानुमान लगाना होगा। अन्य शब्दों में, यह देखना होगा कि आवश्यक पूंजी, कच्चा माल व श्रम उपलब्ध हो सकेगा। इसी प्रकार देखना होगा कि कहीं सरकार की औद्योगिक नीति इस तरह की औद्योगिक इकाई की स्थापना का विरोध तो नहीं करेगी?

(iii) **वैकल्पिक कार्यवाहियों की पहचान करनाः** प्रायः कोई भी कार्य ऐसा नहीं होता कि वैकल्पिक मार्ग न हो। संस्था के उद्देश्यों के आधार पर एक ही कार्य करने के अनेक तरीकों की खोज की जा सकती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी संस्था का उद्देश्य अपना व्यवसाय बढ़ाने का है तो इस उद्देश्य की पूर्ती अनेक तरीकों से की जा सकती है। जैसे–

(क) पहले से चल रहे व्यवसाय का विस्तार करके – माना एक कम्पनी किसी एक साईकिल का निर्माण कर रही है। व्यवसाय को बढ़ाने के उद्देश्य से कम्पनी द्वारा अनेक साईज़ के साईकिल (बच्चों/पुरुष/महिला) बनाना प्रारंभ किया जा सकता है।

(ख) दूसरे क्षेत्रों में उत्पादन प्रारंभ करके– साईकिल बनाने वाली कम्पनी मोटरसाईकिल बनाना प्रारंभ कर सकती है।

(ग) दूसरी संस्थाओं के साथ मिलकर कोई व्यवसाय प्रारंभ कर सकती है। जैसे भारत में हीरो साईकिल ने जापान की होंडा कम्पनी के साथ मिलकर मोटरसाइकित का उत्पादन किया था।

(घ) किसी दूसरी संस्था को खरीद सकती हैः आदि।

(iv) **वैकल्पिक कार्यवाहियों का मूल्यांकन करना** वे सभी विकल्प जो न्यूनतम प्रारंभिक मापदण्ड के आधार पर खरे उतरते हैं उन्हें गहन अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। यहां पर यह देख जाएगा कि प्रत्येक विकल्प संस्था के उद्देश्यों को कहां तक पूरा करता है। विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने पर प्रायः एक समस्या सामने आती है वह यह कि सभी विकल्पों के अपने–अपने गुण दोष होते हैं। अर्थात एक विकल्प किसी एक मापदण्ड पर खरा उतरता है तो दूसरा किसी दूसरे मापदण्ड पर। उदाहणार्थ– एक विकल्प बहुत लाभदायक हो सकता है लेकिन उसमें बहुत अधिक पूंजी विनियोग की आवश्यकता है और उसका लाभ अर्जित

करने का समय भी अधिक है। एक अन्य विकल्प में पूंजी विनियोग भी कम चाहिए तथा उसका लाभ अर्जित करने की अवधि भी कम है। लेकिन वह अधिक लाभदायक नहीं है। ऐसी स्थिति में नियोजनकर्ता को विभिन्न विकल्पों के मिश्रण के रुप में एक नया विकल्प खोजना चाहिए।

टूल बाक्स – 2
न्यूनतम प्रारंभिक मापदण्ड वास्तव में वैकल्पिक मार्गों की खोज करना इतना कठिन नहीं है जितना कि वैकल्पिक मार्गों की सूची को छोटा करना। वैकल्पिक मार्ग कम से कम होने चाहिएं ताकि उनका गहराई से अध्ययन किया जा सके। वैकल्पिक मार्गों की सूची को छोटा करने के लिए एक न्यूनतम प्रारंभिक मापदण्ड निश्चित कर लेना चाहिए और जो विकल्प निर्धारित मापदण्ड को पूरा नहीं करते, उन्हें प्रारंभ से ही सूची से बाहर कर देना चाहिए। जैसे– यदि न्यूनतम विनियोग सीमा 10 करोड़ रुपये है तो इससे कम लागत वाले सभी विकल्प छोड़ दिए जाएंगे।

(v) **एक विकल्प का चयन करना** : विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करके सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव कर लिया जाता है। कई बार मूल्यांकन के आधार पर एक से अधिक विकल्प एक जैसे गुणों वाले प्राप्त हो जाते हैं। भविष्य की अनिश्चितता को देखते हुए एक से अधिक अच्छे विकल्पों का चयन करना न्यायसंगत भी है। एक विकल्प को लागू करके दूसरे को रिजर्व में रख लिया जाता है और यदि पूर्वानुमान गलत हो जाए तो पहला विकल्प असफल हो जाने के कारण रिज़र्व में रखे गए विकल्प को तुरंत लागू करके असफलता से बचा जा सकता है।

(vi) **योजना को लागू करना** : मुख्य योजना तथा सहायक योजनाओं का निर्धारण कर लेने के बाद उन्हें लागू करना होता है। योजनाओं को लागू करने के बाद विभिन्न क्रियाओं का क्रम निर्धारित कर दिया जाता है अर्थात यह निश्चित कर दिया जाता है कि कौन क्या करेगा और किस समय करेगा। इससे उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल हो जाता है।

(vii) **समीक्षा करना** : योजनाएं लागू कर देने से ही नियोजन प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती। योजनाएं भविष्य के लिए बनाई जाती हैं और भविष्य अनिश्चित होता है। अनिश्चित भविष्य में सफलता सुनिश्चित करने के लिए योजनाओं की प्रगति की लगातार समीक्षा करते रहना जरुरी है। जैसे ही उन मान्यताओं में जिन पर योजनाएं आधारित हैं परिवर्तन होता नज़र

आए, योजनाओं में भी आवश्यक फेर–बदल कर दिया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नियोजन एक निरंतर चालू रहने वाली प्रक्रिया है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र 7. नियोजन को प्रक्रिया क्यों कहा जाता है?
प्र. 8. एक संस्था कितने प्रकार के उद्देश्य निर्धारित करती है?
प्र. 9 योजनाएं लागू कर देने से नियोजन प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।'' क्या आप इस बात से सहमत हैं?

2.6 नियोजन के प्रकार

नियोजन एक प्रक्रिया है और योजना उसका परिणाम। योजना परिणामों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली क्रियाओं को पूरा करने का एक वायदा है। इस दृष्टिकोण से योजनायें अनेक प्रकार की होती हैं। योजनाओं के प्रकार को समझने में निम्न विवेचन सहायक होगा।

प्रत्येक संस्था का एक केन्द्रीय लक्ष्य होता है जिसे मिशन भी कहते हैं। एक व्यवसायिक संस्था को अर्थपूर्ण तभी माना जाता है जब उसका कोई लक्ष्य हो। जिससे संस्था की स्थापना का औचित्य स्पष्ट होता है। यह संस्था के व्यवसाय की विशेषता स्पष्ट करता है और यह बताता है कि एक संस्था उसी प्रकार की अन्य संस्थाओं से कैसे भिन्न है। उदाहरण के लिए, एक शिक्षण संस्था का लक्ष्य/मिशन केवल लड़कियों को शिक्षित करना हो सकता है। इसी प्रकार एक अस्पताल का लक्ष्य केवल दिल के मरीज़ों का इलाज करना हो सकता है।

लक्ष्य प्राप्ति के संदर्भ में अनेक योजनाएं तैयार की जाती है। सर्वप्रथम संस्था के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। प्रतियोगिता का डटकर मुकाबला करते हुए उद्देश्यों को वास्तविकता में बदलने के लिए मोर्चाबन्दी/रणनीति तैयार की जाती है। विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा लिए जाने वाले निणयों में एकरुपता लाने के लिए नीतियां बनाई जाती हैं। नीतियां निर्धारण कर लेने के बाद क्रियाओं का क्रम निर्धारित किया जाता है। जिसे कार्यविधि कहते हैं। इसी प्रकार पद्धतियां, नियम, बजट, कार्यक्रम आदि नियोजन के प्रमुख तत्व हैं, ये सभी योजनाएं कहलाती है। एक उच्चस्तरीय योजना निम्नस्तरीय योजना को जन्म देती है।

योजनाओं का प्राथमिकता क्रम

(क) **उद्दे□य**

उद्देश्य वे अंतिम बिंदु हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए सभी क्रियाएं की जाती हैं।

उद्देश्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

(i) संदेशवाहन प्रणाली में सुधार के लिए लगातार सभाएं करना व समाचार–पत्र प्रकाशित करना।

(ii) साबुनों की बिक्री को 20000 करोड़ रुपये के पार ले जाना।

(iii) प्रत्येक वर्ष 100 लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाना।

(iv) गुणतवता के कारण माल की वापसी को 3 प्रतिशत तक लेकर आना।

उद्देश्यों में निम्न विषेशताएं होनी चाहिए:

- स्पष्ट होने चाहिए।
- परिणाम से संबंधित होने चाहिए न कि उन्हें प्राप्त करने के लिए की जाने वाली क्रियाओं से।
- मापने योग्य होने चाहिए।
- इन्हें प्राप्त करने की समय सीमा निर्धारित होना चाहिए।
- प्राप्त करने योग्य होने चाहिए ।

टूल बाक्स –3
प्रयोजन
प्रयोजन एक संस्था की मुख्य भूमिका होती है जो इस समाज द्वारा निर्धारित की जाती है, जैसे– प्रत्येक स्कूल का प्रयोजन शिक्षा प्रदान करना है। एक जैसी सभी संस्थाओं का प्रयोजन समान होता हैं।
टूल बाक्स –4
मि□ान
मिशन अथवा लक्ष्य यह बताता है कि एक संस्था उसी प्रकार की अन्य संस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है। यह हर संस्था का अलग होता है, जैसे– एक स्कूल का मिशन केवल कॉमर्स में शिक्षा प्रदान करना हो सकता है।

टूल बाक्स – 5
उद्दे□य
एक संस्था द्वारा प्राप्त किया जाने वाला विशेष टारगेट होता है, जैसे– स्कूल का उद्देश्य एक वर्ष में 100 विद्यार्थियों को कॉमर्स की शिक्षा प्रदान करना हो सकता है।

(ख)**मोर्चाबंदी**

मोर्चाबंदी वे योजनाएं हैं जो प्रतियोगियों की चाल को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं और जिनका उद्देश्य उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग संभव बनाना है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई प्रतियोगी संस्था अपने माल की बिक्री बढ़ाने के लिए वस्तुओं के मूल्य में कमी करने जा रही है या विज्ञापन के नए तरीकों को अपनाने पर विचार कर रही है या उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए कोई उपहार योजना निकाल रही है तो इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही हमें भी अपनी मोर्चाबंदी करनी होगी।

मोर्चाबंदी दो प्रकार की होती है –

- बाहरी मोर्चाबंदी तथा
- आंतरिक मोर्चाबंदी।

जब प्रतियोगीयों की योजनाओं को ध्यान में रखकर हम अपनी योजनाएं बनाते हैं तो इसे बाहरी मोर्चाबंदी कहते हैं। यदि किसी परिवर्तन से संस्था के अंदर कोई समस्या उत्पन्न होने वाली है तो उसका सामना करने के लिए पहले ही तैयारी करने को आंतरिक मोर्चाबंदी कहते हैं, जैसे– फैक्ट्री में मशीनीकरण करना, जिससे अनेक व्यक्तियों की छंटनी हो सकती है। इस व्यवस्था के लागू करने पर कर्मचारियों के विरोध का सामना करने के लिए पहले से ही तैयारी करनी होगी ताकि नई व्यवस्था भी लागू हो जाए और कर्मचारी भी नाराज़ न हों।

(ग) **नीतियां**

नीतियां वे सामान्य विवरण है जो निर्णय में कर्मचारियों के मार्गदर्शन हेतु बनायी जाती हैं। इनका उद्देश्य एक ऐसी सीमा निर्धारण करना है जिसके अंदर रहते हुए ही कोई कार्य किया जा सकता है अथवा कोई निर्णय लिया जा सकता है। उद्देश्य यह निश्चित करते हैं कि हमें क्या प्राप्त करना है तथा नीतियां यह बताती है कि कैसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः हम कुछ नीतियों के संबंध में सुनते रहते हैं, जैसे–

(i) **सेविवर्गीय नीति**— इस नीति में यह निश्चित किया जा सकता है कि कर्मचारियों की तरक्की का आधार उनकी आयु होगा। एक बार यह निश्चित कर देने के बाद किसी भी विभागीय प्रबंधन को कर्मचारियों की तरक्की के बारे में उच्च प्रबंधन से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

(ii) **विक्रय नीति**— इस नीति में यह निश्चित किया जाता है कि माल केवल नकद बेचा जाएगा या उधार भी।

(iii) **मूल्य निर्धारण नीति**— इसके अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि वस्तुओं का विक्रय कैसे निर्धारित किया जाएगा अर्थात लागत में कितना लाभ जोड़कर विक्रय मूल्य तय होगा तथा व्यापारिक छूट एवं नकद छूट की क्या शर्तें होंगी।

वास्तव में नीति निरंतर चलने वाला एक निर्णय है जो बार—बार पैदा होने वाली एक समान समस्याओं अथवा परिस्थितियों में प्रबन्धको का मार्ग—दर्शन करता है।

उद्दे□य एवं नीति के अंतर

अंतर का आधार	उद्दे□य	निति
1.अर्थ	उद्देश्य वे अंतिम बिंदु हैं जिन्हें प्राप्त किया जाना है।	नीतियां उद्देश्य प्राप्ति का साधन होती हैं।
2.आव□यकता	बिना उद्देश्य के किसी भी संस्था की स्थापना नहीं हो सकती। अतः ये अति आवश्यक है।	इनका निर्धारण करना इतना आवश्यक नहीं है। ये बनाई भी जा सकती हैं और नहीं भी।
3.निर्धारण का स्तर	ये प्रायः संस्था के उच्च प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।	नीतियां सभी प्रबन्धकीय स्तरों पर निर्धारित की जाती हैं।
4.क्षेत्र	उद्देश्य प्राप्ति के लिए ही अन्य योजनाएं, जैसे— नीतियां, कार्यविधियां, नियम, कार्यक्रम आदि बनाई जाती हैं। अतः उद्देश्य का क्षेत्र व्यापक है।	ये केवल एक पथ प्रदर्शक का काम करती हैं अतः इनका क्षेत्र संकुचित है।

(घ) कार्यविधियां :

कार्यविधियां वे योजनाएं हैं जो किसी काम को पूरा करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का क्रम निश्चित करती हैं। उदाहरणार्थ, देनदारों से रुपया वसूल करने का क्रम इस प्रकार निश्चित किया जा सकता है:

(i) पत्र लिखना,

(ii) टेलिफोन करना,

(iii) व्यक्तिगत रुप से जाकर मिलना तथा

(iv) वैधानिक कार्यवाही करना।

इस प्रकार सभी देनदारों से रुपया एकत्रित करने की यह एक कार्यविधि है। नीतियों और कार्यविधियों में अंतर होता है। देनदारों से रुपया वसूल करने के संबंध में संस्था की दो नीतियां हो सकती हैं:

- सख्त वसूली नीति, तथा
- नरम वसूली नीति तथा

पहली नीति में देनदारों के साथ सख्त व्यवहार करते हुए शीघ्र रुपया वसूल करने का प्रयास किया जाएगा, जबकि द्वितीय नीति में देनदारों को भुगतान करने का पूरा समय देते हुए उनसे नरम व्यवहार किया जाएगा। इन दोनों प्रकार की नीतियों में रुपया वसूल करने की कार्यविधि ऊपर बताई गई ही रहेगी अर्थात रुपया वसूल करने के लिए उठाए जाने वाले कदम समान होंगें।

टूल बाक्स – 6
कार्यविधियां
इसका अभिप्राय उस योजना से है जो किसी काम को पूरा करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का क्रम निर्धारित करती हैं।

(ङ) पद्धतियां :–

पद्धति वह योजना है जो यह निश्चित करती है कि कार्यविधि में बताई गई विभिन्न क्रियाओं में से प्रत्येक क्रिया को कैसे पूरा किया जाएगा। पद्धति का संबंध सभी क्रियाओं से न होकर किसी

एक क्रिया से होता है और यह कार्यविधि की तुलना में अधिक विस्तृत होती है। एक कार्य को पूरा करने की अनेक पद्धतियां हो सकती हैं। गहन अध्ययन के बाद ऐसी पद्धति का चयन किया जाता है जिससे काम करने वाले व्यक्ति को थकावट कम हो, उत्पादकता में वृद्धि हो तथा लागतें कम आएं। इस प्रकार चुनी गई पद्धति को ही दैनिक प्रयोग में लाया जाता है और इसे पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में लगातार सुधार के प्रयत्न किए जाते हैं ताकि अनावश्यक अथवा अनुपादक प्रयासों को पद्धति में से निकाल दिया जाएं।

टूल बाक्स – 7
पद्धति इसका अभिप्राय उस योजना से है जो यह निश्चित करती है कि कार्यविधि में बताई गई विभिन्न क्रियाओं में से प्रत्येक क्रिया को कैसे पूरा किया जाएगा।

(च) नियम :

नियम हमें बताते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना है और क्या नहीं करना। नियम के होते हुए किसी तरह का निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है। नियम में जो बात कही गई है बिना किसी सोच विचार के उसका पालन करना ही होगा। जैसे – 'कारखाने में धूम्रपान का वर्जित होना' एक नियम है जो सभी पर लागू होता है और इसका पालन करना अवश्य होना चाहिए। नियम का पालन न करने पर दण्ड की व्यवस्था भी की जा सकती है

टूल बाक्स – 8
नियम इसका अभिप्राय उस योजना से है जो हमें बताती है कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना है और क्यों करना है।

नियम एवं नीति में अंतर होता है। नीति केवल मार्ग–दर्शन करती है और अधिकारियों को एक सीमा के अंदर निर्णय लेने का अधिकार प्रदान करती हैः जैसे – माल उधार बेचा जा सकता है, यह एक नीति है। लेकिन किस ग्राहक को माल उधार देना है और किसको नहीं, यह विक्रय प्रबंधक को देखना है। अर्थात यहां उसे अपने विवेक का प्रयोग करना होगा। दूसरी ओर, नियम स्थिर होते हैं और नियम के आगे विवेक की जरुरत नहीं होतीः जैसे – प्रत्येक कर्मचारी को महीने में एक छुट्टी

मिलेगी। एक से ज्यादा छुट्टी लेने पर वेतन कटेगा। यह एक नियम है और सभी कर्मचारियों पर समान रुप से लागू होगा।

नियम एवं कार्यविधि में भी अंतर होता है। नियम यह बताते हैं कि क्या करना है और क्या नहीं करना, जबकि कार्यविधियां एक विशेष क्रिया को पूरा करने का क्रम निश्चित करती हैः जैसे – यदि एक कर्मचारी ने बिना पूछे महीने में एक से ज्यादा छुट्टी ली तो उसका वेतन कट जाएगा। यदि उस कर्मचारी को नौकरी से निकालना है तो उसे पहले 'कारण बताओ नोटिस' दिया जाएगा, उसके बाद ही कोई सख्त कार्यवाही होगी।

नियम तथा कार्यविधि में अंतर

अंतर का आधार	**नियम**	**कार्यविधि**
1- निर्णय	नियम एक पहले से लिया गया निर्णय है जो विशेष परिस्थितियों में लागू करना ही पड़ता है।	कार्यविधि काम करने का तरीका है, निर्णय नहीं।
2. क्षेत्र	नियम की कोई कार्यविधि नहीं होती।	कार्यविधि का क्षेत्र विस्तृत है क्योंकि इसके अपने नियम होते हैं।
3. दंड	नियम की अवहेलना करने पर दंड की व्यवस्था होती है।	कार्यविधि में पहले से कोई दंड की व्यवस्था नहीं होती लेकिन इसकी अवहेलना करने वाले को उत्तरदायी अवश्य ठहराया जा सकता है।
4. लोचशीलता	इनमें लोचशीलता का अभाव होता है।	ये नियम की अपेक्षा अधिक लोचशील होती है।

नियम और नीति में अंतर

अंतर का आधार	**नियम**	**नीति**
1- निर्णय	नियम आदेश की श्रेणी में आता है।	नीतियां निर्णय लेने को निर्धारित करती है।
2. निर्णय की स्वतंत्रता	इनको कठोरता से लागू किया जाता है अर्थात इनमें निर्णय की स्वतंत्रता नहीं होती।	अधीनस्थ के सीमाओं में रहते हुए निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होती है।

3. लोचशीलता	ये दृढ़ होते हैं।	ये लोचशील होती है।
4. विवरण	यह विशेष विवरण होता है।	यह सामान्य विवरण होता है।

(छ) **बजट**

बजट इच्छित परिणामों के गणनात्मक विवरण होते हैं। बजट वह योजना है जो विभिन्न विभागों में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक अनुमानित धन, सामग्री, समय एवं अन्य साधनों का ब्योरा देती है। उदाहरणार्थ, क्रय विभाग के बजट में इस बारे मे अनुमानित आंकड़े दिए जाते हैं कि किस–किस तरह का माल, कितनी–कितनी मात्रा में , कब–कब खरीदा जाएगा और इस पर कितनी लागत आएगी। इसी प्रकार अन्य विभागों के भी बजट तैयार कर लिए जाते है। आमतौर पर बजट सालाना प्रक्रिया है।

टूल बाक्स – 9
बजट इसका अभिप्राय भावी कार्यवाही की गणनात्मक विवेचना से है।

बजट का संबंध नियोजन व नियंत्रण दोनों से होता है। जब हम बजट तैयार करते हैं तो इसका संबंध नियोजन से होता है और जब हम परिणामों को मापने के लिए उदाहरण के रुप में इसका प्रयोग करते हैं तो इसका संबंध नियंत्रण से होता है। इस प्रकार प्रबंधन वास्तविक प्रगति की तुलना बजटकीय आंकड़ों से करके सफलता अथवा असफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

(ज) कार्यक्रम :

कार्यक्रम का अर्थ किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए बनाई गई एकल उपभोग विस्तृत योजना से है जो यह निश्चित करती है कि क्या किया जाएगा, कैसे किया जाएगा, कौन करेगा तथा कब करेगा। कार्यक्रम प्रबन्धकों को विभिन्न जरुरतों के बारे में पहले से ही सूचित कर देते हैं ताकि भविष्य में कोई समस्या उत्पन्न न हो। कार्यक्रम अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे – उत्पादन कार्यक्रम, विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रम, प्रबंध विकास कार्यक्रम, आदि। एक उत्पादन कार्यक्रम बनाने के लिए कच्चे माल को खरीदनें से लेकर माल को तैयार करने तक की सभी क्रियाओं को क्या, कैसे, कौन, कब में परिभाषित कर दिया जाता है। जैसे ही वह काम पूरा हो जाता है जिसके लिए कार्यक्रम बनाया जाता है उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। अन्य शब्दों में, हर नए काम के लिए नया कार्यक्रम बनाया जाता है।

टूल बाक्स – 10
कार्यक्रम इसका अभिप्राय उस योजना से है जिसके अतंर्गत अपेक्षाकृत बडी संगठनात्मक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है और मुख्य पदों, उनके क्रम व समय तथा उत्तरयी विभागों का उल्लेख किया जाता है।

योजनाओं के प्रकार अन्य आधार पर भी समझे जा सकते हैं

(i) **प्रकृति के आधार**

(1) **प्र￾ासकीय योजनाएं** : दीर्घकालीन उद्देश्यों, संस्था की व्यापक रणनीति और इसके आधारभूत निर्णय पर आधारित योजनाएं जो व्यवसाय के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रभावित करती है, प्रशासकीय या कार्यनीति संबंधी योजनायें कहलाती हैं। प्रशासकीय योजनाओं से संस्था की प्रकृति एवं स्वरुप के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(2) परिचालन या क्रियात्मक योजानाएंः परिचालन योजनाएं संस्था की रणनीति संबंधी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए चालू व्यवसायिक कार्यवाहियों को अल्पकालीन व्यावहारिक योजनाओं के ताने–बाने में बुनने के लिए मध्यस्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबंधकों द्वारा बनाई जाती हैं। परिचालन योजनाएं वर्तमान बाजारों, वर्तमान क्रियाओं, वर्तमान उपभोक्ताओं एवं वर्तमान सुविधाओं के साथ भावी नियोजन होता है। उत्पादन, विपणन, एवं वित्तीय विभागों के दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए परिचालन योजनाएं बनाना पड़ता हैं।

(ii) **प्रबंध के स्तर के आधार पर** :

(अ) **उच्चस्तरीय योजना** : यह योजना उच्च प्रबंधकों द्वारा (जैसे– जनरल मैनेजर द्वारा) तैयार की जाती है इसके अंतर्गत उपक्रम की सामान्य नीति, उद्देश्य, लक्ष्य, बजट आदि तैयार किए जाते हैं।

(ब) **मध्यस्तरीय योजनाः** यह मध्यस्तरीय प्रबंधकों द्वारा तैयार की जाती है। ये योजनाएं युक्तियों के रुप में तैयार की जाती हैं, जिनसे उपक्रम के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति करना संभव होता है।

(ग) **निम्नस्तरीय योजना** : यह योजना पर्यवेक्षकों द्वारा तैयार की जाती है तथा उपक्रम के कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं से संबंध रखती हैं।

(iii) **व्यापकता के आधार पर:**

(अ) समामेलित योजनाएं: जो किसी कंपनी के सभी विभागों के विकास एवं विस्तार के लिए उद्यमियों व उच्च प्रबंधकों द्वारा स्वयं दीर्घकालीन रणनीति को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं।

(ब) विभागीय योजनाएं: जो भिन्न–भिन्न विभागों जैसे – उत्पादन, विपणन, वित्त कर्मचारी के द्वारा अपने तत्कालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती हे। ये विस्तृत योजना के उद्देश्यों के अनुरुप तैयार की जाती हैं।

(iv) **समय के आधार पर :**

(अ) **दीर्घकालीन योजनाएं : पीटर एफ. ड्रकर** के शब्दों में 'दीर्घकालीन नियोजन व्यवस्थित ढंग से वर्तमान व्यावसायिक निर्णयों को (मुख्यतः जोखिम युक्त) उनके भविष्य के संबंध में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों द्वारा लेने, उन निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक प्रयासों को व्यवस्थित ढंग से संगठित करने एवं इन निर्णयों के परिणामों के अनुमान की तुलना में व्यवस्थित संप्रेषण व्यवस्था द्वारा मापन करने की एक गतिशील प्रक्रिया है''।

दीर्घकालीन नियोजन प्रायः निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ती के लिए किया जाता है:

(1) पूंजीगत संपत्तियों की व्यवस्था के लिए,

(2) किसी नवीन पूंजीगत योजना को कार्यान्वित करने के लिए,

(3) विवेकीकरण या वैज्ञानिक प्रबंध की किसी योजना के लिए,

(4) कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था के लिए,

(5) नवीन इकाइयों में समन्वय के लिए,

(6) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाए रखने के लिए,

(7) जल्दबाजी में लिए गए निर्णयों पर रोक लगाने के लिए,

(8) उपक्रम के संपूर्ण कार्य निष्पादन के मापन के लिए तथा मापदण्ड प्रस्तुत करने के लिए।

(ब) अल्पकालीन योजनाएं : ये योजनाएं एक वर्ष या इससे कम अवधि के लिए तत्कालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मध्यस्तरीय तथा निम्नस्तरीय प्रबंधकों के द्वारा स्वयं बनाई जाती हैं। लेकिन इन योजनाओं का भी दीर्घकालीन योजनाओं की रुपरेखा के अनुसार होना आवश्यक हे। एक वर्ष से कम की अवधि वाली योजनाओं को प्रायः अल्पकालीन योजनाएं कहते हैं।

(v) **उपयोग के आधार पर :**

उपयोग के आधार पर योजनाएं निम्न दो प्रकार की होती हैं –

(1) स्थायी या निरंतर उपयोग की योजनाएं :

जो योजनाएं किसी व्यवसायिक संस्था में स्थायी रुप से भिन्न–भिन्न स्तरों पर बनाई जाती हैं, अर्थात बार–बार उपयोग करने लिए बनाई जाती हैं, उन्हें स्थायी योजनाएं कहते हैं। इन योजनाओं का प्रयोग तब–तब किया जाता है जब–जब इनकी अवश्यकता पड़ती है। इन योजनाओं के प्रमुख उदाहरण में संस्था के उद्देश्य नीतियां, कार्यविधि नियम और कार्यनीति उल्लेखनीय हैं।

(2) **तदर्थ या एकल उपयोग की योजनाएंः**

जब कोई योजना किसी विशेष परिस्थिति में किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बनाई जाती हैं, तब उसे तदर्थ या एकल उपयोग की योजना कहते हैं। इन योजनाओं का प्रयोग अनावर्तक कार्यों के लिए तथा तत्कालीन उपयोग के लिए किया जाता है। एकल उपयोग की योजना में कार्यक्रम, बजट और परियोजनाएं शामिल हैं। उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात ये योजनाएं स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

सारां

नियोजन या योजना बनाना प्रबंध का आधारभूत प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण कार्य है, जिस पर प्रबंध के अन्य सभी कार्य निर्भर करते हैं। **हेनरी फेयोल** ने प्रबंध के पांच कार्यों में नियोजन को प्रमुख कार्य माना है। नियोजन से अभिप्राय वर्तमान में यह निश्चित करने से है कि भविष्य में क्या किया जाना है। प्रत्येक प्रबंध कार्य करने से पहले यह सोचता है कि क्या कार्य करना है, कहां करना है, कब करना है, कौन करेगा, किस विधि से किया जाएगा तथा किन साधनों से किया जाएगा आदि। अतः नियोजन कोई सरल कार्य नहीं है, इसके लिए पर्याप्त अध्ययन, चिन्तन व मनन की आवश्यकता होती हे। **हेयन्स तथा** मैसी ने ठीक ही कहा है कि 'नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है जिसके लिए सृजनात्मक विचारधारा तथा कल्पना की आवश्यकता होती है।'' नियोजन का प्रयोग संगठन के सभी स्तरों पर प्रबंधकों द्वारा किया जाता है। संगठन की स्थापना के समय, नियुक्तियां करते समय, निर्देश देते समय तथा नियंत्रण करते समय नियोजन को ध्यान में रखना पड़ता है। नियोजन एक व्यापक व निरंतर प्रक्रिया है। वास्तव में, प्रबंध की सफलता, कुशलता एवं उचित नियोजन पर निर्भर है इसीलिए वैज्ञानिक प्रबंध के जन्मदाता **श्री एफ.डब्ल्यू. टेलर** ने व्यवसाय में एक पृथक योजना विभाग की स्थपना पर बल दिया तथा शील्ड **के अनुसार ''योजना विभाग** प्रबंध का हृदय है जिसका

एकमात्र कार्य उत्पादन के विभिन्न पहलुओं में कार्यरत कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा करना है।'' अतः नियोजन का अर्थ है संस्था के व्यापक उद्देश्यों को निश्चित करके योजना की अवधि के लिए व्यावसायिक पूर्वानुमान करना, लक्ष्य निर्धारित करना और एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार करना जो निम्न लागत औरा उच्च कुशलता के साथ प्राप्त करने में सहायता करें।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र□न

प्र.1 नियोजन को परिभाषित करें तथा इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।

प्र.2 नियोजन का चार विशेषताओं का वर्णन करें।

प्र .3 नियोजन की किन्हीं चार प्रकृति का वर्णन करें।

दीर्घ उत्तरीय प्र□न

प्र.1. प्रभावी प्रबंध के लिए नियोजन क्यों आवश्यक है।

प्र.2 योजनाओं के किन्हीं पांच प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।

प्र.3. नियोजन के प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।

प्र.4 उद्देश्य एवं नीतियों में अंतर बताइए।

प्र.5. बजट से आपका क्या अभिप्राय है? वर्णन करें।

खण्ड – 2 निर्णयन एवं संगठन
इकाई – 1 निर्णयन

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

3.0 प्रस्तावना

3.1 निर्णयन का अर्थ

3.2 निर्णयन की परिभाषाएँ

3.3 निर्णयन की विशेषताएँ

3.4 निर्णयन प्रक्रिया

3.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध

3.6 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की विशेषताएँ

3.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रक्रिया

3.8 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के लाभ

3.9 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की सीमाएँ

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप समझ पाएँगे :–

- निर्णयन का अर्थ
- निर्णयन की प्रक्रिया
- उद्देश्यों का प्रबंध

3.0 प्रस्तावना

निर्णय लेना प्रत्येक प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। नियोजन के अंतर्गत इस बात पर विचार किया जाता है कि क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है और किसके द्वारा किया जाना है। इन सब प्रश्नों के उत्तर के रुप में एक प्रबंधन के पास अनेक विकल्प उपलब्ध होते हैं। जब

प्रबंधन अनेक विकल्पों का चयन करता है तो इस चयन को निर्णय कहा जाता है तथा इस अंतिम निर्णय तक पहुंचने के लिए जिस प्रकिया को अपनाया जाता है उसे निर्णयन कहते हैं।

निर्णयन सभी प्रबन्धकीय क्रियाओं, जैसे – नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन तथा नियंत्रण में आवश्यक है अर्थात सभी प्रबन्धकीय कार्यो का निष्पादन निर्णयन के माध्यम से किया जाता है। प्रबंधन जब समस्याओं का सामना करते हैं और निर्णयन के द्वारा उनका समाधान ढूंढते हैं तो उन्हें दोहरा लाभ प्राप्त होता है। प्रथम–वे प्रभावपूर्ण समाधान ढूंढ कर संस्था की सेवा करते हैं तथा द्वितीय, उनको व्यक्तिगत संतुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि एक संस्था की सफलता प्रबंधन पर निर्भर करती है और प्रबंधन तभी सफल होता है जब उसमें प्रभावपूर्ण निर्णय लेने का गुण विद्यमान हो।

3.1 निर्णयन का अर्थ

निर्णयन का अर्थ, विभिन्न विकल्पों का विश्लेषण करके यह फैसला करने से है कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इस प्रकार निर्णयन के अंतर्गत उस निर्णय पर पहुंचना होता है जिसे किसी समस्या के समाधान के रुप में लागू किया जा सके। क्योंकि प्रबन्धकों के समक्ष हर समय कोई न कोई समस्या खड़ी रहती है जिनका उन्हें समाधान खोजना पड़ता है, इसलिए कहा जाता है कि निर्णयन की आवश्यकता हर समय होती है और **साइमन** ने तो यहां तक कहा है कि 'निर्णय लेना ही प्रबंधहै'।

3.2 निर्णयन की परिभाशाएँ

विभिन्न प्रबंधविशेषज्ञों ने निर्णयन की अलग–अलग परिभाषाएँ दी है। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

(i) **कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, ''निर्णयन किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का वास्तविक चयन करना है।''

(ii) **जार्ज आर. टैरी** के अनुसार, ''निर्णयन किसी कसौटी पर आधारित दो या दो से अधिक संभावित विकल्पों में से एक का चयन करना है।''

(iii) **लुईस ए.ऐलन** के अनुसार, ''निर्णयन वह कार्य है जिसे एक प्रबंधन किसी निष्कर्ष और निर्णय पर पहुंचने के लिए करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्णयन, किसी समस्या के समाधान के रुप में उपलब्ध अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करना है। अतः स्पष्ट है कि निर्णय की आवश्यकता तभी होती है जब किसी कार्य को करने की अनेक विधियां उपलब्ध हों। अन्य शब्दों में, यदि किसी कार्य को करने की केवल एक ही विधि है तो निर्णय लेने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह विधि स्वयं में ही निर्णय है।

टूल बाक्स – 1 **निर्णयन**
निर्णयन का अर्थ, विभिन्न विकल्पों का विश्लेषण करके यह फैसला करने से है कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना चाहिए और क्या नहीं।

3.3 निर्णयन की वि□शताएँ

निर्णयन की विशेषताएँ अथवा प्रकृति निम्नलिखित हैं :–

यह अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन की प्रक्रिया है। निर्णयन की सबसे पहली विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है। प्रत्येक समस्या के समाधान की अनेक विधियां हो सकती हैं। प्रबंधन द्वारा उनमें से सबसे अच्छी विधि को छांटा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि एक संस्था के सामने विक्रय वृद्धि की समस्या है तो इसके समाधान के अनेक तरीके हो सकते हैं, जैसे – मूल्य में कमी करना, अधिक व अच्छा विज्ञापन करना, उधार बिक्री की सुविधा उपलब्ध कराना आदि। प्रबंधन को इनमें से सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का चयन करना होता है।

यह विवेकपूर्ण चिंतन पर आधारित है। विवेकपूर्णताः को निर्णयन का सार माना जाता है क्योंकि निर्णयन के माध्यम से जो फैसले लिए जाते है उनकी सफलता सोच–विचार अथवा चिंतन अथवा गहन अध्ययन पर निर्भर होती है।

यह हमेशा किसी न किसी समस्या अथवा विवाद से जुड़ा होता है। क्योंकि निर्णयन का उद्देश्य समस्याओं अथवा विवादों का हल ढूंढना है इसलिए इसका इनके साथ जुड़ा होना स्वाभाविक है। अन्य शब्दों में, यदि समस्या या विवाद न हो तो निर्णयन तथा प्रबंधन दोनों का महत्व ही समाप्त

हो जाएगा। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि, समस्याएं प्रबंधन की खुराक होती हैं जिन पर वह जीता है और विकास करता है।

इसके अंतर्गत विभिन्न उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है। जैसा कि स्पष्ट है कि यदि किसी समस्या के हल की एक ही विधि है तो निर्णयन की आवश्यकता नहीं पड़ती। निर्णयन के लिए अनेक विकल्प होने चाहिए। जब अनेक विकल्प होंगे तो निर्णयन के माध्यम से उनका मूल्यांकन करके अर्थात उनके लाभ एवं हानियों का अध्ययन करके सर्वश्रेष्ठ को चुना जाता है।

इसका उद्देश्य संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। निर्णय लेने का कार्य बेकार में ही नहीं किया जाता बल्कि इसके द्वारा संस्था के लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

यह एक वायदे के रुप में होता है। प्रबंधन द्वारा लिया गया प्रत्येक निर्णय एक वायदा होता है अर्थात निर्णयन के माध्यम से प्रबंधन यह कहता है कि उसके द्वारा लिए गए निर्णय के अच्छे परिणाम होंगे।

यह मूलरुप से एक मानवीय क्रिया है। निर्णयन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह एक मानवीय क्रिया है। निर्णय मनुष्य द्वारा लिए जाते हैं और मनुष्यों के लिए ही लिए जाते हैं।

यह प्रबन्धकीय कार्य एवं संस्थागत प्रक्रिया दोनों हैं। क्योंकि निर्णय लेना सभी प्रबन्धकों का मुख्य दायित्व है इसलिए यह एक प्रबन्धकीय कार्य है। इसे संस्थागत प्रक्रिया इसलिए कहा जाता है क्योंकि अनेक ऐसे निर्णय होते हैं जो अकेला प्रबंधन नहीं ले सकता बल्कि उनके लिए प्रबन्धकों के समूह या समिति की जरुरत होती है।

यह नियोजन का केन्द्र बिंदु है। यद्यपि निर्णयन की आवश्यकता सभी प्रबन्धकीय कार्यों के लिए होती है लेकिन नियोजन पूर्वतः निर्णयन पर ही आधारित है, क्योंकि यहीं पर मुख्य निर्णय लिए जाते हैं। नियोजन के अंतर्गत जब उद्देश्य, नीतियों, कार्यविधियों, नियमों आदि को निश्चित किया जाता है तो निर्णयन का विशेष महत्व होता है।

यह कार्यवाही को प्रारम्भ करते हैं। जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तो काम एकदम से रुक जाता है और जब तक कोई निर्णय नहीं ले लिया जाता तब तक काम प्रारम्भ नहीं हो सकता। इस प्रकार निर्णय लेने पर ही भावी कार्यवाही प्रारम्भ होती है।

अपनी प्रगति जाँचीए
प्र.1 निर्णयन का क्या अर्थ है?
प्र.2 नियंत्रण चयन की प्रक्रिया है? क्या आप सहमत हैं?
प्र.3 क्या निर्णयण नियोजन का केन्द्र बिंदु है?

3.4 निर्णयन प्रक्रिया

निर्णयन को प्रायः अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन के रुप में परिभाषित किया जाता है। अतः निर्णयन एक चयनात्मक क्रिया है। उचित विकल्प का चयन करने के लिए, समस्या की जानकारी प्राप्त करने से लेकर अंतिम निर्णय लेने व उसे लागू करने तक एक लंबे रास्ते को पूरा करना होता है। यह लंबा रास्ता अथवा उठाए जाने वाले विभिन्न कदम ही निर्णयन प्रक्रिया कहलाते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया को दो भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम, परंपरागत प्रक्रिया तथा द्वितीय, वैज्ञानिक प्रक्रिया। परंपरागत प्रक्रिया के अंतर्गत प्रबंधन अपने सीमित ज्ञान, अनुभव एवं अनुमानों के आधार पर निर्णय लेते हैं और इसमें किसी निश्चित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है। दूसरी ओर, निर्णय लेने की वैज्ञानिक प्रक्रिया के अंतर्गत प्रबंधक अंतिम परिणाम तक पहुंचने के लिए एक व्यवस्थित प्रक्रिया का पालन करते हैं अर्थात एक के बाद एक अनेक सीढ़ियां पार करके ही मंज़िल तक पहुंचा जाता है। सफल निर्णय हेतु अपनाई जाने वाली वैज्ञानिक निर्णयन प्रक्रिया अप्रलिखित हैः

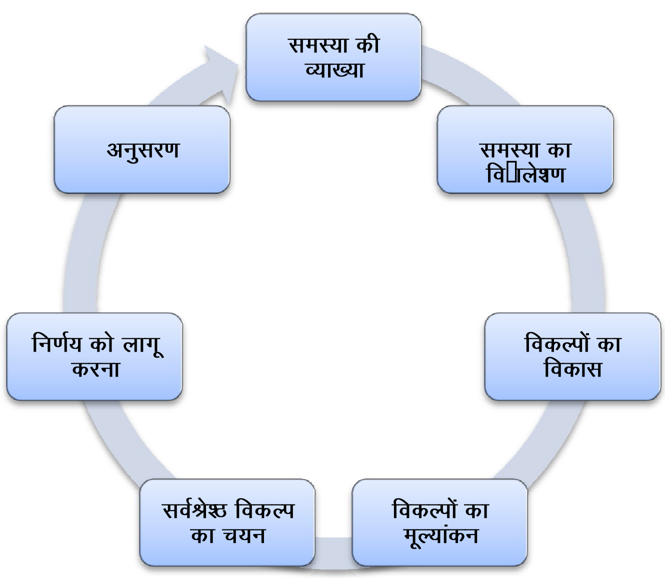

चित्र – 3.1 निर्णयन प्रक्रिया

(i) **समस्या की व्याख्या** : निर्णयन प्रक्रिया का पहला कदम उस समस्या की जानकारी प्राप्त करना है, जिसके संदर्भ में निर्णय लिया जाना है। सबसे पहले यह देखना होगा कि समस्या की बात कहां से शुरु हुई। प्रायः पूर्व निर्धारित उद्देश्यों एवं वास्तविक कार्य प्रगति में अंतर आ जाने के कारण ही समस्या प्रारम्भ होती है। अब यह देखना होगा कि परिणामों में अंतर का क्या कारण है? यदि इस अंतर का सही पता लग जाए तो समस्या का समाधान ढूंढना सरल हो जाता है।

(ii) **समस्या का वि□लेशण**: समस्या को परिभाषित कर लेने के बाद प्रबंधन द्वारा इसका विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि समस्या के संबंध में किन–किन सूचनाओं की जरुरत होगी और ये सूचनाएं कहां से उपलब्ध होंगी। उदाहरणार्थ, विक्रय में कमी की समस्या के लिए समालोचक तत्व माल की किस्म को माना गया है। अब यहां पर माल की घटिया किस्म का विश्लेषण करने के लिए जिन सूचनाओं की आवश्यकता होगी, वे इस प्रकार हो सकती हैं– क्या घटिया किस्म के कच्चे माल का क्रय किया गया था, क्या मशीनों ने ठीक प्रकार से काम नहीं किया, क्या अपूर्तीकर्ताओं ने जानबूझ कर घटिया कच्चा माल भेजा है, क्या कर्मचारियों में प्रशिक्षण की कमी है, क्या गुणवत्ता नियंत्रण अधिकारी ने लापरवाही की है, आदि। माना कि समस्या के विश्लेषण के आधार पर यह जानकारी प्राप्त हुई कि मशीनों में खराब़ी होने के कारण माल वांछित किस्म का तैयार नहीं हो सका।

समस्या के विश्लेषण के संबंध में यह समझ लेना जरुरी है कि सभी सूचनाओं का प्राप्त होना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह जानना कि कौन–कौन सी सूचनाएं उपलब्ध नहीं हुई हैं ताकि अंतिम निर्णय लेते समय उपलब्ध न हुई सूचनाओं को निर्णय की सीमाओं के रुप में स्वीकार कर लिया जाएँ और इन्हीं सीमाओं को लेकर निर्णय में जोखिम का निर्धारण किया जा सके अर्थात यदि कोई सूचना उपलब्ध न हो सके तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निर्णय नहीं लिया जा सकता। निर्णय तो लिया ही जाएगा लेकिन उसमें वांछित सूचनाओं की कमी के कारण सर्वोत्तम निर्णय न लिए जाने का जोखिम रहेगा। अतः केवल यह पता लग जाए कि कौन–कौन सी सूचनाएं प्राप्त नही हुई हैं तो उनके महत्व को देखते हुए निर्णय में जोखिम की मात्रा निर्धारित की जा सकती है।

(iii) **विकल्पों का विकास**ः निर्णयन प्रक्रिया का तीसरा कदम विभिन्न विकल्पों का विकास करना है। जब समस्या को परिभाषित किया जा चुका है और उसके कारणों का गहन अध्ययन भी हो चुका हो तो अब प्रश्न उठता है कि समस्या के संभावित समाधान क्या–क्या हैं? एक समस्या के समाधान के रुप में अनेक विकल्प हो सकते हैं। यदि किसी समस्या के समाधान के रुप में केवल एक विधि उपलब्ध है तो फिर निर्णय लेने की आवश्यता ही नहीं होगा क्योंकि वह विधि अपने–आप में निर्णय ही है।

निर्णयन प्रक्रिया में लिए गए उदाहरण को विकल्पों के विकास के संदर्भ में आगे बढ़ते हुए यह देखना होगा कि माल की घटिया किस्म के लिए जिम्मेदार मशीनों की कमी को दूर करने के लिए क्या–क्या विकल्प हो सकते हैं। मशीनों की कमी को दूर करने के संभावित विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं – यदि मशीनें बहुत पुरानी नहीं हैं तो उनकी मरम्म्त करवा कर काम चल सकता है, यदि मशीनें पुरानी हैं तो नई मशीनें क्रय की जा सकती हैं, यदि मशीनें अधिक लागत की होने के कारण उनको क्रय करना संस्था की पहुंच से बाहर हो, तो उन्हें किराए पर लिया जा सकता है आदि। अतः विकल्पों का विकास करते समय सीमित घटकों को ध्यान में रखा जाना जरुरी है। मशीन की अधिक लागत वाले विकल्प में वित्त सीमित घटक हैं जो प्रबंधन को इस विकल्प को छोड़ने पर मजबूर कर सकता है।

एक प्रबंधन विकल्पों की खोज करते समय अनेक स्रोतो का प्रयोग कर सकता है, जैसे –अपना पूर्व का अनुभव, दूसरों द्वारा अनपाए गए तरीके तथा एकदम नया विचार।

(iv) **विकल्पों का मूल्यांकन**ः विभिन्न विकल्पों को ढूंढने के बाद अगला कदम विकल्पों का मूल्यांकन करना है ताकि सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव किया जा सके। विकल्पों के मूल्यांकन के अंतर्गत उनके गुणों एवं दोषों का अध्ययन किया जाता है। मूल्यांकन करने पर प्रबंधन को विभिन्न विकल्पों में निहित जोखिम की जानकारी प्राप्त होती है।

विकल्पों का मूल्यांकन समय एवं मुद्रो के संदर्भ में किया जाना चाहिए और केवल उस विकल्प का ही चयन करना चाहिए जो सर्वाधिक मितेव्ययी हो। मूल्यांकन का कार्य सरल हो जाता है यदि एक विकल्प अन्य विकल्पों की अपेक्षा अधिक अच्छा हो। दूसरी ओर, एक ही स्तर के अधिक विकल्प प्राप्त होने पर समस्या गम्भीर हो जाती है। ऐसी स्थिति में उनका और गहराई से अध्ययन किया जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि कोई भी विकल्प

स्वीकार्य न करना भी अपने–आप में एक महत्वपूर्ण निर्णय है। ऐसी स्थिति में प्रबंधन को किसी और उपयुक्त विकल्प की खोज करनी चाहिए।

(v) **सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयनः** विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक विकल्प प्रस्तुत समस्या के समाधान में कहां तक सहायक हो सकता है। निर्णयन प्रक्रिया के पांचवें चरण पर विभिन्न विकल्पों के संभावित परिणामों की तुलना करके सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करते समय प्रबंधन अपने अनुभव एवं प्रयोग की सहायता लेता है। प्रबंधन अपने अनुभव की सहायता तब ले सकता है जबकि उसे पहले कभी इस तरह की समस्या का सामना करना पड़ा हो। कई बार विकल्पों को व्यवहार में प्रयोग करके देखा जाता है और अनुकूल परिणाम प्राप्त होने पर ही उनके बारे में विचार किया जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में, माना कि माल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए मशीनों की मरम्मत करवाने का विकल्प चुना गया। इस प्रकार किसी विकल्प का अंतिम चयन करने को निर्णय कहते हैं। यहां पर निर्णय तो ले लिया गया है लेकिन निर्णयन प्रक्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है। इसके बाद भी निर्णय को लागू करना और उसके प्रभाव को रखना जरुरी है।

(vi) **निर्णय को लागू करना** : जब एक बार विकल्प का चयन कर लिया गया है तो इसके पश्चात अगला कदम उसे प्रभावशाली ढंग से लागू करना है। क्योंकि निर्णय को प्रभावशाली बनाने के लिए अन्य लोगों की कार्यवाही की आवश्यकता है। (प्रबंधन निर्णय लेता है कार्यवाही नहीं करता) इसलिए निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

(क) **प्रभाव□ाली संदे□ावहनः** निर्णय का प्रभावशाली संदेशवहन जरुरी है। इसकी स्पष्ट सूचना उन सभी व्यक्तियों तक पहुंचा देनी चाहिए जो इसको कार्यवाही में परिवर्तित करेंगे अर्थात निर्णय को वास्तविक रुप देंगे।

(ख) **कर्मचारियों की स्वीकृति प्राप्त करनाः** निर्णय को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए संबंधित कर्मचारियों से स्वीकृति लेना भी जरुरी है। कर्मचारियों की स्वीकृति एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न विकल्पों का विकास करते समय उनसे सलाह ली जाए।

(ग) **निर्णय लागू करने का ठीक समयः** प्रत्येक निर्णय कुछ न कुछ परिवर्तन लाता है और कर्मचारी का स्वभाव परिवर्तन का विरोध करना होता है। इसीलिए निर्णय उसी समय

लागू करना चाहिए जब सब कुछ ठीक–ठाक हो अर्थात उसके विरोध किए जाने का कोई डर न हो।

(vii) **अनुसरण** : निर्णयन प्रक्रिया का अंतिम चरण अनुसरण करना है। जैसे ही निर्णय को कार्यवाही में बदला जाता है तो परिणाम आना शुरु हो जाते हैं। ये परिणाम आवश्यक रुप से इच्छित वांछित/अपेक्षित परिणामों के अनुकूल होने चाहिएं। वास्तविक और इच्छित परिणामों के अंतर को देखने से यह पता चलता है कि निर्णय को उचित रुप में लागू कर दिया गया है या नहीं। यदि परिणाम अच्छे नहीं है तो इसका अभिप्राय यह है कि फिर से एक समस्या आ खड़ी हुई है और निर्णय प्रक्रिया को पुनः प्रारंभ करना होगा। इस प्रकार पहले लिए गए निर्णय में संशोधन करना होगा, पुनः उसके परिणाम की जांच की जाएगी और यदि परिणाम अनुकूल हैं तो निर्णय को लागू रहने दिया जाएगा। लेकिन विपरीत परिणाम आने पुनः पर संशोधन की जरुरत होगी। अतः अनुसरण भी निर्णयन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 क्या नियोजन एक प्रक्रिया है? प्र.5 विकल्पों के मूल्यांकन का क्या अभिप्राय हैं? प्र.6 अनुसरण की क्या महत्ता है?

3.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधMBO

आज जबकि व्यवसाय का पैमाना बढ़ रहा है, उत्पादन की नई–नई तकनीकों का उदय हो रहा है तथा व्यवसाय के लाभ उद्देश्य के स्थान पर सेवा उद्देश्य को प्राथमिकता दी जा रही है। प्रबंधकी पुंरानी धारणाएं अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में असहाय जान पड़ती हैं। यही कारण है कि पुरानी धारणाओं के स्थान पर नई घारणाओं का प्रतिपादन किया। इनमें उद्देश्यो द्वारा प्रबंधतथा उपवाद द्वारा प्रबंधप्रमुख हैं।

- **उद्देश्यों द्वारा प्रबंधका अर्थ**

MBO का शाब्दिक अर्थ है उद्देश्यों के आधार पर प्रबंधकरना। प्रबंधके इस दृष्टिकोण के जन्मदाता **पीटर.एफ. ड्रकर** हैं। इन्होंने इस दृष्टिकोण की व्याख्या 1954 में अपनी पुस्तक The

Practical of Management" में की है। ड्रकर ने MBO के माध्यम से प्रबन्धकों को बताया कि ''व्यवसायिक उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि व्यवसाय में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया अथवा जांच को सम्पूर्ण व्यवसाय के उद्देश्य प्राप्ति की ओर संचालित किया जाए।'' (Business performance requires that each job directed towards the objective of the whole business) इसके साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि उद्देश्यों का निर्धारण सभी संबंधित अधिकारी व अधीनस्थ सामूहिक रुप से करें। सामूहिक उद्देश्य निर्धारण विचारधारा की मान्यता है–भागीदारी से जिम्मेदारी बढ़ती है (Participatian leads to Commitment) अर्थात जब सभी संबंधित व्यक्ति एक साथ बैठकर उद्देश्यों का निर्धरण करेंगे और उन्हें प्राप्त करने की योजना बनाएंगे तो वास्तविक काम करते समय कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी। काम करते समय सभी को लगेगा कि वे अब सभी काम कर रहे हैं किसी दूसरे का नहीं। जब ऐसी भावना जन्म लेती है तो थोपे गये नियंत्रण के स्थान पर स्वतः नियंत्रण (Self controlled instead of imposed control) स्थापित होगा। अर्थात उद्देश्यों में भागीदारी से अपनेपन की भावना जन्म लेती हैं और तब किसी बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। अतः ऐसी स्थिति में सफलता की गारंटी की बात की जाए तो बिल्कुल भी गलत नहीं होगा।

MBO एक कार्य प्रधान प्रक्रिया नहीं है बल्कि एक परिणाम प्रधान प्रक्रिया है इसीलिए MBO को परिणाम द्वारा प्रबंध भी कहा जाता है।

टूल बाक्स – 2 **उद्दे□यों के आधार पर प्रबन्ध**
उद्देश्यों के आधार पर प्रबंधकरना। प्रबंधके इस दृष्टिकोण के जन्मदाता पीटर.एफ. ड्रकर हैं।

उद्दे□यों द्वारा प्रबंधकी परिभाशा

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं :–

(i) **पीटर.एफ. ड्रकर** के अनुसार, ''उद्देश्यों द्वारा प्रबंधएक प्रणाली है जिसके अंतर्गत सम्पूर्ण व्यवसाय, विभागीय एवं व्यक्तिगत प्रबंधन के स्तर पर उद्देश्यों का निर्धारण करके व्यक्तिगत प्रबंधन एवं सम्पूर्ण उपक्रम दोनों की कार्यकुशलता में वृद्धि की जाती है।''

(ii) **जार्ज.एस.ओडिओर्न** के अनुसार, '' उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी पद्धति का वर्णन एक ऐसी प्रक्रिया के रुप में किया जा सकता है जिसके द्वारा संगठन के वरिष्ठ एवं अधीनस्थ प्रबंधन सामूहिक रुप से उसके सामान्य लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं, प्रत्येक से अपेक्षित परिणामों के संदर्भ में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के मुख्य क्षेत्रों को परिभाषित करते हैं तथा उस इकाई को संचालित करने एवं प्रत्येक सदस्य के योगदान के मूल्यांकन हेतु इन मापदंडों को मार्ग–दर्शन के रुप में प्रयोग करते हैं।

(iii) **तोसी एवं करोल** के अनुसार, ''उद्देश्यों द्वारा प्रबंधएक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रबंधन एवं अधीनस्थ उन क्रियाओं, लक्ष्यों, तिथियों एवं उद्देश्यों के समूह के संबंध मे एकमत होते हैं जो भविष्य में अधीनस्थों की कार्य'–निष्पति एवं मूल्यांकन हेतु आधार स्वरुप प्रयुक्त किए जाएंगे।

(iv) **एम.के.चक्रवर्ती** के अनुसार, '' उद्देश्यों द्वारा प्रबंधएक परिणाम–केंद्रित, गैर–विशिष्ट, क्रियात्मक प्रक्रिया है जो कि व्यक्तियों को संगठन के साथ मिलकर तथा संगठन को वातावरण के साथ मिलकर संगठन की सामग्री, भक्ति एवं मानवीय का प्रभावशाली उपयोग करती है।

3.6 उद्दे□यों द्वारा प्रबंधकी वि□शताएँ

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर एम.बी.ओ की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

(i) **सभी क्रियाएं उद्दे□य–प्रधान होती हैं**: एम.बी.ओं की प्रथम विशेषता, संस्था की सभी क्रियाओं का उद्देश्य–प्रधान होना है। इसका अभिप्राय यह हे कि संस्था में की जाने वाली सभी क्रियाएं उद्देश्य प्राप्ति के संदर्भ में ही की जाती हैं।

(ii) **संगठनात्मक, विभागीय एवं व्यक्तिगत उद्दे□यों में सामंजस्य** : एम.बी.ओ का आधार उद्देश्यों का अधिकारियों व अधीनस्थों द्वारा सामूहिक रुप में निर्धारण व उसकी प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्ति होता है। एम.बी.ओ के अंतर्गत उद्देश्य निम्न क्रम में निर्धारित किए जाते हैं :–

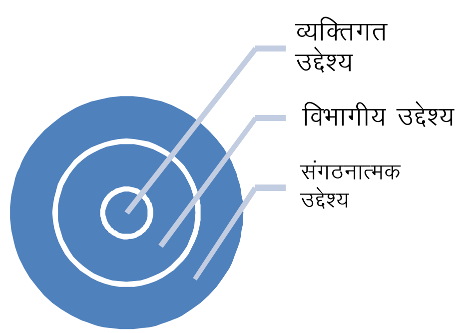

चित्र – 3.2 संगठनात्मक, विभागीय एवं व्यक्तिगत उद्दे□य

सर्वप्रथम एक संगठन/उपक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन्हीं के संदर्भ में विभागीय उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं। विभागीय उद्देश्यो को पूरा करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। अर्थात ऐसा प्रयास किया जाता है कि किसी भी स्तर पर उद्देश्यों में विरोध अथवा टकराव की स्थिति उत्पन्न न हो।

(iii) **एम.बी.ओ संगठन को गतिशील इकाई मानता है** : एम.बी.ओ की तीसरी विशेषता संगठन को एक गतिशील इकाई मानना है। प्रत्यके संगठन पर अनेक आंतरिक व बाहरी तत्वों का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि संगठन को गतिशील इकाई माना गया है। संगठन के गतिशील होने का प्रभाव उद्देश्यो पर भी पड़ता है। हो सकता है आज जो उद्देश्य निर्धारित किए गये हों, कल उन्हें प्राप्त करना असंभव हो जाए। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर उद्देश्यों में परिवर्तन कर लेना चाहिए।

(iv) **एम.बी.ओ. एक भागीदारी प्रयास है** : एम.बी.ओ. की एक मान्यता यह है कि भागीदारी से जिम्मेदारी बढ़ती है। इसका अभिप्राय है कि जब हम किसी व्यक्ति को काम प्रारंभ करने से पहले ही साथ लेकर चलें तो अपने कार्य के प्रति उसकी निष्ठा बढ़ जाती है। यहां प्रारंभ से साथ लेकर चलने का अभिप्राय उद्देश्य निर्धारण में भागीदारी से है। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि यदि कोई कर्मचारी उद्देश्य निर्धारण में भागीदारी करता है तो वह बढ़िया काम करने के लिए प्रोत्साहित होता है।

(v) **एम.बी.ओ उद्देश्य एवं साधनों में सामंजस्य स्थापित करता है:** एम.बी.ओ के अंतर्गत उद्देश्यों का निर्धारण उपलब्ध साधनों के संदर्भ में ही किया जाता है ताकि कोई भी क्रिया ऐसी न रह जाए जो साधनों के अभाव में अधूरी रह जाए। इसके अतिरिक्त आवश्यकता से अधिक साधन उपलब्ध होने पर उनके लाभकारी विनियोग की संभावनाओं की तलाश की जाती है।

(vi) **एम.बी.ओ. एक दर्शनशास्त्र है न कि एक पद्धति:** एम.बी.ओ प्रबंध की एक पद्धति नहीं है। यह तो प्रबंध का दर्शनशास्त्र है। यहां पद्धति व दर्शनशास्त्र में अंतर समझ लेना जरुरी है। एक प्रबंधकीय पद्धति को कम्पनी के विशेष विभाग में ही लागू किया जा सकता है और अन्य विभागों में इसका प्रभाव नही के बराबर होता है। उदाहरण के लिए, एक स्टॉक नियंत्रण पद्धति का प्रयोग स्टॉक के संबंध में ही किया जा सकता है, न कि भर्ती व चयन प्रक्रिया में या किसी अन्य प्रक्रिया में। दूसरी ओर, दर्शनशास्त्र का प्रभाव कम्पनी के सभी विभागों पर पड़ता है। जैसे – प्रशासकीय व्ययों को न्यूनतम स्तर पर लाने का निर्णय लेना। इस निर्णय

से सभी विभाग प्रभावित होंगे क्योंकि एम.बी.ओ एक ही समय पर पूरी संस्था को प्रभावित करता है इसलिए इसे प्रबंध की एक पद्धति कहा गया है।

(vii) **एम.बी.ओ. पुनर्विचार एवं निश्पदान मूल्यांकन पर अधिक जोर देता है** : कर्मचारियो द्वारा किए जा रहे कार्य का समय–समय पर मूल्यांकन करते रहना एम.बी.ओ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अंतर्गत देखा जाता है कि क्या सभी व्यक्ति अपेक्षित स्तर पर काम कर रहे हैं। क्या उनके काम में कोई बाधा तो उत्पन्न नहीं हो रही है। यदि आवश्यक हो तो उद्देश्यों एवं काम की विधियों पर पुनर्विचार किया जा सकता है और उनमें परिवर्तन किए जा सकते हैं।

(viii) **एम.बी.ओ अधीनस्थों को अधिक स्वतंत्रता प्रदान करता है** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत अधीनस्थों की केवल उद्देश्य निर्धारण में ही भागीदारी नहीं होती है बल्कि अपना काम करने में भी उन्हें पूरी स्वतंत्रता दी जाती है। उन्हें अपने पद से संबंधित निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किए जाता है। इससे उनके पद की गरिमा बढ़ती है। परिणामस्वरुप वे अधिक रुचि से काम करते हैं और उन्हें पूर्ण कार्य संतुष्टि प्राप्त होती है।

(ix) **एम.बी.ओ. परिणाम पर जोर देता है न कि कार्य–विधि पर** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत परिणाम पर अधिक ध्यान दिया जाता है अंतिम परिणाम पर पहुंचने के लिए किस विधि का प्रयोग किया जाए यह अधीनस्थों पर छोड़ दिया जाता है। अतः अधीनस्थों से सर्वश्रेष्ठ परिणामों की अपेक्षा की जाती है चाहे ये कैसे भी प्राप्त हो।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधक्या है?
प्र.8 पीटर ड्रकर की उद्देश्यों द्वारा प्रबंधमें क्या योगदान हैं?
प्र.9 एम.बी.ओ की दो विशषताएं बताएं।

3.7 उद्दे□यों द्वारा प्रबंधकी प्रक्रिया

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को निम्न चित्र में दर्शाया गया है :

चित्र – 3.3 उद्दे□यों द्वारा प्रबंधकी प्रक्रिया

(i) **संस्थागत उद्दे□य निर्धारण:** एम.बी.ओ. का प्रथम चरण संस्थागत उद्देश्यों का निर्धारण करना है। प्रत्येक व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य व्यवसाय का विकास एवं विस्तार करना होता है। मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक सहायक उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं। ये उद्देश्य उच्च प्रबन्धकों द्वारा अधीनस्थ प्रबन्धकों की सलाह से निश्चित किए जाते हैं। मुख्य एवं सहायक उद्देश्यों में संस्था द्वारा किये जाने वाले कार्यों का लेखा–जोखा होता है। उद्देश्य निश्चित करते समय ध्यान रखना चाहिए कि ये प्राप्त करने योग्य हों। अर्थात ऐसे उद्देश्य निर्धारित करने चाहिए जिन्हें प्राप्त किया जा सके। एक बार जब ये उद्देश्य निर्धारित कर लिए जाएं तो इनकी जानकारी उपक्रम में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दे देनी चाहिए ताकि वे समझ सकें कि जिस उपक्रम के वे अंग हैं, आखिर उसका अंतिम लक्ष्य क्या है।

(ii) **मुख्य परिणाम क्षेत्रों का निर्धारण** : संगठनात्मक उद्देश्यों का निर्धारण करने के बाद मुख्य परिणाम क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। मुख्य परिणाम क्षेत्रों का अभिप्राय उन क्षेत्रों अथवा क्रियाओं से है जिनमें व्यवसाय के स्वामी विशेष रुचि रखते हैं। ये क्षेत्र ही व्यवसाय की प्राथमिकताओं का निर्धारण करते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ये वे क्षेत्र हैं जहां

विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। प्रायः सभी व्यवसायों में मुख्य परिणाम क्षेत्र इस प्रकार होते हैं – प्रबन्धकों की कार्यकुशलता, लाभदायकता, बाजार साख, सामाजिक दायित्व, वित्तीय साधन आदि।

(iii) **अधीनस्थ उेद्द□य निर्धारण** : संस्था के उद्देश्य निर्धारण करने के बाद अधीनस्थ कर्मचारियों के उद्देश्य विभागीय स्तर तथा व्यक्तिगत स्तर पर निश्चित करते समय ध्यान रखना चाहिए कि ये संस्थागत उद्देश्यों से भिन्न न हों। प्रत्येक स्तर पर निश्चित किए जाने वाले उद्देश्यों का अधीनस्थों से विचार विमर्श के बाद ही अंतिम रुप देना चाहिए। इस प्रकार किए गए विचार–विमर्श से अधीनस्थ प्रोत्साहित होते हैं। इस प्रकार से प्रोत्साहित कर्मचारी उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस स्तर पर निर्धारित किए जाने वाले उद्देश्य अल्पकालीन होते हैं। इसी चरण पर अधीनस्थों की सहमति से वास्तविक कार्य के मापदंड भी निश्चित कर दिये जाते हैं।

(iv) **सामयिक बैठक** : एम.बी.ओ. प्रक्रिया के इस चरण में वरिष्ठ एवं अधिनस्थ समय–समय पर इकट्ठे बैठकर देखते हैं कि वांछित कार्य प्रगति प्राप्त हो रही है या नहीं। यदि नहीं तो उसके क्या कारण है और उनका समाधान क्या होगा। सामयिक सभाएँ थोड़े– थोडें समय के बाद लगातार की जाती हैं। इनका उद्देश्य संगठन की कमजोरियो का समय पर पता लगाना है ताकि तुरन्त सुधारात्मक कार्यविधि करके संभावित हानि से बचा जा सके। यहां पर विशेष बात यह है कि सामयिक सभाओं का उद्देश्य कम काम करने वालों को सजा देना तथा अधिक काम करने वालों को ईनाम देना नहीं है। यह तो एम.बी.ओ अवधाराणा का एक मुख्य हिस्सा है और इसके माष्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि काम नियोजित ढंग से चल रहा है और संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया जाएगा।

सामयिक सभाओं से कर्मचारीयों में ऐसा संदेश जाता है कि उनका बॉस उनके काम में रुचि ले रहा है। इससे कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सामयिक सभाओं से उद्देश्यों की प्राप्ति की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

(v) **अंतिम निश्पादन मूल्यांकन** : एक निश्चित समय के अंत में पूर्व निर्धारित मापदंडों के आधार पर अधीनस्थों के वास्तविक कार्य का मूल्यांकन किया जाता है। कार्य मूल्यांकन के आधार पर विचलनों का पता लगाया जाता है। जो कर्मचारी अपने उद्देश्यों का प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा

नहीं कर पाते उनके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है ताकि वे भविष्य में अच्छा कार्य कर सकें।

एक लगातार चलने वाले व्यवसाय में उद्देश्यों को बार–बार दोहराया जाता है। जैसे ही एक सत्र का काम पूरा होता है फिर अगले सत्र के लिए प्रक्रिया का पालन करना होता है।

3.8 उद्दे□यों द्वारा प्रबंध के लाभ

एम.बी.ओ. से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है अथवा एम.बी.ओ का महत्व निम्नलिखित कारणों से है:

(i) **अधीनस्थों को प्रोत्साहन** : प्रत्येक कर्मचारी चाहता है कि संस्था में उसकी पहचान बने। यदि कर्मचारियों की यह इच्छा पूरी हो जाए तो वे प्रोत्साहित होते हैं। प्रोत्साहित कर्मचारी निश्चित रुप से अच्छा कार्य करते हैं। एम.बी.ओ के अंतर्गत उद्देश्य निर्धारण जैसे महत्वपूर्ण कार्य में अधीनस्थों को भागीदार बना कर उनकी इच्छा को पूरा किया जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें अपनी कार्यविधि का चयन करने व अन्य निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होती है। अतः कहा जा सकता है कि एम.बी.ओ. से अधीनस्थ प्रोत्साहित होते हैं। इसका संस्था के परिणामों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(ii) **संदे□ावाहन प्रक्रिया में सुधार** : अच्छा संदेशवाहन प्रत्येक संस्था की पहली आवश्यकता होती है। एम.बी.ओ. के अंतर्गत अधिकारी–अधीनस्थों में उद्देश्य निर्धारण से लेकर कार्य पूरा होने तक लगातार बैठकें होती रहती हैं। इससे एक उच्च स्तर का संदेशवाहन नैटवर्क स्थापित होता है। अर्थात विचारों के आदान–प्रदान में पूर्व स्वतंत्रता होती है।

(iii) **साधनों एवं क्रियाओं का अच्छा प्रबंध** : एम.बी.ओ के अंतर्गत केवल उद्देश्यों का निर्धारण ही प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं किया जाता है बल्कि उन्हें पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन भी उपलब्ध कराये जाते हैं। उपलब्ध साधनों का बंटवारा इस ढंग से किया जाता है कि सभी क्रियाओं को पूरा किया जा सके। ऐसा प्रयास किया जाता है कि न तो साधनों के अभाव में कोई क्रिया अधूरी रह जाए और न ही साधन बेकार पड़े रहें।

(iv) **अनुसंधान को बढ़ावा** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत परिणामों पर अधिक और उद्देश्य प्राप्ति के लिए अपनाई जाने वाली विधि पर कम ध्यान दिया जाता है। अधीनस्थों को काम करने की विधियों के चयन करने में पूरी स्वतंत्रता होती है। बेहतर प्रदर्शन दिखाने के लिए अधीनस्थ

नई–नई कार्य विधियों की खोज करते हैं। इस प्रकार अनुसंधान को बढ़ावा मिलता है। इसका लाभ नियोक्ता व कर्मचारी दोनों को प्राप्त होता है।

(v) **संदेहों में कमी** : संस्था में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की उद्देश्य निर्धारण में भागीदारी होने के कारण सभी को अपने अधिकार एवं दायित्वों की पूर्ण जानकारी होती है। सभी को मालूम होता है कि कौन किसका बॉस है और कौन किसका अधीनस्थ। अतः एम.बी.ओ. से अधिकार, दायित्व व आपसी संबंधों में अधिक स्पष्टता आती है।

(vi) **स्वतः नियंत्रणः** एम.बी.ओ से थोपे गए नियंत्रण के स्थान पर स्वतः नियंत्रण व्यवस्था स्थापित होती है। यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि थोपे गए नियंत्रण से स्वयं नियंत्रण बहुत अच्छा होता है। अब प्रश्न यह उठता है एम.बी.ओ में यह परिवर्तन कैसे हो सकता है? एम.बी.ओं में अधीनस्थों की भागीदारी पर जोर दिया जाता है। भागीदारी से अपनेपन की भावना जागृत होती है। अपनेपन से स्वतः नियंत्रण होने लगता है। अर्थात जब कर्मचारी काम पर होते हैं तो उन पर किसी बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती बल्कि वे स्वयं ही नियंत्रण में रहकर काम करते हैं इससे संस्था को अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं और कर्मचारियों को कार्य संतुष्टि प्राप्त होती है।

(vii) **मुख्य परिणाम क्षेत्रों की स्पश्टताः** एम.बी.ओ. के अंतर्गत मुख्य परिणाम क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। मुख्य परिणाम क्षेत्रों का अर्थ उन क्रियाओं से है जिन पर अधिक ध्यान देने की जरुरत है। ऐसा करने से प्रबंधकीय कार्यवाही को एक दिशा प्राप्त होती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि किन क्रियाओं की सफलता पर उपक्रम की सफलता निर्भर करती है।

(viii) **परिवर्तन लागू करना आसान** : प्रत्येक संस्था अनेक आंतरिक व बाहरी तत्वों से प्रभावित होती है। इन तत्वों के साथ सामंजस्य करना जरुरी होता है। सामंजस्य स्थापित करने के लिए संस्था में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं। जैसे– उत्पादन की नई विधियों की खोज होने पर उन्हे लागू करना। प्रायः यह देखा जाता है कि कर्मचारी पुराने ढंग से ही काम करना चाहते हैं और किसी भी परिवर्तन का विरोध करते हैं। यहां पर मुख्य बात कर्मचारियों के विरोध से बचते हुए परिवर्तन को लागू करना है। एम.बी.ओ के लागू किए जाने पर परिवर्तन को लागू करना आसान हो जाता है। इसका मुख्य कारण है कर्मचारियों को प्राप्त स्वतंत्रता। वे स्वयं ही नई–नई विधियों की खोज करते हैं। ऐसा करते–करते वे खोजप्रिय व गतिशील बन जाते हैं। वे परिवर्तन के विरोध की अपेक्षा उसे लागू करने में कार्यशील होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.10 एम.बी.ओ का पहला चरण क्या है?

प्र.11 मुख्य परिणाम क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?

प्र.12 एम.बी.ओ से क्या लाभ हो सकते हैं?

3.9 उद्दे□यों द्वारा प्रबंधकी सीमाएँ

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के अनेक लाभ होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ/समस्याएं/कमजोरियां है, इनका अध्ययन किया जाना आवश्यक हैं। एम.बी.ओ की मुख्य सीमाएँ/समस्याएं/कमजोरियां निम्नलिखित है :–

(i) **कर्मचारियों पर अधिक दबाव** : एम.बी.ओं के अंतर्गत संगठन के सभी स्तरों पर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दबाव डाला जाता है। ऐसा करने से कर्मचारी अपने–आप को स्वतंत्र महसूस नहीं करते बल्कि हर समय दबाव में रहते हैं। दबाव से उनकी कार्यकुशलता में कमी होती है।

(ii) **समय की बर्बादी** : एम.बी.ओ के अंतर्गत पूरे वर्ष सभाओं व प्रतिवेदनों के लेन–देन का दौर ही चलता रहता है। प्रबंधको का अधिक समय सभाओं में उपस्थित रहने व रिपोर्ट तैयार करने में ही लग जाता है। परिणाम स्वरुप, कुछ मुख्य कार्यों की ओर ध्यान न दिए जाने के कारण उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है। अतः कहा जा सकता है कि एम.बी.ओ. के लागू करने से समय की बर्बादी होती है।

(iii) **अमूल्य साधनों की बर्बादी**: भागीदारी से जिम्मदारी का बढ़ना, एम.बी.ओ की एक आधारभूत मान्यता है। प्रथम चरण पर तो यह बिल्कुल ठीक है और इससे लाभ प्राप्त होता है। लेकिन कई बार कर्मचारी अपनी जिम्मेदारी को कुछ ज्यादा ही महत्व देने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपना काम पूरा करने के प्रति अधिक उतावले हो जाते है। उनके उतावलेपन के कारण साधनों का दुरुपयोग होने लगता है। (हो सकता है।)

(iv) **उच्च प्रबंध का अपूर्ण समर्थन** : एक संगठन में अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर चलता है। अर्थात उच्च प्रबंध के अधिकार सर्वाधिक होते हैं। उच्च प्रबंध अपने निर्णयों को अधीनस्थों पर थोपते हैं। ऐसा करना उन्हें अच्छा लगता है। दूसरी ओर एम.बी.ओ में

अधीनस्थों की चारदिवारी से उच्च प्रबंधकों के अधिकारों में कमी आती है, जिसे वे पसंद नहीं करते। अंततः एम.बी.ओ को लागू करने में बाधा उत्पन्न होती है।

(v) **उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई** : एम.बी. ओ. केवल उसी स्थिति में सफल होता है जब अधिकारी व अधीनस्थ दोनों एक–दूसरे की सीमाओं को ध्यान में रखकर उद्देश्यों का निर्धारण करें। प्रायः देखा जाता है कि वरिष्ठ अधिकारी ही उद्देश्यों का निर्धारण कर लेते हैं और अधीनस्थों को मात्र औपचारिकतावश बुलाया जाता है। उन्हें इतना समय नहीं दिया जाता कि वे अपने सुझाव दे सकें। और यदि वे अपने सुझाव देते भी हैं तो उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है। इस प्रकार उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसका प्रभाव यह होता है कि उद्देशोओं पूरा करना कठिन हो जाता है।

(vi) **दीर्घकालीन उद्देश्यों को महत्व देनाः** एम.बी.ओ. की सफलता के लिए प्रबंधकों को चाहिए कि अल्पकालीन उद्देश्यों के साथ–साथ दीर्घकालीन उद्देश्यों के महत्व को भी समझें। ऐसा करने से अल्पकाल के साथ–साथ दीर्घकाल में भी संस्था की सफलता व विकास की उम्मीद बनी रहेगी।

(vii) **कर्मचारीयों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करनाः** कुशल नपुण कर्मचारियों की कमी एम. बी.ओ की सफलता को प्रभवित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। अतः इस कमी को पूरा करना अतिआवश्यक है। इसके लिए जरुरी है कि एम.बी.ओ कार्यक्रम प्रारंभ करने से पूर्व ही संस्था में काम करने वाले हर व्यक्ति को इसकी जानकारी से परिचित करवा दिया जाए। प्रशिक्षण के दौरान ही कर्मचारियों के एम.बी.ओ के संबंध में सभी संदेहों को दूर कर देना चाहिए। प्रायः कर्मचारी किसी भी नये कार्यक्रम का लागू किए जाने का विरोध करते हैं। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों का मानसिक रुप से तैयार किया जा सकता है।

(viii) **भागीदारी प्रकृति का विकास करनाः** प्रायः देखा जाता है कि अधीनस्थों की प्रकृति भागीदारी की नहीं होती। इस समस्या के दूर करने के लिए अधीनस्थों को यह समझाया जाना चाहिए कि वे संस्था के मुख्य अंग हैं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा दिये गये सुझावों को निर्णयों में उचित स्थान देना चाहिए। यदि एक बार उनके सुझाव को स्वीकार कर लिया गया तो वे बार–बार नये सुझावों के साथ आयेंगे। इस प्रकार भागीदारी की समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

सारांश

विभिन्न विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन को निर्णयन की प्रक्रिया कहा जाता है। निर्णयन एक विकल्प को चुनने की क्रिया है। प्रायः संगठन में एक प्रबंधक को कदम–कदम पर विभिन्न विकल्पों में सं एक को चुन कर नियोजन करना होता है। ऐसा करने के लिए हर एक विकल्प का फायदा या नुकसान का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। हर प्रबंधकीय कार्य, जैसे– नियोजन, स्टाफिंग इत्यादि में निर्णय लेना आवश्यक होता है। निर्णय सभी प्रबंधकीय गतिविधियों एवं सभी कार्यों में किया जाता है। इस प्रतियोगी दुनिया में सही और उचित निर्णय ले कर एक संगठन को सुचारु रुप से चलाने में सहायक होता है।

उद्देश्य द्वारा प्रबंधन नियोजन की सहायक क्रिया है जिसमें एक संगठन के प्रबंधक एवं कर्मचारी एक साथ मिलकर लक्ष्य निर्धारित करते हैं। इस तकनीक का श्रेय प्रबंधन विशेषज्ञ **पीटर ड्रकर** को दिया जाता है जिन्होंने इसे 1950 के दशक में इस्तेमाल किया। एम.बी.ओ. के अंतर्गत एक संगठन में सभी पदेन अधिकारी व कर्मचारी सक्रियता से संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं व उन्हें प्राप्त करने में अपना पूरा योगान देते हैं। मिलकर बनाए गए लक्ष्य संगठन में आसानी से समायोजित हो जाते हैं।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 निर्णयन का क्या अर्थ है?

प्र.2 निर्णयन और नियोजन में क्या संबंध है?

प्र.3 निर्णयन को परिभाषित कीजिए।

प्र.4 निर्णयन क्या है? इसकी कोई दो विशेषताएँ बताइए।

प्र.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधसे आप क्या समझते हैं?

प्र.6 क्या एम.बी.ओ. से कार्य कुशलता में कमी आती है?

प्र.7 क्या किसी भारतीय उद्योग में एम.बी.ओ लागू किया गया है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.8 निर्णयन एक चयनात्मक क्रिया है। क्या आप इससे सहमत हैं?

प्र.9 निर्णयन के बिना क्या नियोजन सफल हो सकता है? क्यों?

प्र.10 निर्णयन के पांच लाभ स्पष्ट करें।

प्र.11 'उद्देश्यो द्वारा प्रबंध' से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं तथा प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्र.12 एम.बी.ओ की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्र.13 एम.बी.ओ को परिभाषित कीजिए और इसके लाभ बताइये।

प्र.14 एम.बी.ओ को परिभाषित कीजिए। इसकी सीमाएँ कौन–कौन सी हैं?

प्र.15 एम.बी.ओ की कमजोरियों का वर्णन कीजिए और इसकी कुशलता को बढ़ाने के सुझाव दीजिए।

प्र.16 एम.बी.ओ क्या है? इसके लाभ तथा कमियों को स्पष्ट कीजिए।

प्र.17 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध क्या है? इसको प्रभावी बनाने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

खण्ड – 2

इकाई – 2 पूर्वानुमान एवं संगठन

विश्य सूची

अध्ययन के उद्देश्य

4.0 प्रस्तावना

4.1 पूर्वानुमान

4.2 पूर्वानुमान की आवश्यकता

4.3 पूर्वानुमान की तकनीक

4.4 संगठन का अर्थ

4.5 संगठन प्रक्रिया

4.6 औपचारिक व अनौपचारिक संगठन

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्दे□य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- पूर्वानुमान का आशय एवं आवश्यताएं
- पूर्वानुमान की तकनीकें
- संगठन का अर्थ
- संगठन की परिभाषाएं
- संगठन की विशेषताएं
- संगठन प्रक्रिया

4.1 पूर्वानुमान

पूर्वानुमान का अर्थ किसी भविष्य के बारे में पहले से ही अंदाज़ लगाने से है। एक संगठन में कोई भी नियोजन लंबी दूरी का अथवा लघु दूरी का – पूर्वानुमान के आधार पर ही लिया जाता है। भविष्य परिवर्तनशील है किन्तु उसके बारे में वैज्ञानिक तरीके से अंदाज़ लगाकर आने वाले खतरे से बचा जा सकता है। किसी प्रबन्धक द्वारा अपनी आज की नीती एवं भविष्य के नियोजन का आधार पूर्वानुमान होने से नियोजन का उद्देश्य सफलता से प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए मौसम विशेषज्ञ आने वाले मौसम का पूर्वानुमान देते हैं, वैसे ही एक कुशल प्रबन्धक बाजार, उपभोक्ता, सरकारी नीतियों, आर्थिक हालात व अंर्तराष्ट्रीय स्तर की घटनाओं का पूर्वानुमान लगाकर एक संगठन को नियोजित करता है।

टूल बाक्स – 1
पूर्वानुमान किसी भविष्य की घटना के बारे में वैज्ञानिक तरीके से अंदाज़ लगाना पूर्वानुमान कहलाता है।

4.2 पूर्वानुमान की मान्यताएँ

भविष्य को सही तौर पर देख पाना संभव नहीं है। किन्तु आने वाले खतरे से बचना व मौके का फायदा उठाने के लिए पूर्वानुमान का होना अच्छी प्रक्रिया है। पूर्वानुमान कुछ मान्यताओं पर आधारित हैः

(i) पूर्वानुमान क्षितिज : निकटतम भविष्य का पूर्वानुमान दूरस्थ समय के पूर्वानुमान से अधिक स्पष्ट व सटीक होगा। पूर्वानुमान का क्षितिज जितना कम होगा, उसे बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

टूल बाक्स – 2
पूर्वानुमान क्षितिज पूर्वानुमान कितने समय के लिये किया जा रहा है।

(ii) व्यक्तिगत वस्तुओं या नतीजों की तुलना में एक संगठन की पूरी वस्तुओं का पूर्वानुमान अधिक सक्षम व सटीक होता हैं। उदाहरण के लिए, एक संगठन के किसी विक्रय कर्मचारी के एक साल का प्रदर्शन का पूर्वानुमान लगाने से बेहतर पूरी विक्रय विभाग के अंदाजा लगाना अधिक सटीक होगा।

(iii) पूर्वानुमान की सीमाः भविष्य के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी कह पाना संभव नहीं है। हालांकि एक बुद्धिमान प्रबंधक समझदारी से पूर्वानुमान लगाता है। किन्तु पूर्वानुमान की सीमाएँ होती हैं।

टूल बाक्स – 3
पूर्वानुमान की मान्यताएं
(i) पूर्वानुमान क्षितिज
(ii) पूर्वानुमान की सीमा

4.3 पूर्वानुमान की वि▯श्ताएं

विलियम जे स्टीवेंसन ने अच्छे पूर्वानुमान की कुछ विशेषताओं की सूची दी है :

(i) सटीक : सटीकता की कुछ मात्रा निर्धारित कर लेना किसी भी नियोजन में सहायक होता है।

(ii) विश्वसनीय : पूर्वानुमान के लिए उपयोग किए जाने वाली विधि विश्वसनीय होना चाहिए।

(iii) पूर्वानुमान क्षितिज : अच्छे पूर्वानुमान की समय सीमा होना आवश्यक है। पूर्वानुमान अनिश्चित काल के लिए नही संभव है और न ही सटीक।

(iv) समझने व उपयोग करने में आसानः पुर्वानुमान का सही अध्ययन करने के लिए उसका सहज होना आवश्यक है ।

(v) लागत–प्रभावी : अच्छे पूर्वानुमान से भविष्य को सुरक्षित जरुर बनाया जा सकता है। किंतु संगठन को यह समझना आवश्यक है कि पूर्वानुमान करने की लागत, पूर्वानुमान से प्राप्त लाभ से अधिक न हो।

टूल बाक्स – 4

स्टीवेंसन के अनुसार पूर्वानुमान की वि◻शताएँ

(i) सटीक

(ii) विश्वसनीय

(iii) पूर्वानुमान क्षितिज

(iv) सहज व सरल

(v) लागत–प्रभावी

4.4 पूर्वानुमान की तकनीकें

पूर्वानुमान की अनेक तकनीकें इस्तेमाल में लाई जा सकती हैं। इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

मात्रात्मक या गुणात्मक

(क) मात्रात्मक तकनीकें – मात्रात्मक तकनीकें, गुणात्मक की तुलना अधिक वस्तुपरक है। इनमें समय – श्रृंखला, साहचर्य मॉडल का प्रयोग किया जा सकता हैं इन कार्यों के कुछ पैटर्न हो सकते हैं। पैटर्न में – रुझान, नियमित विविधताएँ, अनियमित विविधताएँ एवं रैडम विविधताएँ शामिल हैं।

(ख) गुणात्मक तकनीकें – मात्रात्मक तकनीकों की तुलना में गुणात्मक तकनीके अधिक व्यक्तिपरक हैं। इसमें कुछ विविधयां –जैसे, डेल्फी तकनीक, नैतिकता, ग्रुप तकनीक (एन.जी. टी), बिक्री स्तर राय, कार्यकारी राय व बाजार अनुंसंधान शामिल हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.1 संगठन में पूर्वानुमान की क्या आवश्यकता है?

प्र.2 क्या पूर्वानुमान एक भविष्यवाणी की तरह की जाती है?

प्र.3 पूर्वानुमान की गुणात्मक तकनीक क्या है?

प्र.4 मात्रात्मक पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं?

4.4 संगठन का अर्थ

प्रबन्ध का प्रथम कार्य नियोजन कर लेने के बाद प्रबंधकों को संगठन ढांचा तैयार करने की जिम्मेदारी होती है। इस कार्य को हम संगठन कहते हैं। इसके अंतर्गत निर्धारित किया जाता है कि क्या क्रियाएं की जाएंगी, क्रियाओं का समूहीकरण कैसे होगा, उत्तरदायित्व व अधिकारों का अंतरण कैसे होगा तथा कौन किसको रिपोर्ट करेगा।

टूल बाक्स – 5
संगठन इसका अभिप्राय सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न अंगों में मैत्रीपूर्ण समायोजन करना है।

- **संगठन की परिभाशाएं**

विभिन्न विद्वानों ने संगठन के अर्थ के संबंध में निम्नलिखित मत प्रस्तुत किये हैः

(i) **हैने के अनुसार**, ''किसी सामान्य उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशेष अंगो का मैत्रीपूर्ण संयोजन ही संगठन कहलाता है।''

(ii) **हेमेन के अनुसार**, ''संगठन एक ढांचागत फ्रेमवर्क है जिसके अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं को समन्वित तथा एक–दूसरे से संबंधित किया जाता हैं''

(iii) **मैक्फारलैंड के अनुसार**, ''संगठन का अभिप्राय व्यक्तियों के एक विशेष समूह से है जो एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ती के लिए मिलकर कार्य करते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है – एक संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के निर्धारण करने एंव समूहीकरण करने तथा कर्मचारियों के मध्य औपचारिक संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया को संगठन कहते हैं।

- **संगठन की विशेताएं**

विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाओं के अध्ययन से संगठन की विशेषताओं अथवा प्रकृति के बारे में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती हैः

(i) **कार्य–विभाजन** – कार्य विभाजन संगठन का आधार होता है। अर्थात कार्य – विभाजन के बिना संगठन नहीं हो सकता। कार्य–विभाजन के अंतर्गत व्यवसाय के पूरे काम को अनेक विभागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक विभाग के कार्य को पुनः उपकार्यों में विभाजित कर दिया जाता है।

(ii) **समन्वय** – संगठन के अंतर्गत विभिन्न लोगों को अलग–अलग काम सौंपे जाते हैं लेकिन सभी का प्रयास एक ही होता है – उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा करना। संगठन ऐसी व्यवस्था है कि सभी लोगों का काम अलग–अलग होते हुए भी एक –दूसरे से संबंधित होता है। परिणामतः समन्वय स्थापित करने में सहयोग मिलता है।

(iii) **अनेक व्यक्ति** – संगठन अनेक व्यक्तियों का समूह होता है जो समन्वय उद्देश्य को पूरा करने के लिए एकत्रित होते हैं। एक अकेला व्यक्ति संगठन का निर्माण नहीं कर सकता।

(iv) **सामान्य उद्दे□य** – संगठन के अनेक अंग होते हैं, सभी के अलग–अलग कार्य होते हैं लेकिन सभी एक सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर रहते हैं।

(v) **संगठन प्रबन्ध का एक यंत्र है** – संगठन को प्रबन्ध का संयंत्र माना जाता है। यह एक ऐसी मशीन है जिसमें यदि एक पुर्जा भी खराब हो जाये अथवा सही जगह पर न लगाया जाए तो मशीन काम नहीं करेगी। अर्थात यदि क्रियाओं के विभाजन में गलती हो जाए या पदों का स्थापन ठीक प्रकार से न हो तो सम्पूर्ण प्रबंध व्यवस्था विफल हो जाएगी।

- **संगठन का महत्व**

संगठन का महत्व अथवा लाभ निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होता हैः

(i) **वि□ाष्टीकरणः** संगठन के अंतर्गत सम्पूर्ण कार्यों को अनेक उपकार्यों में बांट दिया है। सभी उपकार्यों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है। जो एक ही कार्य को बार–बार करके उसके विशषज्ञ बन जाते हैं। इस प्रकार कम से कम समय में अधिक से अधिक कार्य होने लगते हैं और संस्था को विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

(ii) **कार्य संबंधों में स्पश्टताः** संगठन कर्मचारियों के साथ कार्य संबंधों को स्पष्ट करना है। इससे स्पष्ट होता है कि कौन किसको रिपोर्ट करेगा। परिणामतः संगठन भावी होता है। यह उत्तरदेयता निर्धारण में भी सहायक है।

(iii) **संसाधनों का अनुकूलतम उपयोगः** संगठन प्रक्रिया के अंतर्गत कुल काम को अनेक छोटी–छोटी क्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया को करने वाला एक अलग कर्मचारी होता है। ऐसा करने से न तो कोई क्रिया पूरी होने से छूटती है और न ही किसी क्रिया को अनावश्यक रुप से दो बार किया जाता है। परिणामतः संगठन में उपलब्ध सभी संसाधनों जैसे – सामग्री, मशीन, वित्त, मानव–शक्ति, 'संसाधन' आदि) का अनुकूलतम उपयोग संभव होता है।

(iv) **परिवर्तन में सुविधा** : संगठन प्रक्रिया एक संस्था को इस योग्य बना देता है कि वह कर्मचारियों के पद से संबंधित किसी भी परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेती है। ऐसा ऊपर से नीचे सभी प्रबन्धकों का एक स्पष्ट अधिकार श्रृंखला में बंधे होने के कारण होता है। जब भी कोई प्रबंधकीय पद रिक्त होता है तो पदोन्नति द्वारा उसे तुरंत भर दिया जाता है। क्योंकि प्रत्येक अधिनस्थ अपने बॉस की कार्य–प्रणाली से पहले से ही भली भाँती परिचित होता है इसलिए उन्हें नया पद ग्रहण करने में कोई असुविधा नहीं होती।

(v) **प्रभावी प्र□ासन** : प्रायः देखा जाता है कि प्रबंधकों के अधिकारों को लेकर भ्रम की स्थिति बनी रहती है। संगठन प्रक्रिया प्रत्येक प्रबन्धक द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं व प्राप्त अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख करती हैं। यह भी स्पष्ट कर दिया जाता है कि प्रत्येक प्रबन्धक किस कार्य के लिए किसको आदेश देगा। प्रत्येक कर्मचारी को यह भी जानकारी होती है कि वह किसके प्रति उत्तरदायी है? इस प्रकार अधिकारों को लेकर उत्पन्न होने वाली भ्रम की स्थिति समाप्त हो जाती है। परिणामतः प्रभावी प्रशासन संभव होता है।

(vi) **कर्मचारियों का विकासः** संगठन प्रक्रिया के अंतर्गत अधिकार अंतरण किया जाता है। ऐसा एक व्यक्ति की सीमित क्षमता के कारण ही नहीं बल्कि काम करने की नई विधियों की खोज करने के लिए किया जाता है। इसमें अधिनस्थों को निर्णय लेने के अवसर प्राप्त होते हैं। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए वे नवीनतम विधियों की खोज करते हैं व उन्हें लागू करते है, परिणामतः उनका विकास होता है।

(vii) **विस्तार एवं विकासः** संगठन प्रक्रिया के अंतर्गत कर्मचारियों को प्राप्त निर्णय स्वतंत्रता से उनका विकास होता है। वे नई चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहते हैं। इस

स्थिति का लाभ उठाते हुए उपक्रम का विस्तार किया जा सकता है। विस्तार से उपक्रम की लाभ क्षमता बढ़ती है जो उनके विकास में सहायक सिद्ध होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि संगठन प्रक्रिया में पदों, भूमिकाओं, अधिकारों व संबंधों की स्पष्ट व्याख्या करके नियोजन में बताए गए उद्देश्यों को वास्तविकता में बदलने के लिए ढ़ांचा तैयार किया जाता है। इस ढ़ांचे के आधार पर ही प्रबंध के आगे के कार्यों को पूरा किया जाता है। इस संदर्भ में कहा जाता है कि संगठन का प्रबंध में वही स्थान है जो मानव शरीर में हड्डियों के ढांचे का अर्थात संगठन प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.5 संगठन प्रक्रिया क्या है?
प्र.6 क्या संगठन प्रभावी प्रशासन में सहायक सिद्ध होता है।
प्र.7 क्या संगठन स संस्था को विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते है?
प्र.8 संगठन की परिभाषा से आप क्या समझते हैं?

4.5 संगठन प्रक्रिया

- **संगठन प्रक्रिया**

  प्रबंध के प्रथम कार्य नियोजन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबंध का दूसरा कार्य 'संगठन' किया जाता है। प्रबंध के संगठन कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं।

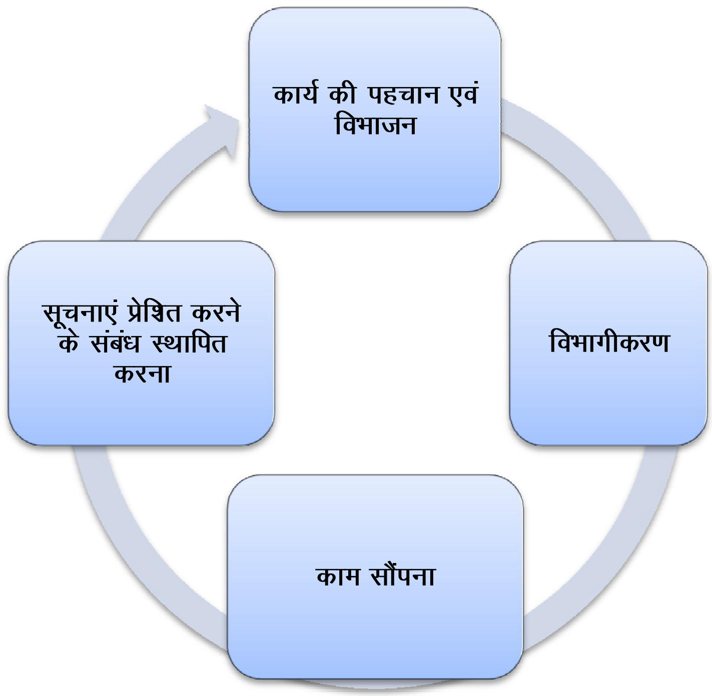

चित्र — 4.1 संगठन प्रक्रिया

(i) **कार्य की पहचान एवं विभाजन** : संगठन प्रक्रिया का प्रथम चरण कार्य की पहचान एवं विभाजन करना है। इस चरण पर कुल काम को अनेक क्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, एक कम्पयूटर का निर्माण करने वाली कम्पनी की विभिन्न क्रियाएं इस प्रकार हो सकती हैं।

- कच्चा माल क्रय करना।
- तैयार पुर्जे क्रय करना।
- उत्पादन।
- माल का स्टॉक रखना।
- अनुसंधान।
- विज्ञापन।
- विक्रय।
- वित्त व्यवस्था।
- लेखांकन।
- कर्मचारियों की व्यवस्था करना, आदि।

(ii) **विभागीकरण** : संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रियाओं का निर्धारण कर लेने के बाद क्रियाओं का विभागीकरण किया जाता है। विभागीकरण के अंतर्गत एक समान क्रियाओं का एक समूह बना कर (इसे समूहीकरण कहते हैं) एक विशेष विभाग को सौंप दिया जाता है, जैसे – कच्चा माल क्रय करना, तैयार पुर्जे क्रय करना, आदि को क्रय विभाग को तथा उत्पादन करना, माल का स्टॉक रखना, अनुसंधान, आदि क्रियाओं को उत्पादन विभाग को सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार विज्ञापन का कार्य विपणन विभाग को तथा वित्तीय व्यवस्था, लेखांकन एवं पत्र–व्यवहार का कार्य वित्त विभाग को सौंपा जा सकता है। क्रियाओं के समूहीकरण एवं विभागीकरण को निम्न चित्र में समझाया गया है जहां कम्पनी का उद्देश्य कम्पयूटर तैयार करना है।

(iii) **काम सौंपना** : इस चरण पर यह निश्चित किया जाता है कि प्रत्येक पद पर या व्यक्ति को क्या–क्या काम करने हैं: जैसे क्रय प्रबंधक को वस्तुओं को क्रय करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाएगा, विक्रय प्रबंधक को वस्तुओं के विक्रय का, विज्ञापन प्रबंधक को विज्ञापन का तथा इसी प्रकार वित्तिय प्रबंधक को वित्त व्यवस्था का कार्यभार सौंपा जाएगा। काम सौंपते समय काम की प्रकृति तथा व्यक्ति की योग्यता का मिलान करना आवश्यक है।

(iv) **सूचनाएं प्रेषित करने के संबंध स्थापित करना** : जब दो या अधिक व्यक्ति एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं तो उनके संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जानी जरुरी है। इन संबंधों को 'रिपोर्टिंग रिलेशनज़' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि कौन उसका अधिकारी है तथा कौन अधीनस्थ। उदाहरण के लिए क्रय विभाग में काम करने वाले सभी व्यक्तियों का अधिकारी क्रय प्रबंधक होगा, उसी से उन्हें आदेश मिलेंगे और उसके प्रति ही वे उत्तरदायी होंगे।

सारांश

पूर्वानुमान का अर्थ किसी भविष्य के बारे में पहले से ही अंदाज़ लगाने से है। एक संगठन में कोई भी नियोजन लंबी दूरी का अथवा लघु दूरी का – पूर्वानुमान के आधार पर ही लिया जाता है। भविष्य परिवर्तनशील है किन्तु उसके बारे में वैज्ञानिक तरीके से अंदाज़ लगाकर आने वाले खतरे से बचा जा सकता है। किसी प्रबन्धक द्वारा अपनी आज की नीती एवं भविष्य के नियोजन का आधार

पूर्वानुमान होने से नियोजन का उद्देश्य सफलता से प्राप्त हो सकता है। कारोबारी माहौल में भविष्य के बारे में समझना एक प्रमुख प्रबंन्धन कार्य है। एक प्रभावी योजना बनाने के लिए यह समझना आवश्यक है कि किसी विशिष्ट समय में व्यवसाय की स्थिति किस तरह दिखेगी। ऐसा करने से भविष्य में उत्पन्न होने वाल खतरों से भी नियाजित तरीके से सामना किया जा सकता है एव भविष्य में मिलने वाले मौकों का फायदा उठाने के लिए एक संगठन प्रयासरत हो सकता है । पूर्वानुमान के लिए मात्रात्मक व गुणात्मक तकनीकों का प्रयोग करते हुए एक संगठन भविष्य के बारे में बेहतर समझ कर अपने नियोजन को बदल सकती है।

संगठन के उद्देश्य के प्रति अपने प्रयासों का योगदान दे रहे लोगों को एक ग्रुप के रुप में देखा जाता है। संगठन का उद्‌गम मानव सभ्यता की प्रारंभिक अवस्थाओं से जुड़ा है जब दो या अधिक व्यक्ति खाने, पहनने, रहने तथा जीवन के संरक्षण की अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक साथ जुड़ने तथा सहयोग करने लगे। अतः संगठन का जनम तब हो जाता है जब दो या अधिक व्यक्ति किसी सामान्य उद्देश्य के लिए अपने प्रयासों को एकजुट करते है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि एक व्यक्ति अकेले अपनी जरुरतो और अभिलाशाओं को पूरा करने में असमर्थ होता है क्योंकि उसके पास शक्ति, योग्यता तथा संसाधानों की कमी होती है। अतः उसको अन्य लोगों के सहयोग की आवश्यकता होती है। प्रबंधकों का मुख्य कार्य व्यक्तियों के समूह से कार्य लेना है न कि स्वयं कार्य करना।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 संगठन में पूर्वानुमान की क्या आवश्यकता है?

प्र.2 पूर्वानुमान की गुणात्मक तकनीक क्या है?

प्र.3 मात्रात्मक पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं?

प्र.4 संगठन प्रक्रिया क्या है?

प्र.5 क्या संगठन प्रभावी प्रशासन में सहायक सिद्ध होता है।

प्र.6 क्या संगठन स संस्था को विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते है?

प्र.7 संगठन से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 पूर्वानुमान की तकनीक क्या है?

प्र.2 संगठन कार्य को पूरा करने के लिए क्या कदम उठाए जाते है?

प्र.3 क्या पूर्वानुमान एक भविष्यवाणी की तरह की जाती है?

प्र.4 पूर्वानुमान के पांच लाभ स्पष्ट करें।

प्र.5 विशिष्टीकरण से आप क्या समझते हैं? संगठन में इसकी विशेषताओं तथा प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्र.6 पूर्वानुमान को परिभाषित कीजिए। इसकी सीमाएं कौन–कौन सी हैं?

प्र.7 पूर्वानुमान की कमजोरियों का वर्णन कीजिए और इसकी कुशलता को बढ़ाने के सुझाव दीजिए।

प्र.8 संगठन क्या है? इसको प्रभावी बनाने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

खण्ड – 2

इकाई – 3 अधिकार एवं उत्तरदायित्व, प्रबंध का विस्तार, केंद्रिकरण एवं विकेंद्रिकरण

विशय सूची

अध्ययन का उद्देश्य

5.0 प्रस्तावना

5.1 अधिकार का अर्थ

5.2 उत्तरदायित्व का अर्थ

5.3 अधिकार व उत्तरदायित्व में अंतर

5.4 प्रबंध का विस्तार

5.5 विकेंद्रिकरण

5.6 केंद्रिकरण

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- अधिकार का अर्थ
- उत्तरदायित्व का अर्थ
- प्रबंध का विस्तार
- विकेंद्रिकरण का अर्थ
- केंद्रिकरण का अर्थ

5.0. प्रस्तावना

किसी संस्था में कोई कार्य करने के लिए कुछ संसाधनों की आवश्यकता होती है। साथ ही जरुरी यह है कि उन संसाधनों को उपयोग करने के अधिकार भी हों। अधिकार का शाब्दिक अर्थ हुआ एक ऐसी शक्ति जिससे संसाधनों को प्रयोग में लाया जा सके। किन्तु यह भी आवश्यक है कि इन बहुमूल्य संसाधनों को बेकार खर्च न किया जाए। इसे उत्तरदायिता के साथ ही इस्तेमाल किया जाए।

5.1. अधिकार

प्रबंधकीय कार्यो के निष्पादन के लिए प्रबंधक को अधिकारों की आवश्यकता होती है। इसके आधार पर ही वह अपने अधीनस्थों को कार्य का निष्पादन करने का आदेश देता है। अधिकार से आशय विशिष्ट स्वत्व, शक्ति अथवा अनुमति से लगाया जाता है। यदि अधिकार न हो, तो वह प्रबंधक ही नहीं है। अधिकार से आशय किसी व्यक्ति को प्राप्त उस शक्ति से है जिसके आधार पर वह अधीनस्थों को कार्य के निष्पादन के संबंध में आदेश देता है तथा उनसे कार्य लेता है। संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन के अंतर्गत कार्य करने की गतिविधियों का मार्ग–दर्शन करने तथा उससे कार्य लेने के आदेश देने हेतु प्राप्त शक्ति अधिकार होती है। **थियो हैमन** के शब्दों में, ''अधिकार वह उचित शक्ति है जिसे धारण करने से विरत रहने के लिए कह सकता है और यदि वह इन निर्देशों का अनुसरण न करे, तो प्रबंधक इस स्थिति में होता है कि आवश्यकता होने पर अनुशासन की कार्यवाही कर पाए। यहां तक कि अधीनस्थ व्यक्ति को नौकरी से पृथक कर सके। अधिकार के बिना केवल अस्त–व्यस्तता ही बढ़ेगी।'' अधिकार एक वैधानिक शक्ति है अर्थात यह आदेश देने अथवा कार्य कराने का अधिकार है। प्रबंधन के क्षेत्र में अधिकार शब्द का उपयोग करने पर इसका आशय इस प्रकार है – ''अधिकार दूसरों को आदेश देने की शक्ति है। यह उपक्रम अथवा विभागीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, शक्ति प्राप्तकर्ता के निर्देशों के अनुरुप कार्य करने अथवा न करने का आदेश है।'' शक्ति में आदेशों का पालन निहित होता है। आदेशों का यह पालन मंजूरी, शक्ति, प्रार्थना, उत्पीड़न, डांट–डपट, आग्रह आर्थिक या अनार्थिक दंड अथवा प्रतिबंधों द्वारा कराया जा सकता है।

टूल बाक्स – 1
अधिकार
अधिकार एक वैधानिक शक्ति है अर्थात यह आदेश देने अथवा कार्य कराने का अधिकार है।

5.1.1 अधिकार या सत्ता की परिभाशाएं

प्रबंध साहित्य में अधिकार या सत्ता शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। इसका कारण अधिकार के विभिन्न स्त्रोतो का होना है। विभिन्न विद्वानों ने सत्ता को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया हे। यहां कुछ प्रमंख परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है –

- **ऐलन** के अनुसार, ''सत्ता उन समस्त अधिकारों एवं शक्ति का योग है जो किसी व्यक्ति को प्रत्यायोजित कार्यों के निष्पादन को संभव बनाने के लिए सौंपे जाते हैं''
- **हेनरी फेयोल** के अनुसार, ''अधिकार प्रदान करने का अधिकार तथा आज्ञा पालन के लिए बाध्य करने की शक्ति को सत्ता कहते हैं''
- **एच.ए. साइमन** के अनुसार, ''अधिकार सत्ता निर्णय लेने एवं अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं को मार्गदर्शन करने की शक्ति है। यह दो व्यक्तियों के मध्य उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ का संबंध है। उच्च अधिकारी निर्णय लेते हैं एवं इस आशा एवं विश्वास के साथ उनका संवहन करते हैं कि अधीनस्थ उनका पालन करेंगे। अधीनस्थों के क्रियाकलाप ऐसे निर्णयों से ही निर्धारित होते हैं।''
- **कूण्टज एवं ओ' डोनेल** के अनुसार, ''अधिकार का तात्पर्य वैधानिक या स्वत्वाधिकार से संबंधी शक्ति से होता है। दूसरे शब्दों में, आदेश दने या कार्य करने का स्वत्व ही अधिकार है।''
- **थियो हैमेन** के अनुसार, ''अधिकार वह उचित कानूनी शक्ति है जिसे धारण करने वाला अधीन व्यक्ति को कुछ करने या न करने का आदेश दे सकता है और यदि वह इन निर्देशों का अनुसरण न करे तो प्रबंधक इस स्थिति में होता हे कि आवश्यक होने पर अनुशासन की कार्यवाही कर सके, यहां तक कि अधीन व्यक्ति को नौकरी से पृथक कर दे अधिकार के बिना केवल अस्त–व्यस्तता ही बढ़ेगी।''

5.1.2 अधिकार या सत्ता के स्रोत

अधिकार अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकार से लेकर अपना कार्य कुशलतापूर्वक करने के लिए निश्चित धनराशी खर्च करने, संस्था को अपने वचन से वचनबद्ध करने का अधिकार तक, कुछ भी हो सकता है। प्रबंध के क्षेत्र में यह अधिकार, सहायक लोगों का आदेश देने तथा उनसे आदेश पूर्ती करने से संबंध रखता है। अधिकार के उपयोग का मुख्य उद्देश्य अधीनस्थों के व्यवहार को इस प्रकार प्रभावित करना है कि वे संगठन के उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए जाते हैं क्योंकि किसी भी संगठन के संस्थापक उस संगठन के अधिकार स्त्रोत कहलाते हैं, लेकिन कुछ परिस्थितियों में ये नीचे से या बराबर के स्रोत से भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

(i) **औपचारिक अधिकार – सत्ता की विचारधारा**

इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक अधिकारी को सत्ता अपने से उच्च अधिकारी से प्राप्त होती है और इस दृष्टि से मुख्य प्रबंधक सत्ता का स्त्रोत होता है। यदि सत्ता स्त्रोत की खोज आगे भी जारी रखी जाए तो हम पाएंगे कि मुख्य प्रबंधक को, कंपनी के सभापति को संचालक मंडल और संचालक मंडल को संस्थान के अंशधारियों अथवा स्वामियों से सत्ता प्राप्त होती है। अतः संस्थान के स्वामियों में सत्ता का अंतिम निवास माना जा सकता है, लेकिन सत्ता स्त्रोत की खोज को सत्ता कहां से प्राप्त होती है? स्वामियों को सत्ता देश के संविधान के अंतर्गत प्राप्त होती हैं जबकि संविधान देश के सभी विधान का मूल स्त्रोत माना जा सकता है। संविधान का निर्माण, संशोधन एवं परिवर्तन, देशवासियों द्वारा किया जा सकता है और इस प्रकार किसी भी प्रजातांत्रिक देश में सर्वोच्च सत्ता देशवासियों के हाथों में रहती है। इस प्रकार सत्ता सामाजिक स्वीकृति पर निर्भर करती है। एक बड़ी संस्था में सत्ता का विवरण ऊपर से नीचे की ओर किया जाता है। संगठन की सर्वोच्च सत्ता इसके संस्थापकों के हाथों में मानी जाती ह जो इसे सर्वोच्च प्रबंधकों के हाथ में सौप देते हैं। सर्वोच्च प्रबंधक क्यो की सारा काम स्वयं नहीं कर पाते, अपनी सहायता के लिए सहायक अधिकारी नियुक्त करते है और उन्हें उनकी निपुणता व उत्तरदायित्व के अनुरुप कुछ काम सौंप देते हैं। ये सहायक प्रबंधक भी अपनी पारी में अपनी जिम्मेदारी बढ़ जाने पर आगे कुछ सहायक नियुक्त करते हैं और उन्हें सौपे गए कार्यों के अनुरुप कुछ अधिकार सौंप देते हैं। प्रबंधकों की यह क्रमिक नियुक्ति एक ओर संगठन के औपचारिक ढांचे को जन्म देती है और

दूसरी ओर संगठन को भरने वाले अधिकारियों को तरह–तरह के अधिकारियों से युक्त कर देती है।

(ii) **स्वीकृति का सिद्धान्त :**

सइमन तथा बर्नार्ड इस सिद्धान्त के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन विद्वानों के मतानुसार किसी भी प्रबंधक के अधिकारों का अस्तित्व केवल उसी दशा में होता है जबकि अधीनस्थ कर्मचारी उन्हें स्वीकार करें। औपचारिक सत्ता एक नाममात्र की सत्ता है। यह सत्ता उसी समय प्रभावशाली बन पाती है, जबकि अधीनस्थ इस सत्ता को स्वीकार कर लें। इस प्रकार सत्ता का वास्तविक स्त्रोत उन व्यक्तियों में निहित होता है जिन पर सत्ता का प्रयोग किया जाना है और इस प्रकार के प्रयोग को स्वीकृति प्रदान करते हैं। **टैननबाम** के अनुसार, किसी व्यक्ति के पास औपचारिक सत्ता हो सकती है लेकिन यह सत्ता उस समय तक व्यर्थ ही होगी, जब तक कि उसके प्रभावशाली प्रयोग के लिए अधनस्थों की स्वीकृति अप्राप्त है। अधीनस्थ, आदेश की सत्ता को उस समय 'स्वीकार' करेगा जब वह उन आदेशों को समझता हो तथा उसके स्वंय के हितों के विरुद्ध नहीं है और वह उन्हें शारीरिक तथा मानसिक रुप से पूरा करने के लिए सक्षम है।

(iii) **क्षमता का सिद्धान्त** : कभी–कभी प्रभावशाली व्यक्तित्व भी अधिकार के स्त्रोत का कार्य करता है। उदाहरण के लिए, ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिन्हें यद्यपि औपचारिक रुप से कुछ भी अधिकार प्राप्त नही होते, किंतु प्रभावी व्यक्तित्व तथा विशिष्ट तकनीकी योग्यता के कारण उन्हें विशेष मान्यता दी जाती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ऐसा ही प्रभावशाली व्यक्तियों में से थे, जिनसे अनेक व्यक्ति आदेश प्राप्त करते थे। अनेक कुशल इंजीनियर तथा विद्वान अर्थशास्त्री भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किए जा सकते है। इसी प्रकार धार्मिक संस्थाओं के प्रबन्धकों के अधिकार प्रायः समाज के मूलभूत आदर्शों तथा व्यक्तियों के आचरणों द्वारा निर्धारित होते हैं एवं उनमें परिवर्तन होने पर प्रबन्धकों के अधिकारों में भी परिवर्तन हो जाता है। इस विचारधारा के अनुयायी उच्च अधिकारी अपने क्षेत्र में स्वीकृति, योग्यता व निपुणता को उसके अधिकार और सत्ता का स्त्रोत मानते हैं। उदाहरण के लिए, औद्योगिक संगठन में एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक से इसलिए सलाह ली जाती है क्योंकि वह संस्था में लगे कर्मचारियों के मनोविज्ञान के बारे में एक साधारण प्रबंधक से कहीं अधिक जानता है और इसलिए कर्मचारी प्रबंधक को कार्य करने एवं अच्छा वातावरण तैयार करने, उनके लिए सही

प्रेरणात्मक पारिश्रामिक नीति तय करने में, तथा औद्योगिक संबंधों को अधिक मधुर बनाने की दशा में कहीं अधिक अच्छा परामर्श दे सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 अधिकार शब्द का क्या अर्थ है?
प्र.2 किसी कर्मचारी को अधिकार कैसे प्राप्त हो सकते हैं?
प्र.3 क्षमता एवं अधिकार का क्या संबंध है?

5.2 उत्तरदायित्व

प्रबंध साहित्य के क्षेत्र में उत्तरदायित्व शब्द बहुत भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि विभिन्न प्रबंधकों द्वारा इसे अलग–अलग अर्थों में प्रयोग किया गया है। उत्तरदायित्व शब्द को कर्तव्य, कार्य तथा अधिकार के रुप में प्रयोग किया जाता है। कर्तव्य या कार्य के रुप में इसकी एक परिभाषा **मोरिस** हर्ले ने निम्न प्रकार दी है –

''उत्तरदायित्व वह कर्तव्य है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति अपने स्थिति या कार्य के कारण से बाध्य है। कुछ उत्तरदायित्वों में उस व्यक्ति के निर्देश का पालन गर्भित होता है जो कि भारार्पण करते हैं।'' कुछ व्यक्ति उत्तरदायित्व शब्द को एक आबंधन या दायित्व के रुप में परिभाषित करते है। इस संबंध में निम्नलिखित परिभाषाएं महत्वपूर्ण हैं –

- **जार्ज आर टेरी** के अनुसार, **''**उत्तरदायित्व एक ऐसा आबंधन या दायित्व है, जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति सौपे गए कर्तव्यों को अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता से सम्पन्न करता है।''
- **कुण्टज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, ''उत्तरदायित्वों को एक अधीनस्थ कर्मचारी के ऐसे दायित्व के रुप में परिभाषित किया गया है जिसको कोई कार्य सौपा गया है और वह उसे पूरा करता है।''
- **लुइस ए. एलन** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व मानसिक तथा शारीरिक क्रियाऐं होती है जिन्हें किसी कार्य के करने अथवा कर्तव्य का पालन करने के लिए किया जाना चाहिए।''
- **आर.सी.डेविस** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व का आशय अपनी सक्षमता व अधिकारी के निर्देश के अनुसार कार्य करने की सहमति देने से है।''
- **एक.ई. हर्ले** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व वह कर्तव्य है जिससे व्यक्ति अपनी परिस्थिति के कारण बंधा होता है।

टूल बाक्स – 2

सतत उत्तरदायित्व

यदि संगठन संरचना के अंतर्गत निरंतर चलते रहने वाले कार्य का भार संभालने हेतु कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के अधीन नियुक्त किया जाता है तो उसका उत्तरदायित्व सतत रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.4 उत्तरदायित्व का क्या अर्थ है?

प्र.5 उत्तरदायित्व की कोई दो परिभाषाएं बताइए।

प्र.6 सतत उत्तरदायित्व क्या है?

5.3 अधिकार व उत्तरदायित्व में अंतर

अधिकार : 'अधिकार का अभिप्राय निर्णय लेने की शक्ति से है।' निर्णय संसाधनों के प्रयोग करने अथवा कोई काम करने या न करने से संबंधित हो सकते हैं।

विशेषताएं

(i) अधिकार को दूसरे व्यक्ति को सौंपा जा सकता है।

(ii) इसका संबंध पद से है (पद के बदलते ही अधिकार बदल जाते हैं)

(iii) इससे निर्णयो का पालन करवाना संभव होता है।

(iv) अधिकारों को प्रबन्धकीय पद की कुंजी माना जाता है। क्योंकि यदि किसी पद के साथ अधिकार नहीं जुड़े हैं तो वह प्रबन्धकीय पद नहीं हो सकता।

उत्तरदायित्व : 'उत्तरदायित्व का अर्थ सौंपे गए काम को ठीक ढंग से पूरा करने की अधीनस्थ की जिम्मेदारी से है।' जब एक अधिकारी अपने अधीनस्थ को कोई काम सौंपता है तो उसे पूरा करना अधीनस्थ का उत्तरदायित्व बन जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्तरदायित्व शब्द काम सौंपने पर ही उत्पन्न होता है। अतः काम सौंपने का ही प्रकार उत्तरदायित्व सौंपना कहा जा सकता है।

विशेषताएं

(i) उत्तरदायित्व को दूसरे व्यक्ति को सौंपा जा सकता है।

(ii) इसका सार कर्त्तव्य का पालन करना है।

(iii) इसकी उत्पत्ति अधिकारी—अधीनस्थ संबंधों के कारण होती है।

अधिकार एवं उत्तरदायित्व में अंतर

अंतर का आधार	अधिकार	उत्तरदायित्व
1. अर्थ	निर्णय लेने की शक्ति	दिया गया कार्य जिम्मेदारी से पूर्ण करना
2. दि□ा एवं प्रवाह	अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है।	उत्तरदायित्व का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है।
3. उद्गम	यह संगठन में औपचारिक पद के कारण होता है।	यह अधिकारी—अधीनस्थ संबंध के कारण उत्पन्न होता है।
4. सार	इसका सार निर्णयो का पालन करवाना है।	इसका सार कर्तव्यों का पालन करना है।

- **जवाबदेही अथवा उत्तरदेयताः** 'जवाबदेही का अभिप्राय अधीनस्थ द्वारा कार्य निष्पादन के लिए अधिकारी को जवाब देने से है।' अन्य शब्दों में जब अधिकारी अधीनस्थ को काम अथवा उत्तरदायित्व सौपता है और उसें पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार देता है तो अधीनस्थ कार्य निष्पादन के लिए अधिकारी के समक्ष जवाबदेह होता है।

वि□ोषताएं

(i) जवाबदेही को दूसरे व्यक्ति को नहीं सौंपा जा सकता।

(ii) यह केवल अधिकार सौंपने वाले व्यक्ति के प्रति होती है

(iii) इसका आधार अधिकारी—अधीनस्थ संबंध है।

(iv) यह अधिकार सौपने के कारण उत्पन्न होती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 अधिकार व उत्तरदायित्व में क्या संबंध है?
प्र.8 जवाबदेही से क्या अभिप्राय है?
प्र.9 क्या उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही एक ही प्रक्रिया है?

5.4 प्रबन्ध के विस्तार का अर्थ

विस्तार का शब्दिक अर्थ किसी ढांचे अथवा भवन को सहारा देने वाले दो खंभों के बीच की दूरी से है। भवन को मजबूती प्रदान करने के लिए खंभों की दूरी न तो बहुत ज्यादा होनी चाहिए और न ही बहुत कम। यदि दूरी को ज्यादा रखा जाएगा तो अधिक खंभों की जरुरत पड़ेगी और परिणामतः भवन निर्माण की लागत अधिक प्रदान करने, और लागतों को न्यूनतम रखने के लिए दो खंभों के बीच में आदर्श दूरी का होना जरुरी है।

प्रबंध में 'प्रबंध के विस्तार' का अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिसे प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रित किया जा सके। अर्थात ऐसा संभव नहीं है कि एक प्रबन्धक बड़ी मात्रा में अधीनस्थों का निरीक्षण कर सके। भवन निर्माण में दो खंभों की आदर्श दूरी की बात प्रबंध में भी लागू होती है। यहां आदर्श दूरी का अभिप्राय अधीनस्थों की ऐसी संख्या से है जिससे लागतें भी कम आएं और प्रबन्ध को मजबूती भी प्रदान की जा सके।

प्रबन्ध के विस्तार को नियंत्रण का विस्तार तथा निरीक्षण का विस्तार भी कहा जाता है।

टूल बाक्स – 3
प्रबंध का विस्तार इसका अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिस पर एक प्रबंधक नज़र रख सके। यह संख्या सामान्यतः 5–6 होती है।

प्रबन्ध के विस्तार की परिभाषा

मैक्फॉरलैंड के अनुसार, 'नियंत्रण का विस्तार अधीनस्थों की वह संख्या है जिसका एक अधिकारी निरीक्षण करता है।''

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि नियंत्रण का विस्तार अथवा प्रबन्ध का विस्तार अधीनस्थों की वह संख्या है जिसका एक अधिकारी कुशलतापूर्वक निरीक्षण कर सकता है।

5.4.1 प्रबन्ध के विस्तार की आवयकता

प्रबन्ध के विस्तार का विस्तृत अध्ययन करने से पहले यह जानने की जरुरत है कि ऐसे कौन–से तत्व हैं जिनके कारण प्रबन्धकों की निरीक्षण करने की सीमा होती है। प्रबन्ध की निरीक्षण क्षमता के सीमित हाने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **सीमित भाक्तिः** प्रत्येक प्रबन्धक की मानसिक एवं शारीरिक शक्ति सीमित होती है जिसके कारण वह एक सीमा से अधिक अधीनस्थों का निरीक्षण ठीक प्रकार से नहीं कर सकता।

(ii) **सीमित समयः** एक प्रबन्धक को एक नहीं बल्कि अनेक काम करने होते हैं जिसके कारण उसका समय बंट जाता है। यदि इतने समय में उसे अधिक अधीनस्थों की देख–रेख भी करनी पड़ जाए तो कोई भी काम ठीक प्रकार से नहीं हो सकेगा।

(iii) **सीमित ध्यान भाक्तिः** एक प्रबन्धक एक समय में केवल कुछ ही समस्याओं की ओर ध्यान केन्द्रित कर सकता है। अधीनस्थों की संख्या अनावश्यक रुप से बढ़ जाने के कारण वह उनकी सभी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता।

5.4.2 एक उपयुक्त 'प्रबन्ध का विस्तार' क्या है?

यह स्पष्ट कर लेने के बाद कि प्रबन्धक निश्चित सीमा में ही अधीनस्थों का निरीक्षण कर सकता है, अब प्रश्न उठता है कि यह निश्चित सीमा क्या है? अर्थात एक प्रबन्धक कितने अधीनस्थों का निरीक्षण प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकता है। इस संबंध में विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों में गहरा मतभेद है। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों को दो भागों में बांटा जा सकता है:

(i) **परंपरावादी विचारधारा** : इस विचारधारा के मुख्य समर्थक सर हेमिलटन, उर्विक, अर्नस्ट डेल, जे.एच.हैली तथा वी.ए. ग्रेकुनाज हैं। सर हेमिल्टन के अनुसार, अधीनस्थों की आदर्श संख्या 3 से 6 तक होती हे। उर्विक ने उच्च स्तर पर अधीनस्थों की संख्या 4 तथा निम्न स्तर पर 8 से 12 बताया है। अर्नेस्ट डेल ने उच्च स्तर पर प्रबन्ध के विस्तार को 8 से 9 तक बताया है। जे.एच.हैली ने कहा है कि उच्च स्तर पर अधिनस्थों की संख्या 5 से अधिक नहीं होनी चाहिए और निम्न स्तर पर यह संख्या 7 या 8 होनी चाहिए। वी.ए.ग्रेकुनाज जोकि फ्रांसीसी प्रबन्ध विशेषज्ञ हैं, ने प्रबन्ध के विस्तार को स्पष्ट करने के लिए एक गणितीय सूत्र का आविष्कार किया है जिसका वर्णन निम्न है:

प्रबन्ध के विस्तार के बारे में ग्रेकुनाज का विचारः इनके अनुसार, ''अधीनस्थों की संख्या जैसे–जैसे अंकगणितिय रुप से बढ़ती है, वरिष्ठ एवं अधीनस्थों के मध्य संबंधो की संख्या में लगभग रेखा गणितीय अनुपात में वृद्धि होती है।''

ग्रेकुनाज के अनुसार, प्रबन्धक एवं अधीनस्थों के मध्य तीन प्रकार के संबंध उत्पन्न होते हैं:

(i) प्रत्यक्ष संबंध

(ii) समूह संबंध

(iii) प्रति संबंध

ग्रेकुनाज ने अपने निष्कर्ष में कहा है कि इन संबंधो की संख्या को ध्यान में रखकर ही प्रबन्ध के विस्तार को निश्चित करना चाहिए। ग्रेकुनाज की इस विचारधारा को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है:

यदि "M' प्रबन्धक है और S_1व S_2 दो अधिनस्थ हैं तो ऊपर बताए गए तीनों प्रकार के संबंध इस प्रकार होंगे:

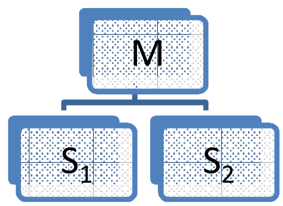

चित्र – 5.1 ग्रेकुनाज – प्रबन्धक एवं अधीनस्थों के मध्य संबंध

(i)	प्रत्यक्ष संबंध	M का S_1 से M का S_2से	=2
(ii)	समूह संबंध	M का S_1 से जबकि S_2 भी साथ है M का S_2 से जबकि S_1 भी साथ है	=2
(iii)	प्रति संबंध	S_1 का S_2 से S_2 का S_1 से	=2
		कुल संख्या	=6

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि एक प्रबंधक के साथ दो अधीनस्थ हैं तो उनके मध्य संबंधों की संख्या 6 होगी। संबंधों की संख्या ज्ञात करने के लिए ग्रेकुनाज का सूत्र इस प्रकार है।

संबंधों की संख्या

उपरोक्त सूत्र के आधार पर अधीनस्थों की विभिन्न संख्याओं से उत्पन्न संबंधो को अग्रलिखित तालिका में दिखाया गया है:

अधीनस्थों की संख्या	संबंधो की संख्या
1	1
2	6
3	18
4	44
5	100

6	222
7	4910
8	1080
9	2376
10	5210
11	11374
12	24708

ग्रेकुनाज के मतानुसार, एक प्रबन्धक 222 संबंधों अर्थात 6 अधीनस्थों का निरीक्षण प्रभावपूर्णा ढंग से कर सकता है। उन्होंने कहा कि उच्च स्तर पर 5 से 6 और निम्न स्तर पर 20 अधीनस्थों की एक आदर्श संख्या है।

(ख) **आधुनिक विचारधारा**: आधुनिक प्रबन्ध विशेषज्ञ परंपरावादी विचारधारा से सहमत नहीं है। ग्रेकुनाज के विचार का विरोध करते हुए कहा गया है कि इसके द्वारा किए गए सभी संबंध प्रतिदिन उत्पन्न नहीं होते और कुछ तो ऐसे हैं जो कभी भी उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार संबंधो की संख्या को अनावश्यक रुप से बढ़ाया गया है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार प्रबन्धक की क्षमता निश्चित न होकर उसकी अपनी क्षमता पर निर्भर करती है। हो सकता है कि एक प्रबन्धक किसी विशेष परिस्थिति में अधिक लोगों का कुशलतापूर्वक निरीक्षण कर ले, जबकि दूसरा प्रबन्धक वैसी ही परिस्थितियों में कम लोगों का कुशलतापूर्वक निरीक्षण न कर सके। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि प्रबन्धक के व्यक्तिगत गुण व अनेक अन्य तत्व प्रबन्ध के विस्तार का निर्धारण करते हैं। प्रबन्ध के विस्तार का निर्धारण करने वाले तत्वों का वर्णन निम्नलिखित है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 प्रबन्ध का विस्तार क्या है?
प्र.11 विस्तार की आधुनिक विचारधारा क्या है?
प्र.12 प्रबन्ध के विस्तार के बारे में ग्रेकुनाज का क्या योगदान है?

5.4.3 प्रबन्ध के विस्तार को प्रभावित करने वाल तत्व

प्रबन्ध का विस्तार अर्थात एक प्रबन्ध के अधीनस्थों की संख्या पर निम्नलिखित तत्वों का प्रभाव पड़ता है:

(i) **कार्यों की जटिलता** : यदि कार्य जटिल प्रकृति का है तो कम अधिनस्थों का ही निरीक्षण किया जा सकता है। क्योंकि जटिल कार्य होने के कारण अधीनस्थ बार–बार प्रबन्धक से मिलने जाएगा और उनकी समस्याओं को सुलझाने में समय भी अधिक लगेगा। इसके विपरीत, यदि कार्य समान है तो समास्याएं कम उत्पन्न होंगी और एक प्रबन्धक अपेक्षाकृत अधिक अधिनस्थों का ध्यान रख सकेगा अर्थात 'प्रबन्ध का विस्तार' अधिक होगा।

(ii) **प्रबन्ध की योग्यता** : प्रबन्ध का विस्तार बहुत कुछ प्रबन्धक के ज्ञान, शक्ति, अनुभव तथा रुचि पर निर्भर करता है। एक अधिक योग्य प्रबन्धक अपेक्षाकृत अधिक अधिनस्थों पर नियंत्रण कर सकता है। फलस्वरुप प्रबन्ध का विस्तार बढ़ जाता है।

(iii) **अधीनस्थों की योग्यता** : यदि अधिनस्थों में इतनी योग्यता है कि वे सौंपे गए काम को आसानी से कर सकते हैं तो प्रबन्धकों को उन पर अधिक ध्यान नहीं करना पड़ेगा और परिणास्वरुप एक ही समय पर अधिक अधीनस्थों का निरीक्षण संभव होता है। इसके विपरीत, यदि अधिनस्थ अयोग्य अथवा कमजोर है तो उन पर प्रबन्धकों का अधिक समय लगता है और परिणामतः प्रबन्ध का विस्तार कम हो जाता है।

(iv) **वि□शज्ञो की सेवाओं की उपलब्धता:** यदि प्रबन्धकों अथवा लाईन अधिकारियों की सहायता के लिए स्टाफ अधिकारी उपलब्ध है तो प्रबन्ध का विस्तार अधिक होगा क्योंकि विभिन्न जटिल समस्याओं के बारे में विशेषज्ञों की राय मिलती रहेगी और समस्याओं का निपटारा शीघ्र होता रहेगा।

(v) **भारार्पण की मात्रा** : प्रत्येक वह प्रबन्धक जो निर्णय लेने के अधिक अधिकार अपने पास ही रखता है, वह कम अधिनस्थों की देखभाल कर सकता है। इसके विपरीत, प्रत्येक वह प्रबन्धक जो निर्णय लेने के अधिक अधिकार अधिनस्थों को सौंप देता है, अधिक अधीनस्थों की देखभाल कर सकता है और प्रबन्ध का विस्तार अधिक होता है।

(vi) **अधिकारों एवं दायित्वों की स्पश्टता** : यदि संगठन में कार्यरत सभी कर्मचारियों के अधिकार एवं दायित्वों की स्पष्ट व्याख्या की जाए तो प्रबन्ध विस्तार अधिक होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को पहले से ही पता होता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। इस तरह वे अधिकारियों का अधिक समय खराब नहीं करते।

(vii) **संदे□वाहन प्रणाली** : आधुनिक संदेशवाहन प्रणाली का प्रयोग किए जाने पर प्रबन्धक एक ही समय पर अनेक अधीनस्थों को निर्देश दे सकता है जिससे प्रबन्ध का विस्तार बढ़ता है।

(viii) **स्थाई योजनाओं का प्रयोग** : स्थाई योजनाओं, नीतियों, नियमों एवं कार्यविधियों के प्रयोग के किए जाने पर कार्यभार में कमी आती है। इसके अंतर्गत एक जैसी सभी समस्याओं के लिए पहले से ही समाधान बता दिए जाते हैं जिसके कारण अधीनस्थों को बार–बार प्रबन्धकों के पास नहीं जाना पड़ता। परिणामतः प्रबन्ध का विस्तार अधिक होगा।

(ix) **भौगोलिक स्थिति** : प्रबन्ध के विस्तार पर अधीनस्थों की भौगेलिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक कार्यालय प्रबंधक तथा उसके 20 अधीनस्थ एक ही कमरे में बैठे हैं तो वह उन पर ठीक से नियंत्रण कर सकता है। लेकिन यदि एक विक्रय प्रबंधक के साथ 20 सेल्ज़मैन काम करते हैं और सभी के कार्यालय अलग – अलग शहरों में स्थित हैं तो उन पर नियंत्रण कर पाना मुश्किल है। परिणामतः प्रबंध का विस्तार कम होगा।

(x) **आर्थिक बंधन** : जैसा कि प्रबंध का विस्तार जितना कम होगा उतने ही अधिक प्रंबंधकों की नियुक्ति करनी पड़ेगी और इस प्रकार संस्था पर प्रबंधकीय खर्चों का भार बढ़ेगा। इसके विपरीत, यदि प्रबंध का विस्तार बढ़ा दिया जाता है तो कम प्रबंधकों की जरुरत होगी और प्रबंधकीय खर्चों मे बचत होगी। अतः जो संस्थाएं वित्तिय रुप से कमजोर है उनमें प्रबंध का विस्तार अधिक रखा जाता है तथा जो संस्थाएं वित्तिय रुप सें सुदृढ़ है उनमें प्रबंध का विस्तार कम रखा जा सकता है।

5.4.4 प्रबन्ध के विस्तार के प्रकार

प्रबंध का विस्तार या तो विस्तृत हो सकता है या संकीर्ण। प्रबन्ध एवं संगठनात्मक ढ़ांचे में गहरा संबंध है। प्रबन्ध के विस्तार के आधार पर संगठनात्मक ढ़ांचे के भी दो प्रकार हो सकते हैं:

प्रबन्ध के विस्तार के प्रकार		**संगठनात्मक ढ़ांचे के प्रकार**
विस्तृत ' प्रबन्ध का विस्तार'	→	चपटा अथवा समतल ढ़ांचा
संकीर्ण ' प्रबन्ध का विस्तार'	→	ऊँचा अथवा लम्बवत ढांचा

(क) **विस्तृत प्रबन्ध का विस्तार** : यदि एक प्रबन्धक एक ही समय में अनेक अधीनस्थों की देख–रेख करता है तो इसे विस्तृत 'नियंत्रण का विस्तार' कहा जाएगा। ऐसी दशा में प्रबन्धकीय स्तर कम होने के कारण संगठन का ढांचा चपटा अथवा समतल होगा। उदाहरण के लिए, एक विक्रय प्रबन्धक के नीचे 12 सेल्ज़मैन काम करते हैं और वह उन सभी की

कुशलता देख–रेख कर रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि संगठन ढांचा समतल है और यहां पर केवल एक ही अधिकारी की जरुरत है। इसे निम्न चित्र में दिखाया गया है:

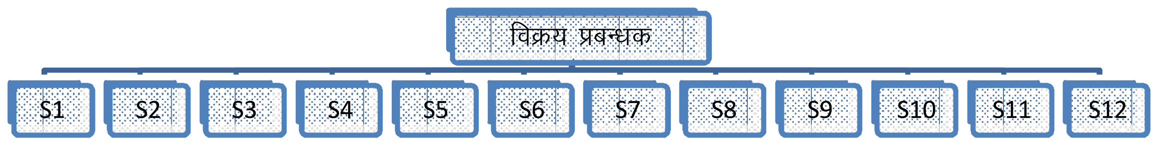

चित्र 5.2: विस्तृत 'प्रबन्ध का विस्तार'

विस्तृत 'प्रबन्ध के विस्तार' के लाभ व दोश :

- **लाभ** :

(1) कम निरीक्षण अधिकारियों की आवश्यकता होने के कारण प्रबन्धकीय लागतें कम आती हैं।

(2) अधिकारी एवं अधीनस्थों में सीधा संपर्क होने के कारण अधिक सहयोग रहता है।

(3) संदेशवाहन व्यवस्था प्रभावपूर्ण रहती है।

- **दोश** :

(1) एक ही समय पर अनेक अधीनस्थों की देख–रेख करने के कारण नियंत्रण कमजोर रहता है।

(2) अधिक कार्यभार होने के कारण निर्णय देरी से लिए जाते हैं।

(3) दैनिक कार्यों अथवा समस्याओं में उलझे रहने के कारण रचनात्मक कार्य नहीं हो पाते।

(ख) **संकीर्ण 'प्रबन्ध का विस्तार'** : यदि एक प्रबन्धक एक समय में कम अधीनस्थों की देख–रेख करता है तो इसे संकीर्ण 'प्रबन्ध का विस्तार' कहेंगे। ऐसी दशा में प्रबन्धकीय स्तर अधिक होने के कारण संगठन का ढांचा ऊँचा अथवा लम्बवत् होगा। उदाहरण के लिए, यदि एक विक्रय प्रबन्धक 12 अधीनस्थों (सेल्ज़मैन) पर नियंत्रण करने में कठिनाई महसूस करता है तो वह अपने नीचे 3 उप–प्रबन्धक नियुक्त कर सकता है तथा प्रत्येक उप–प्रबन्धक को 4–4 अधीनस्थ सौप देता हे। इस प्रकार अब एक अधिकारी के स्थान पर विक्रय प्रबन्धक सहित चार अधिकारियों की जरुरत पड़ेगी। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है:

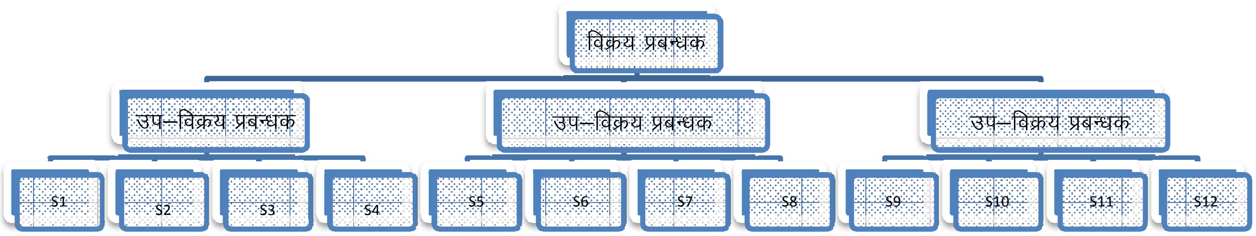

चित्र 5.3: संकीर्ण 'प्रबंध का विस्तार'

संकीर्ण प्रबन्ध के विस्तार के लाभ व दोष निम्नलिखित हैं:

- **लाभ** :

(1) अधीनस्थों की संख्या कम होने के कारण नियंत्रण अधिक प्रभावपूर्ण होता है।

(2) कार्यभार कम होने के कारण निर्णय अच्छे एवं शीघ्र से लिए जाते हैं।

(3) दैनिक समस्याएं कम होने के कारण रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान दिया जा सकता है।

- **दोश** :

(1) अधिक निरीक्षण अधिकारियों की नियुक्ति किए जाने के कारण प्रबंधकीय लागता में वृद्धि होती है।

(2) अधिकारियों एवं कर्मचारियों में सीधा संपर्क न रहने के कारण समन्वय की समस्या उत्पन्न होती है।

(3) अधिक प्रबंधकीय स्तरों के कारण संदेशवाहन प्रभावपूर्ण नहीं रहता।

- **उपयुक्तता** :

जिन संस्थाओं में कार्य की प्रकृति जटिल है और व्यवसाय का आकार बड़ा है वहां संकीर्ण प्रबंध के विस्तार का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसा करने से उनकी समस्याएं भी सुलझ जाएंगी और क्योंकि वे वित्तिय रुप से सुदृढ़ होती हैं इसलिए उन्हें प्रबंधकीय खर्चों का बोझ भी महसूस नहीं होगा। इसके विपरीत, जिन संस्थाओं का आकार छोटा है और कार्य की प्रकृति सरल है उनमें विस्तृत 'प्रबंध के विस्तार' का प्रयोग किया जाना अधिक उपयोगी रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.13	एक उपयुक्त प्रबंध का विस्तार क्या है?
प्र.14	विस्तृत प्रबंध का विस्तार क्या है?
प्र.15	जटिल प्रकृति के व्यवसाय में कौन सा प्रबंध का विस्तार योग्य है?

5.5 विकेंद्रिकरण

विकेंद्रिकरण भारार्पण का ही एक विस्तृत रुप है। जब किसी अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारीयों को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अधिकारों का भारार्पण किया जाता है तो वह विकेंद्रिकरण कहलाता है। विकेंद्रिकरण के अंतर्गत केवल उन अधिकारों को छोड़कर, जिनको उच्च अधिकारियों के लिए सुरक्षित रखना जरुरी है, शेष सारे अधिकार अधीनस्थों को स्थाई रुप से सौंप दिए जाते हैं। विकेंद्रिकरण में निर्णय लेने के केन्द्रों में वृद्धि हो जाती है, क्योंकि मध्य एवं निम्न स्तर के प्रबंधकों का भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किए जाते हैं।

विकेंद्रिकरण की परिभाशाएं

विकेंद्रिकरण की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **हैनरी फेयोल के अनुसार,** ''हर वह कदम जो अधीनस्थों की भूमिका के महत्व को बढ़ावा देता है, विकेंद्रिकरण कहलाता है तथा हर वह कदम जो इसको कम करता है, वह केंद्रिकरण कहलाता है।''

(2) **कीथ डेविस के अनुसार,** ''संगठन की छोटी से छोटी इकाई तक, जहां तक व्यवहारिक हो, अधिकार एवं दायित्व का वितरण विकेंद्रिकरण कहलाता है।''

(3) **लुइस ए. ऐलन के अनुसार, ''** विकेंद्रिकरण का आशय केवल केन्द्रिय बिन्दुओं पर ही प्रयोग किए जाने वाले अधिकारों को छोड़कर शेष सभी अधिकारों को व्यवस्थित रुप से निम्नतम स्तरों को सौंपने से है।'

टूल बाक्स – 4
विकेंद्रिकरण
इसका अभिप्राय अधिकार एवं उत्तरदायित्व को पूरे संगठन में निम्नस्तर पर सौंपकर अधीनस्थों के महत्व को बढ़ाना है।

5.5.1 विकेंद्रिकरण की विशेषताएं

विकेंद्रिकरण की मुख्य विशषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) यह भारार्पण का एक विस्तृत रुप है।

(2) यह अधिनस्थों की भूमिका के महत्व को बढ़ावा देता है।

(3) यह संपूर्ण संगठन में लागू होने वाली प्रक्रिया है।

(4) यह उच्चस्तरीय प्रबन्धकों के कार्यभार में कमी करता है।

(5) इसमें निर्णय उन कर्मचारियों द्वारा लिए जाते हैं जिन्हें इन निर्णयों को लागू करना होता है।

(6) इसमें अधिकारों के साथ–साथ उत्तरदेयता का भी हस्तांतरण हो जाता है।

5.5.2 विकेंद्रिकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्व

एक संगठन के विकेंद्रिकरण की मात्रा निम्नलिखित तत्वों से प्रभावित होती है:

(i) **संगठन का आकार** : संगठन का आकार विकेंद्रिकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाला एक मुख्य घटक है। संगठन के आकार का निर्धारण विक्रय की मात्रा, कर्मचारियों की संख्या, मशीनों की संख्या आदि पर निर्भर करती है। संगठन में इनकी मात्रा जितनी अधिक होगी संगठन का आकार उतना ही अधिक बड़ा होगा और वहां विकेंद्रिकरण की आवश्यकता पड़ेगी।

(ii) **प्रबंधकीय दृष्टिकोण** : विकेंद्रिकरण की मात्रा बहुत कुछ उच्च प्रबंधकों के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। यदि प्रबन्धक तानाशाह प्रकृति के हैं तो वे अधिकतर अधिकार अपने पास ही रखना चाहेंगे और परिणामस्वरुप विकेंद्रिकरण कम होगा। इसके विपरीत, यदि वे प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण रखते हैं तो विकेंद्रिकरण अधिक होगा।

(iii) **संगठन का इतिहास** : यदि संस्था का कारेबार आरंभ से ही बड़े पैमाने पर स्थापित किया जाता है तो अधिक, विकेंद्रिकरण पाया जाएगा। इसके विपरीत, यदि संस्था का इतिहास धीरे–धीरे विकास करने का है तो विकेंद्रिकरण कम पाया जाएगा क्योंकि ऐसी संस्थाओं में उच्च अधिकारियों का हस्तक्षेप पहले से अधिक रहता है और उसकी यह आदत बन जाती है।

(iv) **योग्य अधीनस्थों की उपलब्धता**: यदि संस्था में योग्य एवं प्रशिक्षित अधीनस्थ कर्मचारी उपलब्ध हैं तो विकेंद्रिकरण की मात्रा अधिक होगी क्योंकि उच्च अधिकारी निर्णय लेने के अधिकार अधीनस्थों को सौपने में कोई जोखिम नहीं समझेंगे। इसके विपरीत, यदि योग्य अधिनस्थों की कमी है तो विकेंद्रिकरण कम होगा।

(v) **नियंत्रण की तकनीक**: यदि संगठन में अच्छी नियंत्रण तकनीकें लागू हैं तो उच्च प्रबन्धक विकेंद्रिकरण के इच्छुक होंगे, क्योंकि अच्छी नियंत्रण व्यवस्था के कारण गलत निर्णय लेने के संभावना कम हो जाती है।

(vi) **निर्णयों में जोखिम** : यदि संस्था में लिए जाने वाले अधिकतर निर्णय जोखिमपूर्ण हैं तो उच्च प्रबन्धकों में विकेंद्रिकरण की प्रवृत्ति कम पाई जाएगी। इसके विपरीत, यदि ज्यादातर निर्णय जोखिम रहित हैं अर्थात सस्ते हैं तो विकेंद्रिकरण की मात्रा अधिक होगी।

(vii) **विभिन्नीकर**ण **की सीमा** : एक ऐसी संस्था जिसमें अनेक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और उसके कारोबार का फैलाव अधिक है तो विकेंद्रिकरण अधिक होगा, क्योंकि अलग–अलग वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय हेतु अलग–अलग स्वतंत्र इकाईयों का निर्माण करना होगा। ऐसा करने से निर्णय अच्छे व शीघ्रता से लिए जा सकेंगे।

(viii) **सरकारी हस्तक्षेप** : सरकारी हस्तक्षेप जितना अधिक होगा विकेंद्रिकरण की मात्रा उतनी ही कम होगा, क्योंकि सरकार नीतियों को केन्द्रित स्तर के प्रयास से सरलता से लागू किया जा सकता है।

(ix) **गतिशील वातावरण**: जिस संस्था के कारोबार में अधिक अनिश्चितता (तकनीक, मांग, बाजार आदि में लगातार परिवर्तन होना) पाई जाती है उनमें विकेंद्रिकरण का अधिक महत्व है, क्योंकि बदलती परिस्थितियों का सामना पूरा संगठन एक साथ मिलकर ही कर सकता है और संगठन में एकता तभी होगी जब सभी को निर्णयों के अधिकार दिए गए हों। इसके विपरीत, स्थाई वातावरण में चलने वाले व्यवसायों में विकेंद्रिकरण कम पाया जाता है।

(x) **नीतियों में समरुपता की आवश्यकता**: विकेंद्रिकरण की मात्रा इस बात पर भी निर्भर करती है कि उच्च प्रबन्धकों द्वारा नीतियों की समरुपता को कितना महत्व दिया जाता है। यदि सभी विभागों के लिए एक जैसी नीतियां बनाना जरुरी है तो विकेंद्रिकरण कम होगा।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.16	विकेंद्रिकरण क्या है?
प्र.17	संगठन के आकार का विकेंद्रिकरण पर क्या प्रभाव होता है?
प्र.18	विकेंद्रिकरण की दो विशेषताएं बताइए।

5.5.3 विकेंद्रिकरण के सिद्धान्त अथवा विकेंद्रिकरण को अधिक प्रभावशाली बनाने वाले घटक

संगठन में विकेंद्रिकरण को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करना जरुरी है:–

(i) **अच्छे कार्य विभाजन का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण की सफलता अच्छी भारार्पण **प**द्धति पर निर्भर होती है। यदि संस्था के उच्च अधिकारी भारार्पण कला का सही प्रयोग नहीं करते अथवा इसके आधारभूत सिद्धान्तों की अवहेलना करते हैं तो विकेंद्रिकरण की सारी योजना पूरी तरह विफल हो जाएगी। इसलिए यह जरुरी है कि अधिकार सौपने वाले अधिकारियों को भारार्पण कला की पूरी जानकारी हो। इसके लिए अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(ii) **उपयुक्त संप्रेशण एवं समन्वय का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण की सफलता में सबसे बड़ी समस्या उस समय उत्पन्न होती है जबकि स्वतंत्र निर्णय लेने वाली सभी इकाईयां उच्च प्रबन्ध को अनदेखा करके हर बात में अपनी मनमानी करने लगती हैं। इस परिस्थिति से बचने के लिए उपयुक्त संदेशवाहन एवं समन्वय के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

(iii) **उपयुक्त नियंत्रण का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण का यह अर्थ कदापि नहीं कि उच्च स्तरीय प्रबंन्धक निम्न स्तरीय प्रबंन्धकों को निर्णय लेने के अधिकार सौप दें और स्वयं अलग हो जाएं तथा वे अपनी मनमानी करते रहें। लेकिन उस पर नियंत्रण की जरुरत होती है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधीनस्थों द्वारा लिया गया प्रत्येक निर्णय संगठन के मूल उद्देश्यों के अनुरुप है, उच्च स्तरीय प्रबंन्धकों को अपना नियंत्रण कायम रखना चाहिए। यहां पर नियंत्रण का अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी दैनिक कार्यवाही में ही हस्तक्षेप होने लगे बल्कि समय–समय पर लिए गए कुछ विशेष निर्णयों पर नज़र रखने की जरुरत है। नियंत्रण के उद्देश्य से अधीनस्थों की सफलता मापने का मापदण्ड स्थापित किए जा सकते हैं। अब अधीनस्थ प्रबंन्धकों को यह मालूम होगा कि उन्हें निर्धारित मापदण्डों के अनुसार काम करके

दिखाना है तो वे अपने काम को एक चुनौति के रुप में स्वीकार करते हुए पूरे उत्साह के साथ काम करते हैं। अतः विकेंद्रिकरण में पूर्ण नियंत्रण के स्थान पर उपयुक्त नियंत्रण के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

(iv) **विकेंद्रिकरण कभी भी केंद्रिकरण से अलग नहीं हो सकता है** : इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन एक सूत्र में बंधा है। एक कार्यालय द्वारा ही विभिन्न विभागों की मुख्य योजनाए एवं नीतियां बनाई जाती हैं और इनके कार्यो में तालमेल बिठाया जाता है। एक शोध के अनुसार, 'अमेरिका की जनरल मोटर कम्पनी में 95 प्रतिशत निर्णय निम्न स्तरों पर ही लिए जाते हैं जहां उन्हें लागू करना होता है तथा केवल 5 प्रतिशत निर्णय इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि कम्पनी के अधिकांश निर्णय किसी न किसी रुप में इनसे अवश्य प्रभावित होते हैं। अतः कुछ बहुत महत्वपूर्ण निर्णय केन्द्रिय स्तर पर लिए जाने जरुरी हैं।

(v) **उपयुक्त अभिप्रेरणा का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण में अधीनस्थों एवं उच्च प्रबंन्धकों के मध्य अधिक दूरी होती जाती है। इस दूरी के कारण उन्हें निरंतर अभिप्रेरणा नहीं मिल पाती और परिणामस्वरुप उनके उत्साह में गिरावट आ जाती है। अतः विकेंद्रिकरण को सफल बनाने के लिए उच्च प्रबंन्धकों द्वारा अधीनस्थों की सफलता पर उन्हें उचित पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान किया जाना चाहिए ताकि उनके उत्साह में गिरावट न आने लगे।

(vi) **न्यूनतम हस्तक्षेप का सिद्धान्तः** न्यूनतम हस्तक्षेप विकेंद्रिकरण का आधार होता है अर्थात अधिकार सौपने के बाद अधीनस्थों के कार्यों मे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। बार–बार हस्तक्षेप करने से वे हतोत्साहित होते हैं और उनके आत्म–विकास में कमी आती है। उच्च प्रबन्धकों का हस्तक्षेप कुछ बहुत महत्वपूर्ण निर्णयों के संबंध में ही होना चाहिए।

5.5.4 विकेंद्रिकरण के लाभ अथवा महत्व

विकेंद्रिकरण के महत्व के संबंध में कहा जाता है कि, 'प्रश्न यह नहीं है कि विकेंद्रिकरण किया जाए या नहीं बल्कि यह है कि विकेंद्रिकरण की मात्रा कितनी हो। अर्थात विकेंद्रिकरण के बारे में यह विचार करने की जरुरत है कि इसे लागू किया जाए या नहीं बल्कि ये देखने की जरुरत है कि कितने अधिकारों को अधीनस्थों तक पहुंचाया जाए और कितने उच्च प्रबन्धकों के पास सुरक्षित रखे जाएं। यह बात विशेषकर बड़ी संस्थाओं के लिए बिल्कुल सत्य है। इस बात की सत्यता का आधार है विकेंद्रिकरण के लाभ जो कि निम्नलिखित हैं:

(i) **उच्च अधिकारियों की अत्याधिक कार्यभार से मुक्तिः** विकेंद्रिकरण के अंतर्गत दैनिक प्रबन्धकीय कार्यों को अधीनस्थों को सौंप दिया जाता है। इसके फलस्वरुप उच्च प्रबन्धकों के पास पर्याप्त समय बचता है जिसका प्रयोग वे नियोजन, समन्वय, नीति निर्धारण, नियंत्रण आदि में कर सकते है।

(ii) **विभिन्नीकरण में सुविधा** : इस बात से इंकार नहीं किया जाता कि एक व्यक्ति का नियंत्रण सर्वत्र होता है लेकिन इसकी भी एक सीमा होती है। यहां सीमा को अभिप्राय व्यवसाय के आकार से है। अर्थात जब तक व्यवसाय का आकार छोटा है तो उच्च स्तर पर सभी अधिकारों को केन्द्रित करके व्यवसाय को कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता है। लेकिन जब उसमें उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा अधिक हो जाती है तब केन्द्रिय नियंत्रण से काम नहीं चल सकता क्योंकि अकेला व्यक्ति सभी समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकता। इस परिस्थिति में विकेंद्रिकरण का सहारा लिया जाता है। अतः विकेंद्रिकरण से व्यवसाय का विस्तार संभव होता है।

(iii) **प्रबन्धकीय विकास** : विकेंद्रिकरण का अभिप्राय है – निम्नस्तर के प्रबन्धकों को भी अपने कार्यो के संबंध में निर्णय लेने के अधिकार देना। इस प्रकार निर्णय लेने के अवसर प्राप्त होने से सभी स्तरों के प्रबन्धकों के ज्ञान एवं अनुभव में वृद्धि होती है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह व्यवसाय प्रशिक्षण का काम करती है।

(iv) **कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि** : विकेंद्रिकरण के कारण प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी बढ़ती है। इस संस्था में उनकी पहचान बनती है। जब संस्था में किसी व्यक्ति की पहचान बने अथवा उसका महत्व बढ़े तो उसके मनोबल में वृद्धि होना स्वाभाविक है। मनोबल में वृद्धि होने से वे अपनी इकाई की सफलता के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने से भी नहीं घबराते।

(v) **भीघ्र एवं श्रेस्ठ निर्णय** : सभी प्रबन्धकीय निर्णयों का बोझ कुछ ही व्यक्तियों पर न होकर अनेक व्यक्तियों में बंट जाने के कारण निर्णय शीघ्र लिए जाते हैं। सभी व्यक्तियों को अपनी इकाई अथवा विभाग की समस्याओं का पूरा ज्ञान होता है। और इसी कारण वे अच्छे से अच्छे निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।

(vi) **प्रभावपूर्ण नियंत्रण** : विकेंद्रिकरण में अधीनस्थों का कार्यक्षेत्र सीमित होने के कारण उनकी गलतियों को शीघ्र पकड़ा जा सकता है और उन्हें उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

उत्तरदायीत्व के डर से प्रबन्धक अपनी इकाई को सफलता के बारे में अधिक चिंतित रहते हैं और परिणामस्वरुप वे सभी क्रियाओं पर पूरा नियंत्रण रखते हैं।

(vii) **औद्योगिक संबंधों में सुधार** : एक–दूसरे की समस्याओं को समझना औद्योगिक संबंधों में सुधार की कुंजी होती है। एक–दूसरे की समस्या को तभी समझा जा सकता है जब पीड़ित व्यक्ति और समस्या का समाधान करने वाले व्यक्ति में निकटतम संबंध हो और ऐसा विकेंद्रिकरण द्वारा संभव है। विकेंद्रिकरण में निर्णय लेने के अधिकार निम्नतम स्तर पर सौंपे जाते हैं। निम्नस्तर के प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थों के साथ सीधा संपर्क होता है जिससे वे आसानी से एक–दूसरे की कठिनाइयों को समझ लेते हैं तथा आपसी मेल–जोल से समस्याओं को सुलझा लेते हैं। इस प्रकार विकेंद्रिकरण द्वारा औद्योगिक संबंधों में मधुरता आती है।

(viii) **पहल–क्षमता में वृद्धि** : पर्याप्त अधिकारों के अभाव में अधीनस्थ अपने कार्यक्षेत्र में आने वाली रुकावटों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते और न ही उन्हे समझने का प्रयास करते है। विकेंद्रिकरण के अंतर्गत सभी इकाईयों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होने के कारण इकाई प्रबन्धक अपने क्षेत्र की समस्याओं के प्रति सचेत रहते हैं और उनका अतिशीघ्र हल ढूंढने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास को प्रोत्साहित करने वाली शक्ति अधिकारों की प्राप्ति है।

(ix) **लाभ–केन्द्रों की स्थापना**: विकेंद्रिकरण द्वारा स्थापित विभिन्न इकाईयों को अलग – अलग लाभ–केन्द्रों के रुप में माना जा सकता है। प्रत्येक इकाई का लाभ–हानि खाता अलग तैयार करके उसका व्यक्तिगत लाभ मालूम किया जा सकता है। ऐसी व्यवस्था में सभी विभाग एक दूसरे से अधिक लाभ प्राप्त करने की होड़ में लग जाते हैं और संस्था में उपलब्ध सभी मानवीय एवं भौतिक साधनों का कुशलतम उपयोग होने लगता है।

(x) **संदेशवाहन की समस्या में कमी** : जैसे–जैसे संगठन का विस्तार होता है वैसे–वैसे उच्च प्रबन्धकों को निर्णय लेने के लिए जरुरी सूचनाओं को एकत्रित करने में कठिनाई होती है। विकेंद्रिकरण में निर्णय का अधिकार उन्हीं व्यक्तियों को सौंप दिया जाता है जिनसे सूचनाएं प्राप्त होती है। इस प्रकार जहां सूचनाएं होती हैं वहीं निर्णय लिए जाने से संदेशवाहन की समस्या में कमी आती है।

(xi) **बाजार का विस्तार** : एक संस्था जो विकेंद्रिकरण व्यवस्था को अपनाती है अनेक स्थानों पर अपनी शाखाएं खोलकर अपनी वस्तुओं के बाजार का विस्तार कर सकती हैं। इस व्यवस्था में

शाखा के संबंध में सभी निर्णयों के अधिकार दिए जाते हैं। इन अधिकारों का प्रयोग करके शाखा प्रबन्ध सभी स्थानीय समस्याओं को स्वयं ही सुलझा लेते हैं। इस प्रकार बाजार का विस्तार भी होता है और स्थानीय दशाओं का पूर्ण लाभ भी प्राप्त होता है।

5.5.5 विकेंद्रिकरण के दोश अथवा सीमाएं

विकेंद्रिकरण के मुख्य दोष सीमाएं निम्नलिखित हैं :

(i) **अधीनस्थों की योग्यता पर निर्भता** : विकेंद्रिकरण व्यवस्था में संस्था की सफलता पूरी तरह से अधीनस्थों की योग्यता पर निर्भर करती है। अधीनस्थों को दैनिक निर्णयों के साथ–साथ अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार भी होते हैं। यदि अधीनस्थ अयोग्य सिद्ध हुए तो संस्था को काफी बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

(ii) **सहयोग में कमी** : सभी विभाग एक स्वतंत्र इकाई होने के कारण उनके प्रबन्धक केवल अपने विभाग की ही प्रगति का बात सोचते हैं। कई बार तो दूसरे विभागों को नीचा दिखाने के लिए आपसी प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ जाती है कि एक–दूसरे के साथ सहयोग करने के स्थान पर विरोध करने लगते हैं। यह समस्या उस समय और भी गम्भीर हो जाती है जब दो एक–दूसरे पर निर्भर विभाग आपसी प्रतिस्पर्धा करने लगें। उदाराणार्थ, उत्पादन विभाग विक्रय विभाग की स्थिति खराब करने के लिए वस्तुओं के उत्पादन में जानबूझ कर देरी कर सकता है।

(iii) **निर्णयों में एकरुपता का अभाव** : विकेंद्रिकरण में स्वतंत्र इकाईयां सीमित हो जाने के कारण सभी विभाग अपनी अलग–अलग नीतियां निर्धारित करते हैं। यही कारण है कि कई बार एक जैसी समस्या का समाधान करने के लिए विभिन्न विभागों द्वारा एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत निर्णय भी लिए जा सकते हैं। इस प्रकार एक विभाग के सफल निर्णय का लाभ दूसरा विभाग नहीं उठा सकता।

(iv) **महंगी व्यवस्था**– विकेंद्रिकरण व्यवस्था को अपनाने का साहस केवल बहुत बड़ी संस्थाएं ही कर सकती हैं क्योंकि यह एक महंगी व्यवस्था है। इसके अतंर्गत प्रत्येक विभाग को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है जिसके लिए अनेक उपकरणों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि एक संस्था में एक ही समय पर अनेक वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय किया जा रहा है तो इस व्यवसाय

के अंतर्गत सभी वस्तुओं के अलग–अलग विभाग बनाए जाएंगे और सभी में उत्पादन, विपणन, लेखांकन, कर्मचारी नियुक्ति आदि के कार्य भी अलग – अलग किए जाएंगे जिससे काम की अनावश्यक रुप से दोहराई होती हैं। जहां एक ही लेखांकन विभाग से काम चल सकता था इस व्यवसाय में अनेक लेखांकन विभाग स्थापित करने पड़ते हैं। इस प्रकार खर्चो में अनावश्यक वृद्धि होती है।

(v) **निर्णयन बिंदुओं पर विशेषज्ञों के मार्ग–दर्शन का अभाव** : विकेंद्रिकरण में अधिक कुशल एवं योग्य व्यक्तियों के उच्च प्रबन्ध में सम्मिलित कर लिया जाता है और जहां निर्णय लिए जाते हैं वहां उनकी कमी रहती है। इस प्रकार विशेषज्ञों की राय उपलब्ध न होने के कारण कई बार अच्छे निर्णय नहीं लिए जाते।

(vi) **नियंत्रण का अभाव** : उच्च प्रबन्धक अपने अधिकारों को अन्य लोगों को सौंप कर स्वंय आराम करने लगते हैं। उनकी यह लापरवाही पूरे संगठन में नियंत्रण को ढीला कर देती है और सभी अपनी मनमानी करने लगतें हैं।

- **उपयुक्तता**: विकेंद्रिकरण के लाभ एवं दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इसके लाभ भी है और इसमें जो दोष दिखाई देते हैं वे सभी इसके सिद्धान्तों को ठीक से न समझ पाने के कारण ही उत्पन्न होते है। लेकिन इस बात से भी इंकार नहीं किया सकता कि यह एक महंगी व्यवस्था है। इसलिए यह उन संस्थाओं में अधिक उपयोगी है जहां संगठन बहुत बड़ा व जटिल हो तथा योग्य एवं कुशल प्रबन्धक उपलब्ध हों।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.19	क्या विकेंद्रिकरण छोटे व्यवसाय में जरुरी है?
प्र.20	विकेंद्रिकरण से क्या लाभ हैं?

5.6 केंद्रिकरण का अर्थ

जब निर्णय लेने के अधिकार का प्रयोग अधिकतर उच्चाधिकारियों द्वारा किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था को केंद्रिकरण कहते हैं। इसके अंतर्गत सभी निर्णय उच्च स्तरीय प्रंबन्धकों द्वारा लिए जाते हैं और मध्यस्तरीय प्रबन्धकों का काम केवल उन निर्णयों की व्याख्या करना एवं उन्हें लागू करना होता है। जहां एक ओर, विकेंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकारों को संबंधित अधीनस्थों को सौंप

दिया जाता है वहीं दूसरी ओर, केंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकार केन्द्रिय बिंदु पर ही रोक लिए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि दोनों व्यवस्थाएं एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत है।

टूल बाक्स – 5
केन्द्रिकरण इसका अभिप्राय लगभग सभी अधिकारों को उच्च प्रंबन्धकों द्वारा अपने पास ही रखने से है।

5.6.1 केंद्रिकरण की परिभाशाएं

केंद्रिकरण की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैः

(1) **लुईस ए. ऐलन के अनुसार,** "केंद्रिकरण संगठन में अधिकारों को केन्द्रिय बिंदु पर व्यवस्थित एवं नियमित रुप से सुरक्षित रखने को कहते हैं।"

(2) हेनरी फेयोल के अनुसार, "हर वह कदम जो अधीनस्थों की भूमिका के महत्व को बढ़ाता है, विकेंद्रिकरण कहलाता है तथा हर वह कदम जो इसको कम करता है, केंद्रिकरण कहलाता है।"

5.6.2 केंद्रिकरण की विशेताएं

केंद्रिकरण की विशेषताएं निम्नलिखित हैः

(1) निर्णय लेने के लगभग सभी अधिकारों के उच्च स्तर पर सुरक्षित रखना।

(2) अधीनस्थों की भूमिका के महत्व में कमी। अर्थात उनका काम केवल निर्णयों को लागू करना ही रह जाता है।

(3) अधिकार सौपने की प्रक्रिया का न्यूनतम प्रयोग।

(4) कार्य–स्थल एवं निर्णय–स्थल में दूरी।

5.6.3 केंद्रिकरण के लाभ अथवा महत्व

प्रायः वे सभी दोष जो विकेंद्रिकरण में पाए जाते हैं केंद्रिकरण व्यवस्था उन दोषों से मुक्त होती है और यही कारण है कि कुछ संस्थाओं में (प्रायः छोटी संस्थाएं) केंद्रिकरण को ही प्राथमिकता दी जाती है। केंद्रिकरण के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैः

(1) **स्वतंत्र व्यवस्था** : केंद्रिकरण व्यवस्था में अधीनस्थों की भूमिका कम होने के कारण उच्चाधिकारी स्वतंत्र रहते हैं अर्थात उनकी अधीनस्थों पर कोई निर्भरता नहीं रहती। उच्चधिकारी अधीनस्थों द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों की जोखिम के डर से भी मुक्त हो जाते हैं।

(2) **अधिक समन्वय** : संस्था के सभी विभाग एक ही केन्द्रिय कार्यालय द्वारा संचालित होने के कारण उनमें संपूर्ण समन्वय बना रहता है। कोई भी विभाग अन्य विभागों के कार्यो मे रुकावट नहीं बनता।

(3) **निर्णयों में एकरुपता** : सभी निर्णय केंद्रिकरण कार्यालय में लिए जाने के कारण निर्णयों में एकरुपता रहती है। किसी विभाग के लिए, लिए गए किसी सफल निर्णय का प्रयोग अन्य विभागों की समस्या को सुलझाने के लिए आसानी से लागू किया जा सकता है।

(4) **सस्ती व्यवस्था** : केंदियकरण के अंतर्गत सभी विभागों को आत्म–निर्भर बनाने के लिए आवश्यक सुविधाए जुटाने की जरुरत नहीं होती। केवल केन्द्रिय कार्यालय पर ही अधिक ध्यान दिया जाता हैं परिणामतः प्रशासनिक लागतों में कमी आती है।

(5) **वि□शज्ञों की सेवाओं का लाभ** : इस व्यवस्था में विशेषज्ञों की नियुक्ति केन्द्रिय कार्यालय में ही की जाती है। क्योंकि केंद्रिकरण में सभी निर्णय वहीं पर लिए जाते हैं इसलिए विशषज्ञों की सेवा का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

(6) **अधिक नियंत्रण** : प्रायः सभी निर्णय लेने की जिम्मेदारी उच्चाधिकारियों की ही होती है इसलिए वे काम में लापरवाही नहीं कर सकते। उनकी लापरवाही न करने का सीधा प्रभाव नियंत्रण पर पड़ता है।

5.6.4 केंद्रिकरण के दोश एवं सीमाएं

केंद्रिकरण व्यवस्था के अनेक लाभ होते हुए भी इसे दोषारहित नहीं माना जा सकता। क्योंकि इस संस्था को जो लाभ विकेंद्रिकरण की स्थिति में प्राप्त हो सकते हैं वे केंद्रिकरण में नहीं मिल सकते। अर्थात विकेंद्रिकरण के लाभों को ही केंद्रिकरण के दोष अथवा कमियाँ कहा जा सकता है। केंद्रिकरण के मुख्य दोष निम्नलिखित हैंः

(1) **उच्च अधिकारियों पर अत्याधिक कार्यभारः** सभी निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाने के कारण उच्चाधिकारियों के कार्यभार में वृद्धि हो जाती है और परिणामस्वरुप सुदृढ़ निर्णय नही लिए जा सकते।

(2) **विभिन्नीकरण असंभव** : विभिन्नीकरण (अनेक वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय) तथा केंद्रिकरण दोनों ही विपरीत बाते हैं। अर्थात एक ही समय पर दोनों का पाया जाना असंभव है। विभिन्नीकरण से व्यवसाय का विस्तार होता है जिसके लिए अधिकारों को अधीनस्थों में सौंपना जरुरी है। अतः केंद्रिकरण व्यवसाय के विस्तार की इच्छा रखना संभव नहीं है।

(3) **श्रमिक पैदा करने वाली व्यवस्था** : सभी अधिकारों का प्रयोग केवल उच्च स्तर पर ही किए जाने के कारण मध्यस्तरीय प्रबन्धकों का विकास रुक जाता है। उन्हें प्रबन्धकीय निर्णयों से दूर रखे जाने के कारण धीरे–धीरे उनकी योग्यता में कमी आने लगती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि व्यवस्था केवल श्रमिक पैदा करती है प्रबन्धक नहीं।

(4) **कर्मचारियों के मनोबल में कमी :** प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी कम होने के कारण उनके मनोबल में कमी आती है।

(5) **निर्णयों में देरी** : उच्च स्तर पर निर्णयों का बोझ पड़ जाने के कारण प्रायः सभी निर्णय देरी से लिए जाते हैं और निणयों की गुणवता मे भी कमी आ जाती है।

(6) **अप्रभावी नियंत्रण** : केंद्रिकरण से नियंत्रण में वृद्धि एवं कमी दोनो ही होती हैं। उच्च स्तर पर प्रबन्धकों की लापरवाही के कारण नियंत्रण व्यवस्था सुदृढ़ होती है। लेकिन कर्मचारियों के गलत कामों के लिए उनको उत्तरदायी ठहराने में कठिनाई के कारण नियंत्रण अप्रभावी रहता है।

(7) **औद्योगिक झगड़ेः** कार्य–स्थल एवं निर्णय–स्थल में दूरी के कारण अधिकारी अधीनस्थों की समस्याओं को ठीक से नहीं समझ पाते और परिणामतः औद्योगिक झगडे पैदा होते हैं।

(8) **पहल–क्षमता में कमीः** अधिकारों के अभाव में अधीनस्थ अपने कार्य–क्षेत्र में आने वाली रुकावटों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते और न ही उन्हें समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार उनमें पहल–क्षमता की कमी आ जाती है।

(9) **लाभ–केन्द्रों की स्थापना संभव नहींः** केंद्रिकरण में स्वतंत्र इकाईयों की स्थापना न होने के कारण लाभ–केन्द्र स्थापित नहीं हो सकते। अर्थात सभी विभागों का अलग–अलग लाभ–हानि

ज्ञात नहीं कि जा सकती। यही कारण है कि प्रबन्धकों में आपसी प्रतियोगिता कम हो जाती है और उनकी कार्यक्षमता घटने लगती है।

(10) **संदेशवाहन की समस्याः** केंद्रिकरण के कारण उच्च प्रबन्धकों को निर्णय लेने के लिए जरुरी सूचनाएं एकत्रित करने में कठिनाई आती है, क्योंकि सूचनाएं निम्न स्तर पर होती हैं और निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाते हैं।

- **उपयुक्तता :**

केंद्रिकरण के लाभ एवं दोषो का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केंद्रिकरण उन संस्थाओं में अधिक उपयोगी हैं जहां व्यवसाय छोटे पैमाने पर हो अथवा प्रबन्धक योग्य हो।

यदि विकेंद्रिकरण एवं केंद्रिकरण को सामूहिक रुप में देखा जाए तो कहा जाएगा कि न तो पूर्ण विकेंद्रिकरण और न ही पूर्ण केंद्रिकरण संभव हैं। अतः संगठन में ऐसी व्यवस्था लागू की जानी चाहिए जिससे दोनों व्यवस्थाओं के लाभ प्राप्त हो सकें। अर्थात सभी महत्वपूर्ण निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाने चाहिएं और दैनिक व कम महत्वपूर्ण निर्णयों को मध्यास्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबन्धकों के लिए छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय स्तर पर समन्वय एवं नियंत्रण की पूरी व्यवस्था की जानी चाहिए।

5.6.5 केंद्रिकरण एवं विकेंद्रिकरण में अंतर

	अंतर का आधार	केंद्रिकरण	विकेंद्रिकरण
1	अधिकार सौंपना	प्रायः सभी अधिकार उच्चस्तरीय प्रबन्धकों के पास ही होते हैं।	लगभग सभी अधिकार मध्यस्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबन्धकों को सौंप दिए जाते हैं।
2	निर्णयो प्रक्रिया	उच्चस्तरीय प्रबन्धकों पर अधिक कार्यभार होने के कारण निर्णयों में देरी होती है।	विभागीय प्रबन्धकों द्वारा निर्णय शीघ्रता से लिए जाते हैं।
3	निर्भरता	केंद्रिकरण में अधिनस्थों पर निर्भरता कम होती है।	इसमे अधिनस्थों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है।
4	निर्णयों में एकरुपता	निर्णयो में एकरुपता रहती है।	निणयों में एकरुपता नहीं रहती।

5	सहयोग	केन्द्रिय नियंत्रण होने के कारण अधिक सहयोग रहता है।	केन्द्रिय नियंत्रण के अभाव में सहयोग में कमी आती है।
6	अधिकारियों का कार्यभार	अधिकारियों का कार्यभार बढ़ता है।	अधिकारियों के कार्यभार में कमी आती है
7	कर्मचारियों का विकास	इसमें कर्मचारियों का विकास रुक जाता है।	इसमें कर्मचारियों का पूर्ण विकास संभव होता है।
8	औद्योगिक झगड़े	औ़द्योगिक झगड़े बढ़ते हैं।	औद्योगिक झगड़ों मे कमी आती है।
9	उपयुक्तता	यह छोटे व्यवसायों के अधिक उपयोगी हैं।	यह बड़े व्यवसायों के लिए अधिक उपयोगी है।
10	बाजार का विस्तार	इसमें बाजार का विस्तार संभव नहीं है।	इसके द्वारा बाजार का पूर्ण विस्तार किया जा सकता है।

सारांश

किसी संस्था में कोई कार्य करने के लिए कुछ संसाधनों की आवश्यकता होती है। साथ ही जरुरी यह है कि उन संसाधनों को उपयोग करने के अधिकार भी हों। अधिकार का शाब्दिक अर्थ हुआ एक ऐसी शक्ति जिससे संसाधनों को प्रयोग में लाया जा सके। किन्तु यह भी आवश्यक है कि इन बहुमूल्य संसाधनों को बेकार खर्च न किया जाए। इसे उत्तरदायित्व के साथ ही इस्तेमाल किया जाए। प्रबंध में 'प्रबंध के विस्तार' का अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिसे प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रित किया जा सके। अर्थात ऐसा संभव नहीं है कि एक प्रबन्धक बड़ी मात्रा में अधीनस्थों का निरीक्षण कर सके। भवन निर्माण में दो खंभों की आदर्श दूरी की बात प्रबंध में भी लागू होती है। यहां आदर्श दूरी का अभिप्राय अधीनस्थों की ऐसी संख्या से है जिससे लागतें भी कम आएं और प्रबन्ध को मजबूती भी प्रदान की जा सके। जब निर्णय लेने के अधिकार का प्रयोग अधिकतर उच्चाधिकारियों द्वारा किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था को केंद्रिकरण कहते हैं। इसके अंतर्गत सभी निर्णय उच्च स्तरीय प्रंबन्धकों द्वारा लिए जाते हैं और मध्यस्तरीय प्रबन्धकों का काम केवल उन निर्णयों की व्यााख्या करना एवं उन्हें लागू करना होता है। जहां एक ओर, विकेंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकारों को संबंधित अधीनस्थों को सौंप दिया जाता है वहीं दूसरी ओर, केंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकार केन्द्रिय बिंदु पर ही रोक लिए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि दोनों व्यवस्थाएं एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 प्रबंध के विस्तार से आप क्या समझते हैं?

प्र.2 उन घटकों का वर्णन कीजिए जिन पर 'प्रबंध का विस्तार' निर्भर करता है।

प्र.3 प्रबंध के विस्तार से आप क्या समझते हैं? एक संगठन के विस्तार का निधार्रण कैसे किया जाता है?

प्र.4 'प्रबंध के विस्तार' का परिभाषित कीजिए। ग्रेकुनाज के नियंत्रण के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

प्र.5 नियंत्रण के विस्तार से आप क्या समझते हैं? संकीर्ण एवं विस्तृत नियंत्रण के विस्तार की व्याख्या करो।

प्र.6 निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिएः

(i) नियंत्रण का विस्तार

(ii) प्रबंध का विस्तार

(iii) प्रबंध के विस्तार की आवश्यकता

(iv) ग्रेकुनाज का नियंत्रण के विस्तार का सिद्धान्त।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 केंद्रिकरण का अर्थ क्या है?

प्र.2 विकेंद्रिकरण के लाभ व दोष का वर्णन कीजिए।

प्र.3 केंद्रिकरण तथा विकेंद्रिकरण की परिभाषा दीजिए तथा इन दोनों में अंतर बताइए।

प्र.4 'विकेंद्रिकरण संगठन अच्छा माना जाता है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण दीजिए।

प्र.5 प्रबंध के विस्तार की चार विशेषताएं बताइए।

प्र.6 ग्रेकुनाज का नियंत्रण के विस्तार का सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?

खण्ड – 2

इकाई – 4 अधिकारों का प्रत्यायोजन

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

6.0 प्रस्तावना

6.1 प्रत्यायोजन की परिभाषाएं

6.2 प्रत्यायोजन की विशेषताएं

6.3 प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व

6.4 अधिकारों के प्रत्यायोजन की प्रक्रिया

6.5 प्रत्यायोजन के प्रकार

सरांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्दे□य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- प्रत्यायोजन का अर्थ
- प्रत्यायोजन की विशेषताएं
- अधिकारों के प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व
- अधिकारों के प्रत्यायोजन की प्रक्रिया
- प्रत्यायोजन के प्रकार

6.0 प्रस्तावना

सरल शब्दों में प्रत्यायोजन का एक आशय कार्य–भार सौंप देने से है। कार्य–भार सौंप देना एक संगठन की ही महत्वपूर्ण आवश्यकता है क्योंकि संगठन में जैसे–जैसे वृद्धि होती जाती है, कार्य बढ़ता चला जाता है, परिणामस्वरुप कर्मचारियों की संख्या भी बढ़ानी पड़ती है, क्योंकि संस्था के संपूर्ण प्रबंध संचालक का कार्य कोई भी एक व्यक्ति नहीं कर सकता। यदि संगठन में अधीनस्थ नहीं होंगे तो संगठन का अस्तित्व ही नही होगा। वर्तमान बड़े पैमाने के युग में भारार्पण संगठन को

कार्य–भार उसकी क्षमता से अधिक प्रभावित होता है तो वह अन्य व्यक्तियों को अपना प्राप्त कार्य–भार सौंप देता है और स्वंय उसकी देखभाल करता है और इसी प्रकार की प्रक्रिया उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर चलती रहती है।

6.1 प्रत्यायोजन का अर्थ एवं परिभाशा

प्रत्यायोजन की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

- **एफ.जी.मुरे** के अनुसार, ''अधिकार अंतरण से आशय अन्य लोगों को कार्य सौंपने तथा उसे करने के लिए अधिकार प्रदान करना है।''
- **लुईस.ए.ऐलन** के अनुसार, ''अधिकार अंतरण प्रबंध की शक्ति है। यह एक प्रक्रिया है जिसे अपनाकर प्रबन्धक अपने कार्यों का विभाजन करता है, जिससे वह संपूर्ण कार्य के उस भाग का निष्पादन करे जिसे केवल वह स्वयं ही संगठन में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण प्रभावशाली ढंग से कर सकता है और इस प्रकार वह शेष कार्य की पूर्ती के लिए अन्य व्यक्तियों की सहायता प्राप्त करता है।''
- **मैक्फरलैंड** के अनुसार, ''भारार्पण संगठन प्रक्रिया का वह भाग है जिसके द्वारा अधिकारी, प्रशासक अथवा प्रबन्धक अन्य व्यक्तियों के लिए कंपनी के कार्यों को पूरा करने में भाग लेने को संभव बनाता है। उनके ही अनुसार, ''इसमें कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों और अधिकार के अभिहस्तांकन की प्रक्रिया भी सम्मिलित है, जिनसे वह अपने कार्य में सहायता की आशा करता है।''
- **प्रो. थियो हैमेन** के अनुसार, ''अधिकार के भारार्पण का आशय है प्रबन्ध प्रकिया के चार तत्वों में से प्रत्येक का एक अंश दूसरों को हस्तांरित करना।''
- **ई.एफ.एल. ब्रेच** के अनुसार, ''अधिकार का प्रत्यायोजन तब होता है जब पर्यवेक्षक किसी निम्न कर्मचारी को अधिकार देता है।''

टूल बाक्स – 1 **अधिकार का प्रत्यायोजन**
एफ.जी.मुरे के अनुसार, ''अधिकार अंतरण से आशय अन्य लोगों को कार्य सौंपने तथा उसे करने के लिए अधिकार प्रदान करना है।''

6.2 प्रत्यायोजन की विशेषताएं

उपरोक्त परिभााषाओं के आधार पर भारार्पण को सरल रुप में निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता हैः–

भारार्पण से आशय सहायकों तथा अधीनस्थ कर्मचारियों को निश्चित सीमा के अन्तर्गत कार्य करने हेतु अधिकार प्रदान करने से है जिसके अंतर्गत उन्हें परिणाम के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।'' भारार्पण की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

(i) भारार्पण का आशय होता है एक प्रबन्धक द्वारा स्वतंत्र रुप से अधिकारों का प्रयोग करना। इस संबंध में उच्च अधिकारी कुछ सीमाएं भी लगा सकता है। इन सीमाओं के अंतर्गत संस्था की नितियों, नियमों तथा कार्यविधियों को ध्यान में रखकर ही कार्य किया जाना चाहिए।

(ii) भारार्पण का आशय यह नहीं होता कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को जो कुछ अधिकार सौंपे गए हैं उन्हें आवश्यकता पड़ने पर कम किया जा सकता है, बढ़ाया जा सकता है या वापिस लिया जा सकता है।

(iii) जो अधिकार सौंपे गए है उन्हें आवश्यकता पड़ने पर कम किया जा सकता है, बढाया जा सकता है या वापिस किया जा सकता है।

(iv) एक प्रबन्धक ऐसे अधिकारों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को नहीं सौंप सकता, जो उसे स्वयं ही प्राप्त न हों।

(v) अधिकारों के भारार्पण में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रायः सामान्य प्रकृति के कार्य ही अधीनस्थ कर्मचारियों को सौंपे जाएं।

(vi) अधिकारों का प्रत्यायोजन भारार्पण मौखिक अथवा लिखित भी हो सकते हैं।

(vii) भारार्पण एक कला है इसलिए इसका प्रयोग करते समय कुछ नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(viii) अधिकार सौंपने वाले अधिकारी की उत्तरदेयता निम्न अधिकारी के ऊपर नहीं जाती है। दूसरे शब्दों में उच्च अधिकारी ही अंतिम परिणाम के लिए अंतिम रुप से उत्तरदायी माना जाएगा।

(ix) अधिकार सौंपने की मूल प्रक्रिया में निम्न तीन बातें शामिल करते हैंः–

(अ) काम सौंपना,

(ख) अधिकार प्रदान करना तथा

(ग) उत्तरदायित्व निर्धारित करना।

(x) अधिकारों का भारार्पण ऊपर से नीचे की ओर होता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 अधिकारों का प्रत्यायोजन क्या है?
प्र.2 अधिकारों के प्रत्यायोजन की कोई दो परिभाषाएं बताइए।
प्र.3 भारार्पण की कोई दो विशेषताएँ समझाइए।
प्र.4 क्या सौंपे गए अधिकार वापिस लिए जा सकते हैं?

6.3 प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व

अधिकारों के प्रत्यायोजन की स्थिति निम्न कर्मचारियों के स्वभाव, उच्च अधिकारियों के स्वभाव और संगठन की व्यवस्था से होती है। अधिकारों के अंतरण को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं–

(i) **निम्न कर्मचारियों की सहमति** : प्रत्यायोजन की स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि कर्मचारी उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार हों। अगर कर्मचारी अधिक उत्तरदायित्व उठाने के लिए सहमत नहीं है तो अधिकारी अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं कर सकते। प्रत्यायोजन के लिए कर्मचारियों को अधिक उत्तरदायित्व उठाने के लिए सहमत होना होता है।

(ii) **कार्य का भार** :– प्रत्यायोजन कार्य के भार पर निर्भर करता है। कार्य छोटा होने पर उसे प्रत्यायोजित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब कार्य बढ़ता है तो प्रत्यायोजन भी बढ़ता है।

(iii) **प्रबन्धक का स्वभावः** प्रत्यायोजन का कार्य प्रबन्धक के स्वभाव पर भी निर्भर करता है। प्रबंधक को प्रत्यायोजित करने के लिए तैयार होना चाहिए और कर्मचारी को अपनाने के लिए।

(iv) **कर्मचारीयों में वि[illegible]वासः** प्रत्यायोजन इस बात से निश्चित होता है कि अधिकारियों में कितना विश्वास है। अगर कर्मचारियों को योग्य न समझा जाए तो अंतरण नहीं होगा।

(v) **दबाव बनाए रखने की इच्छा** : यदि अधिकारी दबाव रखने के इच्छुक हैं तो वे अधिकार अंतरण को प्रभावित नहीं करते। वे महत्वपूर्ण कार्य अपने पास रखते हैं तथा छोटे निर्णय प्रत्यायोजित कर देते हैं।

टूल बाक्स – 2 **प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व**
• निम्न कर्मचारियों की सहमति • कार्य का भार • प्रबन्धक का स्वभाव • कर्मचारीयों में विश्वास • दबाव बनाए रखने की इच्छा

6.4 अधिकारों के प्रत्ययोजन की प्रक्रिया

अधिकारों के प्रत्यायोजन की प्रक्रिया निम्नलिखित है।

(i) प्रत्यायोजन योग्य कार्य का चयन करना

(ii) अधिकार प्रदान करना, तथा

(iii) उत्तरदायित्व निर्धारित करना।

(क) **प्रत्यायोजन योग्य कार्य का चयन करना** : किसी उपक्रम में संगठन के सभी कार्य को एक प्रबंधक स्वयं सम्पन्न नहीं कर सकता। अतः निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य का कुछ भाग अपने अधीनस्थों को सौंपना चाहिए। कार्य का विभाजन करने के पश्चात प्रबंधक को यह निश्चित करना होता है कि वह किन विभागों की क्रियाओं को अपने पास रखना चाहता है और किन क्रियाओं का कार्यभार अपने अधीनस्थों को सौंपना चाहता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि किसी उपक्रम का एक प्रधान कार्यालय है तथा कई शाखाएं है, ऐसी स्थिति में वह स्वयं प्रधान कार्यालय का कार्यभार संभाल लेगा तथा शाखाओं का कार्यभार अपने अन्य अधीनस्थों को सौंप देगा। वास्तव में ऐसा वह इसलिए करेगा क्योंकि व्यावहारिक रुप से उसके लिए यह संभव नहीं है कि समस्त कार्य स्वयं ही कर सके। अतः अतिरिक्त कार्य–भार को जिससे वह स्वयं पूरा नहीं कर सकता, उसे दूसरे व्यक्तियों को सौपना होगा ताकि वह विशेष कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। कार्यों को सौंपने के संबंध में दो सामान्य नियमों का पालन किया जाना चाहिए। प्रथम, कार्यों एवं कत्तव्यों का बंटवारा, द्वितीय, अधीनस्थों द्वारा उनको भली प्रकार समझा जाना चाहिए।

(ख) **अधिकार प्रदान करना:** अधीनस्थ कर्मचारियों को कार्य सौंपने के बाद उसे पूरा करने के लिए कुछ आवश्यक अधिकार भी सौंपे जाने चाहिए। जिस प्रकार के अधिकारों की आवश्यकता स्वयं प्रबंधक को उन कार्यों को करने के लिए होती, ठीक वैसे ही अधिकारों को प्रबंधक अधिनस्थों को सौंपेगा ताकि कार्य सम्पन्न किया जा सके। अतः यह स्पष्ट है कि जब तक अधीनस्थों को कार्य—भार पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार प्राप्त नहीं हों, तब तक वह भला कैसे अपने कर्त्तव्य को प्रभावी ढंग से निभा सकेंगे। उदाहरण के लिए जब किसी व्यक्ति को क्रय विभाग का भार सौंपा जाता है तो इस प्रत्यायोजन के साथ—साथ उसको अनेक अधिकार भी प्रदान किए जाते हैं, जैसे — कच्चे माल के क्रय के लिए टैंडर आमंत्रित करना, माल का निरीक्ष्रण करना, श्रेष्ठ माल के लिए आदेश देना, त्रुटिपूर्ण पूर्ती को निरस्त करना आदि।

(ग) **उत्तरदायित्व निर्धारित करना** : अधिकारों का भारार्पण एक ऐसा कार्य है, जिसके माध्यम से हम इच्छित परिणामों की उपलब्धि चाहते हैं, इसलिए अधीनस्थों को कार्य—भार सौंपने तथा उन्हें अधिकार प्रदान किए जाने पर पता लग पाएगा कि अधीनस्थ अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रहे हैं या नहीं। जो भी कार्य—भार सौंपा जाता है उसे नियमित विधि से पूरा करने का दायित्व या जवाबदेही भी सम्मिलित होती है। दायित्व अथवा जवाबदेही को सौंपा नहीं जा सकता, यह तो सदा उच्च अधिकारी के प्रति होती है। इसके अतिरिक्त यह जवाबदेही सदैव एक व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति होती है, नीचे के अधिकारी के प्रति नहीं। उदाहरण के लिए, कंपनी में अंशधारी संचालक मंडल को, संचालक मंडल जनेरल मैंनेजर को जनरल मैनेजर विभागीय मैनेजर को, और विभागीय मैनेजर अपने अधीनस्थों को कार्य—भार सौंपते हैं। ऐसी परिस्थिति में अधीनस्थों का दायित्व या जवाबदेही विभागीय मैनेजर के प्रति, विभागीय मैनेजर का दायित्व या जवाबदेही जनरल मैनेजर के प्रति, जनरल मैनेजर का दायित्व संचालक के प्रति और संचालक मंडल का दायित्व या जवाबदेही कंपनी के अंशधारियों के प्रति होगा।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.5 प्रबन्धक के स्वभाव का प्रत्यायोजन से क्या संबंध है?
प्र.6 क्या प्रत्यायोजन के लिए निम्न कर्मचारियों की सहमित चाहिए?
प्र.7 प्रत्यायोजन के तीन प्रमुख तत्व क्या हैं?

6.5 प्रत्यायोजन के प्रकार

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण को विभिन्न आधारों पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :–

- विशिष्ट तथा सामान्य भारार्पण।
- लिखित तथा मौखिक भारार्पण।
- औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण।
- अधोगामी, ऊर्ध्वगामी एवं समपार्श्विक भारार्पण।
- प्रशासनिक, क्रियात्मक, भौगोलिक एवं तकनीकी भारार्पण।

(क) **वि⊡ाश्ट तथा सामन्य भारार्पण** : सामान्य भारार्पण के अंतर्गत किसी विभाग की समस्त क्रियाओं का कार्यभार किसी एक व्यक्ति को सौंप दिया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी उपक्रम के जनरल मैनेजर को सौंपा गया कार्यभार सामान्य भारार्पण के अंतर्गत आता है। इसके विपरीत जब किसी व्यक्ति को निश्चित कार्य भार सौंप दिया जाता है तो वह विशिष्ट कहलाता है, जैसे–क्रय प्रबंधक आदि को सौंपे गए कार्यभार।

(ख) **लिखित तथा मौखिक भारार्पण** : लिखित रुप में सौंपे गए कार्यभार को 'लिखित भारार्पण' कहते हैं। इसके विपरीत जब मौखिक रुप से ही भारार्पण किया जाता है, तो वह 'मौखिक भारार्पण कहलाता है। मौखिक भारार्पण की तुलना में लिखित भारार्पण अधिक निश्चित होता है।

(ग) **औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण** : सामान्य भारार्पण का स्वरुप औपचारिक होता है। औपचारिक भारार्पण संगठन की अधिकार रेखाओं द्वारा निर्धारित सीमाओं के आधार पर होता है। इन सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है, इसके विपरीत, अनौपचारिक भारार्पण के अंतर्गत अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों की आज्ञा पूरी नहीं, अपितु स्वतः प्रेरणा से कार्य करते हैं। इसका उद्देश्य लालफीताशाही को काटकर समय की बचत करना होता है। सार्वजनिक उद्योगों में लालफीताशाही का बोलबाला होता है, क्योंकि वहां पर केवल औपचारिक विधियों से ही भारर्पण होता है, जबकि निजी उद्योगों में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही विधियों से भारार्पण होता है जिसके कारण लालफीताशाही की आशंका नहीं रहती।

(घ) **अधोगामी उर्ध्वगामी एवं समपार्श्विक भारार्पण** : अधिकांश भारार्पण अधेगामी होते हैं, क्योंकि उच्च अधिकारी अपने से निम्न अधिकारी को कार्य भार सौंपता है। लेकिन कभी—कभी एक अधिकारी के द्वारा अपने से उच्च अधिकारी को भी भारार्पण किया जा सकता है। इस प्रकार का भारार्पण उर्ध्वगामी भारार्पण कहलाता है। कभी—कभी समस्तरीय भारार्पण भी हो सकते हैं इसे समपार्श्विक भारार्पण कहते हैं। अनौपचारिक भारार्पण पार्श्विक भी हो सकता है। जब कार्य संपादन के लिए समस्तरीय अधिकारी की सहायता प्राप्त करना आवश्यक हो तो इस प्रकार के भारार्पण की आवश्यता उत्पन्न होती है। वर्तमान समय में बहुत कम कार्य स्वतंत्र (बिना अन्य व्यक्तियों के सहयोग प्राप्त किए हुए) रुप से पूरे किए जा सकते हैं। अतः इस प्रकार के भारार्पण का महत्व कार्यों की जटिलताओं एवं उनके परंपरावलंबी होने के कारण बढ़ता जा रहा है।

(ङ) **प्रशासनिक, क्रियात्मक, भौगोलिक एवं तकनीकी भारार्पण** : जब केवल प्रशासकीय कार्यों का ही प्रत्यायोजन किया जाता है तो उसे 'प्रशासकीय भारार्पण' कहते हैं। ऐसे प्रत्यायोजन में कोई समस्या पैदा नहीं होती क्योंकि प्रशासकीय कार्य अधिकांशतः दैनिक प्रकृति के होते हैं। जब प्रत्यायोजन क्रियाओं के आधार पर किया जाता है, जैसे— क्रय, विक्रय, विपणन, वित्त, विज्ञापन आदि तो उसे क्रियात्मक या कार्यकारी प्रत्यायोजन कहते हैं। वृहत व्यवसायिक गृहों में, जब कारोबार देशव्यापी होता है, तो प्रबंधकीय अधिकारों व शक्तियों को क्षेत्रीय प्रबंधाधिकारियों को सौंप देते हैं, जैसे—जीवन बीमा निगम के क्षेत्रिय कार्यालय। इस प्रकार का भारार्पण प्रधान कार्यालय को प्रभावशाली प्रबंध संपन्न करने में सहायता प्रदान करता है। जब विविध प्रकार के तकनीकी कार्यों का भारार्पण किया जाता है। (जैसे— मोटर इंजन बनाना, पेंटिंग करना, बॉडी मेंकिग इत्यादि) तो इसे तकनीकी प्रत्यायोजन कहते हैं। यह वास्तव में क्रियात्मक भारर्पण) ही है।

सारांश

प्रबन्धकों को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर वे पुराने कार्य करवाते हैं। इस अधिकार को हम 'सत्ता' या 'अधिकार' कहकरा पुकारते हैं। सत्ता को प्रबंध की कुंजी माना जाता है, जिसके आधार पर प्रत्येक प्रबंधक के कार्य एवं व्यवहार निर्देशित होते हैं। संगठन में 'शक्ति' से आशय दूसरों पर अपना प्रभाव उत्पन्न करके उसकी क्रियाओं व कार्यों को प्रभावित करने एवं

निर्देशित करने की योग्यता है। यह अपनी इच्छानुसार दूसरों से कार्य करवाने की योग्यता है। शक्ति द्वारा ही प्रबंधक संगठन में वांछित परिवर्तन लाने में सक्षम होता है तथा लक्ष्यों को प्राप्त करता है। प्रबंध साहित्य के क्षेत्र में उत्तरदायित्व शब्द बहुत भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि विभिन्न प्रबंधकों द्वारा इसे अलग–अलग अर्थों में प्रयोग किया गया है। उत्तरदायित्व शब्द को कर्तव्य, कार्य या कार्य के रुप में इसकी एक परिभाषा **मोरिस हर्ले** ने निम्नप्रकार दी है – ''उत्तरदायित्व वह कर्तव्य है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति अपने स्थिति या कार्य के कारण से बाध्य है। कुछ उत्तरदायित्व में उस व्यक्ति के निर्देश का पालन गर्भित होता है जो कि भारार्पण करते हैं।'' कुछ व्यक्ति उत्तरदायित्व शब्द को एक आबंधन या दायित्व के रुप में परिभाषित करते हैं। बड़ी संस्थाओं में प्रबंध को कई कार्य करने होते हैं जो प्रबंध अकेले नहीं कर सकता। इसलिए प्रबंधक अपना काम दूसरों के साथ बांटता है ताकि दिया गया काम समय पर पूरा हो सके। अधीनस्थों को काम बांटने को ही अधिकार को प्रत्यायोजन कहते हैं। यह दूसरों को कुछ अधिकार व उत्तरदायित्व देकर उनसे काम करवाने की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसके द्वारा प्रबंधक अपने काम का भार अधीनस्थों को बांट सकता है। विकेन्द्रिकरण भारार्पण का ही एक विकसित रुप है। जब किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अधिकारों का भारार्पण किया जाता है तो वह 'विकेन्द्रिकरण' कहलाता है। प्रशासन की शब्दावली में विकेन्द्रिकरण वह स्थिति है जब प्रशासन से संबंधित अधिकांश निर्णय उन्हीं लोगों द्वारा लिए जाएं जो उन निर्णयों से संबंध रखते हों और उस स्तर पर निर्णय को लागू किया जाएगा। विकेन्द्रिकरण की स्थिति में केवल उन थोड़े–से अधिकारों को छोड़कर, जो केन्द्रिय अधिकारियों के लिए सुरक्षित रखने आवश्यक हैं, शेष सभी अधिकार उन अधिकारियों को व्यवस्थित ढंग से सौप दिए जाते हैं, जो विभिन्न कार्यों को करवाने के लिए उत्तरदायी हों।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 अधिकारों का प्रत्यायोजन क्या है?

प्र.2 अधिकारों के प्रत्यायोजन की कोई दो परिभाषाएं बताइए।

प्र.3 भारार्पण की कोई दो विशेषताऐं समझाइए।

प्र.4 क्या सौंपे गए अधिकार वापिस लिए जा सकते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 प्रत्यायोजन के अर्थ व विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्र.2 प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन करें।

प्र.3 प्रत्यायोजन क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करें।

खण्ड – 2
इकाई – 5 विभागीयकरण, औपचारिक एवं अनौपारिक संगठन

विशय सूची

7.0 प्रस्तावना

7.1 विभागीयकरण का अर्थ

7.2 विभागीयकरण का महत्व

7.3 विभागीयकरण का आधार

7.4 औपचारिक संगठन

7.5 अनौपचारिक संगठन

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- विभागीयकरण का अर्थ व महत्व
- विभागीयकरण के आधार एवं पद्धतियां
- औपचारिक संगठन
- अनौपचारिक संगठन

7.1 विभागीयकरण का अर्थ

संगठन के औपचारिक ढांचे के आयामों अथवा फैलाव को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(i) लम्बावत् आयाम, तथा

(ii) समानांतर आयाम

संगठन के ढ़ांचे का समानान्तर आयाम विशिष्टीकरण पर आधारित हैः अर्थात इसके अंतर्गत एक ही स्तर पर किए जाने वाले कुल कार्यों को, कार्यो मे एकरुपता के आधार पर अनेक क्रिया समूहों में बांट दिया जाता है, ताकि प्रत्येक क्रिया समूह के लिए विशेष योग्यता एवं

निपुणता प्राप्त प्रबंधक नियुक्त किया जा सके। विशिष्टि के कारण न केवल प्रत्येक क्रिया समूह के प्रबंधक के कार्य –भार में कमी आती है बल्कि वे अपने–अपने विशेष कार्य को अधिक कुशलता के साथ कर पाता है। विशिष्टीकरण के आधार पर इस प्रकार काम बांटने की प्रक्रिया को विभागीयकरण कहते हैं। तथा इस प्रकार स्थापित विभिन्न क्रिया समूहों को विभाग कहते हैं। उदाहरणार्थ, एक निर्माणी संस्था में उत्पादन, विपणन, वित्तीय तथा सेवावर्गीय विभाग स्थापित किए जा सकते हैं। ये विभाग स्थापित करने से पहले संस्था के उद्देश्यों के आधार पर क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है और एक जैसी सभी क्रियाओं को एक क्रिया समूह अथवा विभाग को सौंप दिया जाता है, जैसे– विक्रय, बाजार, सर्वेक्षण एवं विज्ञापन को विपणन विभाग को सौंपा जा सकता है।

कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, ''विभागीकरण एक विशाल क्रियात्मक संगठन को छोटी एवं लोचशील प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त करने की प्रक्रिया है।''

टूल बाक्स – 1
विभागीयकरण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्थापित विकास संगठन के इस ढंग से छोटे–छोटे भागों में विभक्त किया जाता है ताकि सभी क्रियाओं का संचालन कुशलतापूर्वक किया जा सके।

7.2 विभागीयकरण की आव⃞यकता एवं महत्व

विभागीयकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। एक उपक्रम की सफलता में इसके योगदान को निम्नलिखित तत्वों से समझा जा सकता है। इन्ही तत्वों से विभागीयकरण की आवश्यकता का संकेत भी मिलता है।

(i) **प्रबंधकीय निपुणताः** विभागीयकरण के कारण प्रबंधक कुछ ही क्रियाओं को बार–बार करते हैं और अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए निर्णय लेते हैं। थोड़े ही समय में वे उस विभाग के विशेषज्ञ बन जाते हैं। विशेषज्ञ बनने पर अधिक व अच्छा काम कम से कम समय में होने लगता है।

(ii) **दायित्वों का निर्धारण :** विभागीयकरण के अंतर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष के दायित्वों का निर्धारण करना संभव हो जाता है। यदि किसी कर्मचारी को एक काम न सौंप कर पूरी संस्था के काम सौंपे जाएं तो उसके दायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है और प्रत्येक कर्मचारी

विपरीत परिणामों की जिम्मेदारी अन्य कर्मचारियों पर डालने का प्रयास करता है। इसके विपरीत, दायित्व निर्धारण हो जाने पर सभी प्रबंधकों को स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। इस प्रकार उनका पूरा ध्यान एक ओर लग जाता है और परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

(iii) **प्रबंध–योग्य इकाइयों की स्थापना** : विभागीयकरण के अंतर्गत संस्था में की जाने वाली सभी क्रियाओं को अनेक इकाइयों अथवा विभागों में बांट दिया जाता है। इन छोटे–छोटे विभागों पर प्रबंध करना आसान होता है। प्रत्येक विभाग के लिए एक अध्यक्ष नियुक्त कर दिया जाता है जिसे उस विशेष विभाग का ज्ञान एवं अनुभव होता है। अपने ज्ञान एवं अनुभव का प्रयोग करके अध्यक्ष सभी कार्य समय पर एवं नियमबद्ध ढंग से पूरे करता है। इस प्रकार संस्था की साख में वृद्धि होती है।

(iv) **वास्तविक कार्य का मापन संभव** : कार्य का विभाजन हो जाने पर प्रत्येक विभाग की कुशलता का माप किया जा सकता है। सभी विभागों का प्रमाप निश्चित कर दिए जाते हैं और वास्तविक कार्य का प्रमापों से मिलान करके विचलनों का पता लगाया जाता है। इस प्रकार विपरीत परिणामों का पता लगने पर, समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है। और संबंधित व्यक्तियों को जिम्मेदार भी ठहराया जा सकता है।

(v) **बजट बनाने की सुविधा** : क्योंकि प्रत्येक विभाग की लागतों की गणना आसानी से की जा सकती है इसलिए विभागीय बजट बनाने में सुविधा रहती है।

(vi) **खर्चों पर नियंत्रण** : यदि पूरी संस्था को एक ही इकाई के रुप में चलाया जाए तो खर्चों पर नियंत्रण रखना कठिन होता हैं जबकि पूरी संस्था को अनेक छोटी–छोटी इकाइयों में बांटकर खर्चों पर नियंत्रण रखना आसान होता है। एक विभाग की क्रियाएं एक ही व्यक्ति की देख–रेख में होती है। और उसे पता होता है कि कौन–कौन से खर्चे जरुरी हैं और कौन–कौन से नहीं। इस प्रकार विभागीकरण से खर्चों पर नियंत्रण संभव होता है।

(7) **वि�ष्टीकरण के लाभ** : विभागीयकरण का आधार विशिष्टीकरण में निहित है। अतः विभागीयकरण द्वारा संस्था को विशिष्टीकरण का लाभ प्राप्त होना स्वाभाविक है। जब एक व्यक्ति एक ही काम को बार–बार करता है तो वह उस क्षेत्र का विशेषज्ञ बन जाता है और फिर वह अधिक व अच्छा काम, कम समय व कम लागत पर करने लगता है। यह विशिष्टीकरण के माध्यम से संस्था को प्राप्त होता है।

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि सभी बड़ी संस्थाओं के लिए विभागीयकरण आवश्यक है इसके माध्यम से संस्था के उद्देश्यो को आसानी से प्राप्त कर लिया जाता है।

टूल बाक्स – 2

विभागीयकरण का महत्व

(i) प्रबंधकीय निपुणता का विकास

(ii) दायित्वों का निर्धारण

(iii) प्रबन्ध–योग्य इकाइयों की स्थापना

(iv) वास्तविक कार्य का मापन संभव

(v) बजट बनाने में सुविधा

(vi) खर्चों पर नियंत्रण

(vii) विशिष्टीकरण के लाभ

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.1 विभागीयकरण का अर्थ स्पष्ट कीजीए।

प्र.2 विभागीयकरण में विशिष्टीकरण का लाभ किस प्रकार निहित है?

प्र.3 क्या सभी बड़ी संस्थाओं के लिए विभागीयकरण आवश्यक है।

7.3 विभागीयकरण के आधार अथवा पद्धतियां

विभागीयकरण के अनेक आधार अथवा पद्धतियां हो सकती हैं। प्रत्येक संस्था अपने उद्देश्यों, आकार आदि को देखते हुए इनमें से उप्युक्त आधार का चुनाव करते हैं। विभागीकरण के मुख्य आधार निम्नलिखित हैः

(क) कार्यों के आधार पर

(ख) वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर

(ग) क्षेत्र के आधार पर

(घ) प्रक्रिया के आधार पर

(ङ) ग्राहकों के आधार पर

(च) मैट्रिक्स के आधार पर

(क) **कार्यों के आधार पर :**

विभागीयकरण की यह सबसे सरल एवं सर्वाधिक प्रचलित पद्धति है। इसके अंतर्गत एक जैसी सभी क्रियाओं को अलग–अलग इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। जैसे– एक निर्माणी संस्था सभी की सभी क्रियाओं को उत्पादन विभाग, विपणन विभाग, वित्तीय विभाग, एवं सेविवर्गीय विभाग मे विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक विभाग में उप–विभागों के अधिकारी विभागाध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होते हैं और विभागाध्यक्ष मुख्य प्रबंधक के प्रति। कार्यों के आधार पर विभागीकरण को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है।

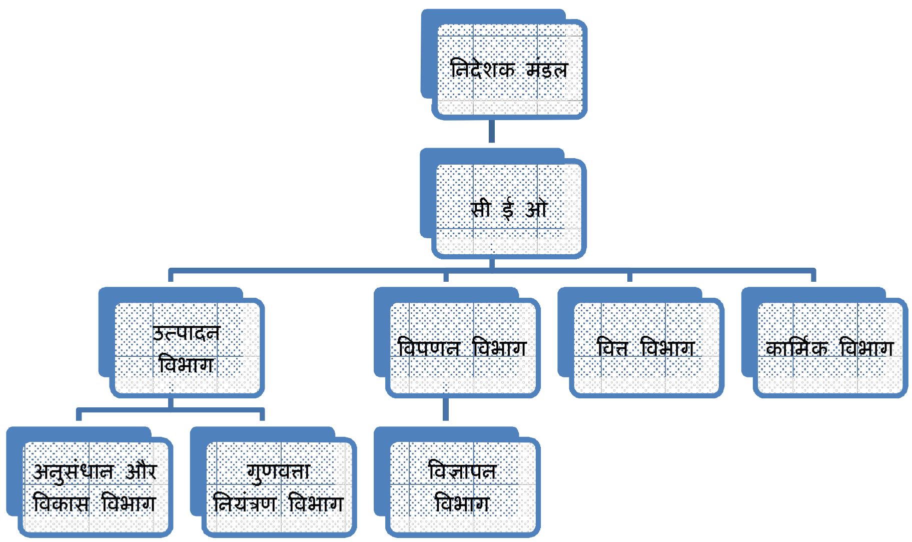

चित्र 7.1 कार्यों के आधार पर विभागीयकरण

कार्यों के आधार पर विभागीकरण को मूल्यांकन करने के लिए इसके गुण एवं दोषों की जानकारी प्राप्त करना जरुरी है, जो कि निम्नलिखित है:–

- **गुण**

(i) यह विशिष्टीकरण के सिद्धांत पर आधारित होता है।

(ii) यह विभागीय स्तर पर समन्वय करता है।

(iii) यह मानवीय एवं अन्य साधनों का प्रभावपूर्ण उपयोग संभव बनाता है।

(iv) यह प्रभावपूर्ण नियंत्रण संभव बनाता है।

(v) यह सरल एवं मितव्ययी है।

(vi) यह लोचपूर्ण होता है अतः इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जा सकते हैं।

(vii) 'आदेश की एकता' के सिद्धांत को भली प्रकार लागू किया जा सकता है।

- **दोश**

(i) कर्मचारियों के एक ही कार्य का विशेषज्ञ होने के कारण पदोन्नति में कठिनाई आती है।

(ii) एक विभाग की कमजोरी का अन्य विभागों पर प्रभाव पड़ता है।

(iii) सभी विभाग मनमानी करते हैं। परिणामतः अन्तर्विभागीय समन्वय में कमी आती है।

(iv) यह पद्धति कर्मचारियों के पूर्ण विकास में बाधा है।

(ख) **वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार परः**

यदि किसी व्यवसाय उपक्रम में अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता है तो आवश्यकतानुसार विभागीयकरण के स्थान पर वस्तुओं के अनुसार विभागीयकरण को प्राथमिकता दी जाती है। क्योंकि ऐसी स्थिति में कार्यनुसार विभागीयकरण में यह डर बना रहेगा, कि कुछ वस्तुओं के उत्पादन एवं विपणन पर अधिक ध्यान दे दिया जाएगा और कुछ पर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जाएगा। परिणामस्वरुप कुछ उत्पाद अधिक बिकेंगे और कुछ बहुत कम। ऐसे परिणामों से बचने के लिए संस्था की सभी क्रियाओं को वस्तुओं के आधार पर अलग–अलग विभागों में बांट दिये जाते हैं। ये सभी कार्य सभी विभागों द्वारा अलग–अलग किए जाते हैं। इस प्रक्रिया को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया हैः

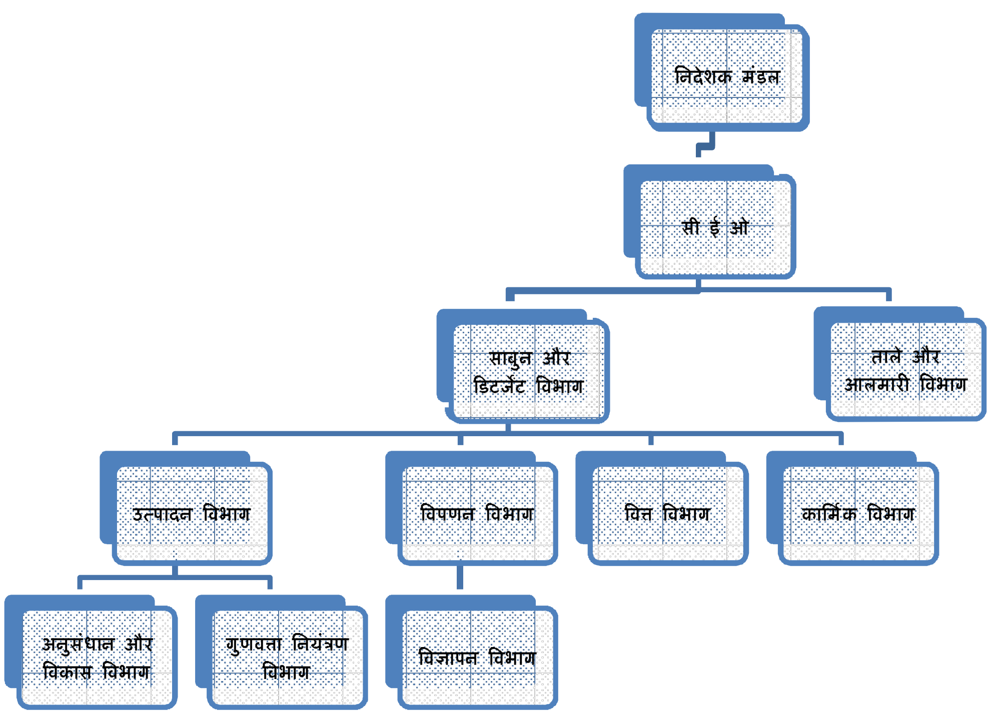

चित्र 7.2 वस्तुओं के आधार पर विभागीकरण

वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर विभागीकरण करने के गुण एवं दोष निम्न है :

- **गुण**

(i) प्रत्येक वस्तु को समान महत्व दिया जाना संभव होता है।

(ii) प्रत्येक वस्तु से होने वाले लाभ–हानि की अलग–अलग जानकारी प्राप्त होती है।

(iii) क्योंकि प्रत्येक नई वस्तु के लिए अलग से विभाग खोला जा सकता है इसलिए संस्था के विस्तार में सरलता आती है।

(iv) सभी विभाग स्वतंत्र इकाई के रुप में होते हैं। अतः एक की कमजोरी से दूसरा विभाग प्रभावित होता है।

(v) इस पद्धति में प्रबंधकों का पूर्ण विकास संभव होता है।

(vi) प्रबंधकों को अपनी योग्यता सिद्ध करने का पूरा अवसर मिलता है।

(vii) सभी वस्तु विभागों के प्रबंधकों द्वारा, दूसरों से अच्छे परिणाम दिखाने की प्रतियोगिता का संस्था को लाभ प्राप्त होता है।

(viii) विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

- **दोश**

(i) सभी वस्तु विभागों में कार्यो के दोहराव से प्रबंधकीय लागतें बढ़तीं हैं।

(ii) साधनों का अपव्यय होता है।

(iii) यह पद्धति केवल बड़ी संस्थाओं के लिए उपयोगी है।

(iv) उच्च स्तर पर नियंत्रण में कठिनाई आती है।

(ग) **क्षेत्र के आधार पर :**

जब किसी व्यवसायिक संस्था के ग्राहक स्थानीय क्षेत्र तक सीमित न होकर एक बड़े क्षेत्र में फैले हों तो क्षेत्र के आधार पर विभागीयकरण किया जाता है। इस तरह विभागीयकरण करने का मुख्य कारण अलग–अलग क्षेत्रों के ग्राहकों की रुचियों, समस्याओं आदि का अलग–अलग होना है। उदारणार्थ, यदि एक संस्था का व्यवसाय पूरे देश में फैला हो तो व्यवसाय का संचालन एक ही स्थान पर करने की अपेक्षा उसे चार क्षेत्रों में बांटा जा सकता है, जैसे–उत्तरी जोन, दक्षिणी जोन, पूर्वी जोन तथा पश्चिमी जोन। प्रत्येक जोन अपने–आप में एक संपूर्ण व्यावसायिक इकाई के रुप में होता है, जिसके लिए अलग से क्षेत्रीय प्रबंधक नियुक्त किया जाता है। क्षेत्रीय प्रबंधक अपने क्षेत्र के ग्राहकों के संपर्क में रहते हैं और

उनकी समस्याओं को भली प्रकार समझते हुए उन्हें आसानी से दूर करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र अपने क्षेत्र के अंतर्गत पुनः कार्यानुसार अथवा वस्तुओं के अनुसार विभागीयकरण किया जा सकता है जैसा कि चित्र में स्पष्ट किया गया है।

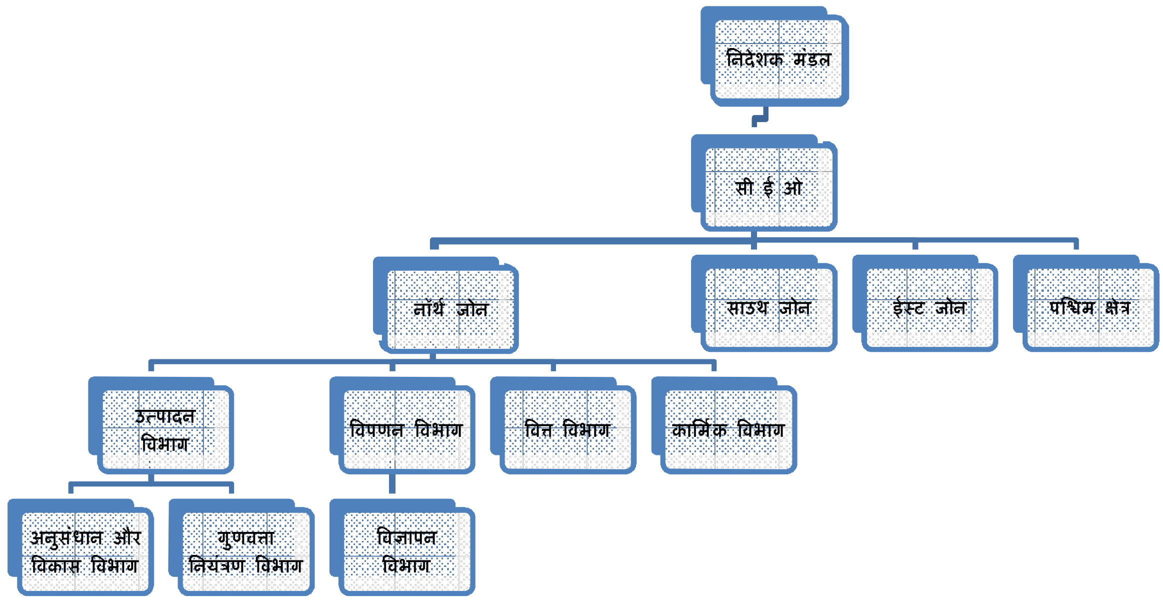

चित्र 7.3 क्षेत्र के आधार पर विभागीयकरण

क्षेत्र के आधार पर विभागीयकरण करने के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं :

- **गुण**

(i) ग्राहकों से सीधा संपर्क होने के कारण उनकी समस्याओं को आसानी से समझा एवं दूर किया जा सकता है।

(ii) स्थानीय प्रतियोगिता का सामना आसानी से किया जा सकता है।

(iii) प्रभावपूर्ण क्षेत्रीय नियंत्रण संभव होता है।

(iv) इस तरह के संगठन को कुछ स्थानीय तत्वों, जैसे – कच्चा माल, श्रमिक, बाजार के लाभ प्राप्त होते हैं।

(v) क्षेत्रीय लाभ–हानि की जानकारी प्राप्त होने पर, अधिक लाभ देने वाले क्षेत्र में अधिक विनियोग संभव होता है।

(vi) क्षेत्रीय प्रबंधकों की अच्छे परिणाम दिखाने की प्रतियोगिता का संस्था को लाभ पहुचता है।

- **दोश**

(i) कुछ ऐसे कार्य जिनको केन्द्रिय स्तर पर मितव्ययी ढंग से किया जाता है। उनको सभी क्षेत्रों में अलग–अलग करने से खर्चे बढ़ते हैं।

(ii) नीतियां बनाने वालों एवं उनको लागू करने वालों में दूरी होने के कारण, नीतियों को प्रभावपूर्ण तरीके से लागू करने में कठिनाई आती है।

(iii) अधिक प्रबंधकीय कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है जिससे प्रबंधकीय खर्चे बढ़ते हैं।

(iv) मुख्य कार्यालय एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में अधिक दूरी होने के कारण नियंत्रण में कठिनाई आती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 क्या वस्तुओं के आधार पर विभाग बांटे जा सकते हैं । कैसे? प्र.5 क्षेत्रों के आधार पर विभागीयकरण की प्रक्रिया उदाहरण से समझाइए। प्र.6 कार्य का विभागीयकरण से क्या संबंध है?

(घ) प्रक्रिया के आधार

विभागीयकरण का यह आधार उन औद्योगिक संस्थाओं में लाभकारी होता है जिनकी उत्पादित वस्तुएं अनेक प्रक्रियाओं से होकर गुजरती हैं। उदाहरणार्थ, एक कपड़ा बनाने वाली संस्था में कताई, बुनाई, रंगाई एवं छपायी तथा पैकिंग विभाग बनाए जा सकते हैं। सभी विभागों में अलग–अलग प्रक्रियाएं पूरी करने के लिए अलग–अलग मशीनों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें विशेष योग्यता वाले व्यक्ति चलाते हैं। प्रक्रिया के आधार पर विभागीकरण को निम्न चित्र में दिखाया गया है।

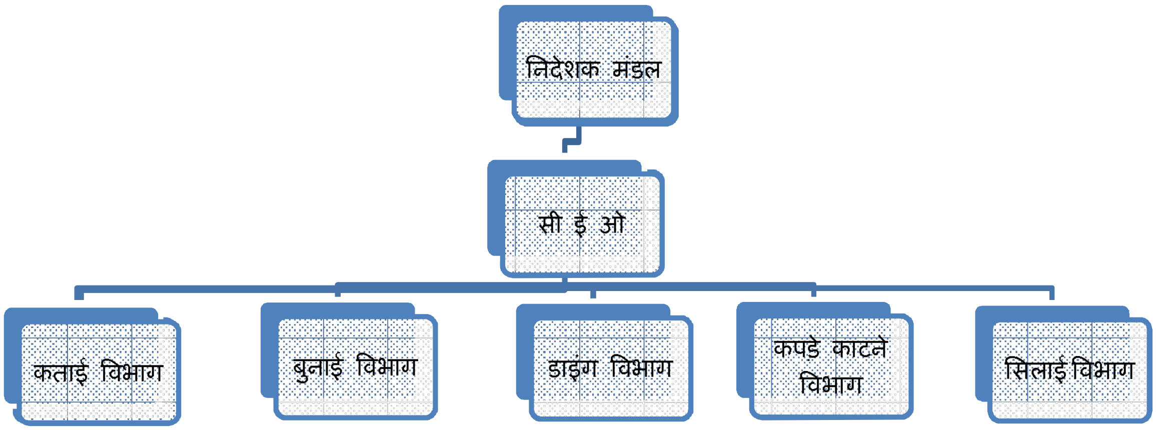

चित्र 7.4 प्रक्रिया के आधार पर विभागीयकरण

प्रक्रिया के आधार पर विभागीयकरण के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं :

- **गुण**

(i) मानवीय शक्ति का प्रभावपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

(ii) विशेषज्ञ कर्मचारियों की नियुक्ति की जा सकती है।

(iii) किसी विभाग में उत्पादित माल की लागत अधिक आने पर उस विभाग को बंद करे, वही माल बाजार से खरीदा जा सकता है।

(iv) किसी विभाग में उत्पादित माल की लागत बहुत आने पर उसका विस्तार करके उससे उत्पादित माल बाजार में बेचकर लाभ कमाया जा सकता है।

- **दोश**

(i) विभागीयकरण की इस पद्धति में सभी विभाग एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। अतः एक विभाग में कार्य बंद होने से अन्य विभाग भी बंद हो जाते हैं।

(ii) एक विभाग द्वारा घटिया किस्म का माल उत्पादित करने से अन्य विभागों द्वारा उत्पादित माल की किस्म भी घटिया हो जाती है।

(ङ) **ग्राहकों के आधार पर**

विभागीयकरण की यह पद्वति उन व्यावसायिक संस्थाओं में प्रयोग की जाती है जहां अनेक प्रकार के ग्राहकों के साथ व्यवहार करना होता है। जैसे – एक व्यावसायिक संस्था थोक व्यापार, फुटकर व्यापार एवं निर्यात व्यापार करती है तो इसमें तीनों प्रकार के ग्राहकों के लिए तीन अलग–अलग विभाग बनाए जा सकते हैं जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

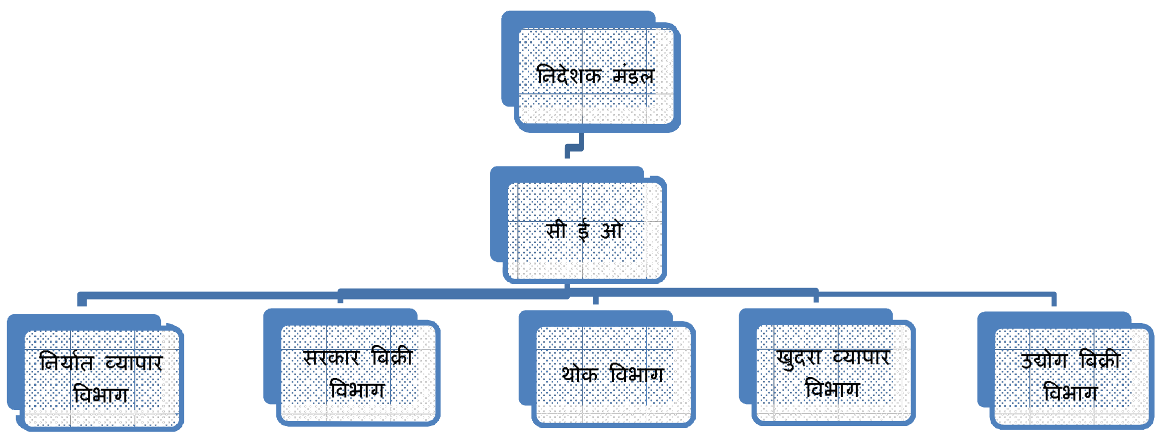

चित्र 7.5 ग्राहकों के आधार पर विभागीयकरण

ग्राहकों के आधार पर विभागीयकरण के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं।

- **गुण**

(i) सभी ग्राहकों को पूरी तरह संतुष्ट किया जा सकता है।

(ii) अलग–अलग प्रकार के ग्राहकों से सीधा संपर्क होने के कारण उनकी समस्याओं का शीघ्र निवारण किया जा सकता है।

- **दोश**

(i) विभागों के आकार में अधिक अंतर होते हुए भी सभी को एक जैसी सुविधाएं (प्रबंधको एवं अन्य कर्मचारियों के रुप में) प्रदान करने से लागतें बढ़ती हैं।

(ii) ग्राहकों के अनेक प्रकार होने के कारण उम्पादित वस्तुओं की संख्या बढ़ जाती है जिससे उत्पादन विभागों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

(iii) समन्वय में कठिनाई आती है।

(च) मैट्रिक्स के आधार पर

विभागीयकरण का यह आधार उन व्यावसायिक संस्थाओं के लिए उपयुक्त है जिसमें किए जाने वाले कार्य जल्दी–जल्दी बदलते रहते हैं, जैस–एक इंजीनियरिंग कम्पनी को प्रतिदिन नई मशीनें बनाने के आदेश प्राप्त होते रहते हैं। इसी प्रकार एक कंस्ट्रक्शन कम्पनी को भवन, सड़कें, पुलों आदि के निर्माण का कार्य मिलता रहता है। ऐसी संस्थाओं में विभागीकरण का कोई एक आधार काम नहीं करता बल्कि एक ही साथ दो या अधिक आधारों का प्रयोग करना पड़ता है। इसीलिए इसे सामूहिक, ग्रिड आदि नामों से भी जाना जाता है।

इसके अंतर्गत प्रायः कार्य के अनुसार एवं वस्तुओं का संयुक्त रुप से प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम, कम्पनी की सभी क्रियाओं को संगठन के स्थाई विभागों को सौंप दिया जाता है। जैसे– क्रय विभाग, निर्माणी विभाग, शोध एवं विकास विभाग आदि। इन सभी विभागों की स्थापना हो जाने पर जैसे ही संस्था को कोई कार्य मिलता है तो वस्तुओं अथवा प्रोजेक्ट के आधार पर विभागीयकरण कर दिया जाता है जैसा कि निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है:

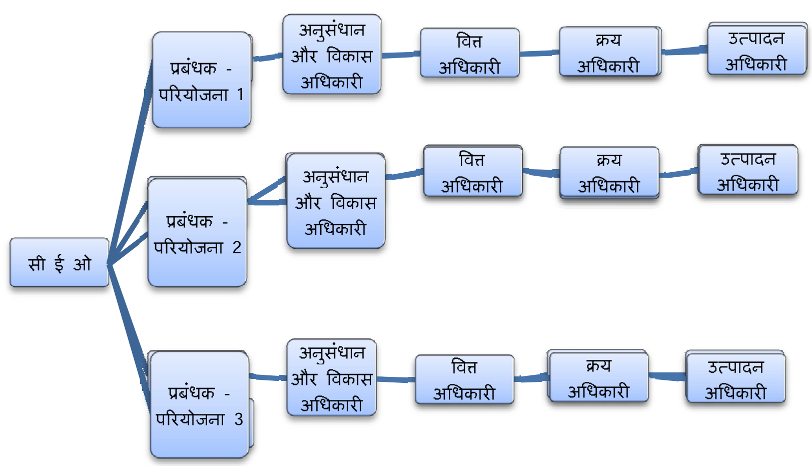

चित्र 7.6 मैट्रिक्स के आधार पर विभागीकरण

जैसे ही कम्पनी को कोई विशेष कार्य मिलता है तो एक प्राजेक्ट प्रबंधक के नेतृत्व में विभिन्न कार्यानुसार विभागों से अधिकारियों को लेकर एक टीम का गठन कर दिया जाता है। जैसे – कम्पनी को एक्स प्रोजेक्ट के मिलने पर इसके एक अलग से प्रबंधक नियुक्त कर दिया जाता है जिसको क्रय अधिकार, निर्माण अधिकारी, वित्त अधिकारी तथा शोध एवं विकास अधिकारी सहयोगी के रुप में दे दिए जाते हैं। प्रोजेक्ट 1 की सारी जिम्मेदारी संबंधित प्रबंधक की रहती है और जैसे ही एक्स प्रोजेक्ट का काम पूरा होगा तो प्रोजेक्ट के आधार पर किया गया यह विभागीयकरण समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार 2 तथा 3 प्रोजेक्टों का कार्य चलेगा। जो अधिकारी प्रोजेक्ट प्रबंधक के सहयोगी के रुप में उपलब्ध कराए जाते हैं वे प्रोजेक्ट का काम पूरा होने पर पुनः अपने पैतृक विभाग में चले जाते है।

प्रोजेक्ट प्रबंधक का उसके टीम के सदस्यों पर अधिकार अस्थाई होता है। जैसा कि चित्र में बिन्दुवार लाईन के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। मुख्य प्रबंधक की ओर से कार्यानुसार बनाए गए विभागों का यह आदेश होता है कि वे प्रोजेक्ट प्रबंधकों को पूरा सहयोग दें। प्रोजेक्ट प्रबंधक सभी कार्यों का विशेषज्ञ होता है और वह एक प्रोजेक्ट से संबंधित सभी गतिविधियों को देखता है। दूसरी ओर, विभागीय प्रबंधक किसी एक विशेष कार्य के ही विशेषज्ञ होते हैं।

मैट्रिक्स के आधार पर विभागीकरण के गुण एवं दोष निम्नलिखित होते हैं :

- **गुण**

(i) **वि□श्ज्ञों की प्रचुर मात्रा** : इस विभागीयकरण में विशेषज्ञ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जैसे कार्यानुसार विभागीयकरण के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष अपने कार्य के विशषज्ञ होते हैं, प्रोजेक्ट प्रबंधक सभी कार्यों के विशषज्ञ होते हैं तथा अधिकारीगण अपने–अपने विशेष कार्य की पूरी जानकारी रखते हैं। इस प्रकार विशेषज्ञों की राय का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है।

(ii) **लोच□ीलता** : संस्था का मुख्य प्रबंधक व्यावसायिक अवसरों के अनुसार इसमें आसानी से परिवर्तन कर सकते हैं। अर्थात अधिक आदेश प्राप्त होने पर कितने ही प्रोजेक्ट प्रबंधक नियुक्त किये जा सकते हैं और आदेश कम होने पर प्रबंधकों को विशेष प्रोजेक्टों से हटाकर संस्था के सामान्य कार्य में लगाया जा सकता है।

(iii) **विस्तार की अधिक संभावनाएं** : मैट्रिक्स पद्धति में संस्था के विस्तार की संभावनाएं बढ़ जाती हैं क्योंकि प्रबंधक प्रत्येक नए प्रोजेक्ट के लिए एक पृथक विभाग स्थापित कर सकते हैं।

(iv) **लागतों में मितव्ययता** : प्रत्येक प्रोजेक्ट पर केवल उतने ही व्यक्ति लगाए जाते हैं जितनी आवश्यकता हो और शेष को व्यवसाय के सामान्य कार्यो में लगा दिया जाता है। इस प्रकार मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करके लागतों में कमी की जाती है।

- **दोश**

(i) **आदे□ा की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन** : इस प्रकार के संगठन में आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया जाता **है**। अधिकारियों को विभागीय प्रबंधकों एवं प्रोजेक्टों प्रबंधकों दोनो से आदेश प्राप्त होते हैं। अधिकारियों को एक से अधिक प्रबंधकों के आदेश का पालन करना होता है जिससे उनकी कार्यकुशलता में कमी आती है।

(ii) **विभागीय प्रबंधकों एवं प्रोजेक्ट प्रबंधकों के मध्य संघर्श** : इन दोनों प्रकार के प्रबंधकों के उद्देश्य एवं प्राथमिकताएं भिन्न होते है। प्रोजेक्ट प्रबंधक यह चाहते हैं कि उन्हें जब जिस सेवा की आवश्यकता हो विभागीय प्रबंधक तुरन्त उपलब्ध करा दें। दूसरी ओर, विभागीय प्रबंधक चाहते हैं कि उनकी समय तालिका के अनुसार ही सारे कार्य किये जाएं और उनकी सेवाओं का नियमित रुप से उपयोग किया जाए।

(iii) **संदे□ावाहक की समस्या** : प्रोजेक्ट टीम के सदस्य अथवा अधिकारी यह नहीं समझ पाते कि वे विभागीय प्रबंधक से बात करें या प्रोजेक्ट प्रबंधक से। इस प्रकार की अस्पष्ट स्थिति में संदेशवाहन की समस्या बनी रहती है।

(iv) **उत्तरदायित्व का अभाव** : असफलता की दशा में प्रोजेक्ट प्रबंधक विभागीय प्रबंधकों को दोषी ठहराते हैं और विभागीय प्रबंधक प्रोजेक्ट प्रबंधकों को।

मैट्रिक्स के आधार पर विभागीयकरण के गुण–दोषों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि यह पद्धति उन बड़े व्यवसायों के लिए उपयुक्त है जो बड़ी मशीनों का निर्माण करते हों या कंस्ट्रक्शन का कार्य करते हों। आजकल अन्य व्यवसायों में भी इस पद्धति को अपनाया जा रहा है।

टूल बाक्स – 3
विभागीयकरण के आधार अथवा पद्धतियां
1. कार्यों के आधार पर 2. वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर 3. क्षेत्र के आधार पर 4. प्रक्रिया के आधार पर 5. ग्राहकों के आधार पर 6. मैट्रिक्स के आधार पर

टूल बाक्स – 4
विभागीयकरण में ध्यान देने योग्य बातें
1. विशिष्टीकरण 2. समन्वय 3. क्रियाओं का महत्व 4. उपलब्ध सुविधाएं 5. मितव्ययता 6. प्रतियोगियों को देखना

औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन

संगठन का ढांचा औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी। अर्थात संगठन में कार्यरत सभी व्यक्तियों के मध्य संबंध दो प्रकार से स्थापित हो सकते हैं, प्रथम, वे जो निश्चित होते हैं और इनको पहले से ही परिभाषित कर दिया जाता है, तथा दूसरे, वे जो अनिश्चित होते हैं और पहले से परिभाषित नहीं होते। यहां हम इनका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

7.4 औपचारिक संगठन

औपचारिक संगठन का अभिप्राय एक ऐसे संगठन से है जिसके अंतर्गत संस्था में कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों, अधिकारों एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट परिभाषित कर दिया जाता है।

चेस्टर के अनुसार, ''जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियाऐं समान उद्देश्य की पूर्ती के लिए जान–बूझकर समन्वित की जाती है, तब उसे औपचारिक संगठन कहते हैं।

- **औपचारिक संगठन के मुख्य लक्षण**

औपचारिक संगठन के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

(i) इसमें परिभाषित **आपसी संबंध होता है** : औपचारिक संगठन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें आपसी संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जाती है तथा सभी को अपने–अपने दायित्व एवं अधिकार पता होते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन किसको रिपोर्ट करेगा।

(ii) **यह नियमों एवं कार्यविधियों पर आधारित होता है:** औपचारिक संगठन में पूर्व – निर्धारित नियमों एवं कार्यविधियों का पालन किया जाना आवश्यक होता है। इनके द्वारा नियोजन में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।

(iii) **यह कार्य–विभाजन पर आधारित होता है:** औपचारिक संगठन का मुख्य आधार कार्य–विभाजन होता है। इसी आधार पर विभिन्न विभागों के प्रयास एक–दूसरे से संबंधित होते हैं।

(iv) **यह जान–बूझकर स्थापित किया जाता है** : यह संस्था के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए जान–बूझकर बनाया जाता है।

(v) **यह अव्यक्तिगत होता है:** इसके अंतर्गत व्यक्तिगत भवनाओं को अनदेखा करके कठोर अनुशासन का पालन करने की बात कही जाती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति को नहीं काम का महत्व होता है।

(vi) **यह अधिक स्थिर होता है:** इसमें व्यक्तियों की आवश्यकाताओं एवं इच्छाओं के अनुसार परिवर्तन नहीं किए जा सकते। अतः यह अधिक स्थिर है।

टूल बाक्स – 5
औपचारिक संगठन इसका अभिप्राय किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए प्रबन्ध द्वारा तैयार किये संगठन ढांचे से है ।

- **औपचारिक संगठन के लाभ**

(i) **उत्तरदेयता निर्धारण में आसानीः** सभी कर्मचारियों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व निश्चित होने के कारण अकुशल कर्मचारियों को शीघ्र पकड़ा जा सकता है और उन्हें उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(ii) **कार्यों का दोहराव नहीं होता :** औपचारिक संगठन में सब कुछ व्यवस्थित ढंग से चलता है और किसी भी कार्य के छूट जाने या कोई कार्य अनावश्यक रुप से एक से अधिक बार होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

(iii) **आदेश की एकता संभव :** अधिकतर श्रृंखला स्थापित होने के कारण आदेश की एकता के सिद्धांत का पालन करना संभव है।

(iv) **लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानीः** औपचारिक संगठन के अंतर्गत समन्वय स्थापित होने, सभी भौतिक एवं मानवीय साधनों का अनुकूलतम उपयोग होने के कारण संस्था के लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

(v) **संगठन में स्थिरता :** सभी व्यक्ति अपने–अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए तथा नियमों का पालन करते हुए कार्य करते हैं। परिणामतः उनमें अच्छे संबंध स्थापित होते हैं और संगठन में स्थिरता आती है।

औपचारिक संगठन की सीमाएं निम्नलिखित हैंः

(i) **काम में देरीः** प्रत्येक कार्य के नियमबद्ध होने के कारण कार्य में अनावश्यक देरी होती है।

(ii) **पहल–क्षमताः** इस संगठन में कर्मचारियों को वैसा ही करना पड़ता है जैसा उनको निर्देश दिया जाता है। और उनको कुछ सोचने को नहीं मिलता। अतः उनकी पहल–क्षमता में कमी आ जाती है।

(iv) **संबंधों का यंत्रीकरण**: विभिन्न व्यक्तियों के संबंधों को परिभाषित करके उन्हें इस प्रकार जकड़ दिया जाता है कि चाहते हुए भी अन्य लोगों के ज्ञान एवं अनुभव का लाभ नहीं उठाया जा सकता।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 औपचारिक संगठन क्या है?
प्र.8 संबंधों का यंत्रीकरण की प्रक्रिया उदाहरण से समझाइए।
प्र.9 औपचारिक संगठन में आदेश की एकता कैसे संभव है?

7.5 अनौपचारिक संगठन

अनौपचारिक संगठन :

अनौपचारिक संगठन का आशय ऐसे संगठन से है जिसकी स्थापना जान–बूझकर नहीं की जाती, बलिक अनायास ही पारस्परिक समान हितों, रुचियों, धर्म, एव संबंधों के कारण हो जाती है। अनौपचारिक संगठन की मुख्य विशेषता आपसी संबंधों की मैत्रीपूर्ण व सहयोगपूर्ण प्रकृति है। इसके अंतर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कामों में इसलिए मदद नहीं करता कि वह इसके लिए जिम्मेदार है, बल्कि इसलिए करता है कि यह उसकी निजी इच्छा एवं पसंद है। उदाहरणार्थ, औपचारिक संगठन के अंतर्गत क्रय विभाग का पर्यवेक्षक अपनी कार्य संबंधी किसी समस्या के लिए केवल क्रय विभाग के प्रबंधक से ही सलाह लेने के लिए बाध्य हैं। लेकिन अनौपचारिक संगठन में यह सलाह किसी अन्य विभाग के प्रबंधक या पर्यवेक्षक से ली जा सकती है। इतना ही नहीं बलिक एक पर्यवेक्षक सीधा मुख्य प्रबंधक से भी बातचीत कर सकता है।

टूल बाक्स – 6
अनौपचारिक संगठन इसका अभिप्राय व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्य–स्थल पर लोगों के स्वतः स्थापित समूहों से है।

चेस्टर बनार्ड के अनुसार, ''वह संगठन अनौपचारिक है जिसमें आपसी संबध अज्ञानतावश संयुक्त उद्देश्यों के लिए बनते हैं।''

- **अनौपचारिक संगठन के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:**

(i) **औपचारिक संगठन पर आधारित:** यह औपचारिक संगठन पर आधारित होता है। औपचारिक संगठन में काम कर रहे व्यक्तियों के मध्य ही अनौपचारिक संबंध होते हैं (अर्थात पहले औपचारिक संगठन स्थापित होता है और फिर उसी में से अनौपचारिक संगठन बनता है)।

(ii) **इसके लिखित नियम एवं प्रक्रियाएं नहीं होते हैं** : इस संगठन में आपसी व्यवहार के कोई लिखित नियम एवं प्रक्रिया नहीं होती, फिर भी इसकी अपनी समूह परंपराएं होती हैं। जिनका पालन करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, किसी संस्था में कार्यरत एक विशेष समुदाय के कुछ व्यक्ति एक अनौपचारिक ग्रुप बना लेते हैं। धीरे–धीरे इस ग्रुप की परंपराएं अथवा मान्यताएं विकसित हो जाती है। जैसे – अपने समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत एवं कार्यस्थल से संबंधित किसी भी समस्या का समाधान करना। इसी प्रकार अपने समुदाय के सभी लोगों को प्रबंधकीय शोषण से बचाना। इस तरह अनौपचारिक समूह में शामिल होने वाले सभी सदस्य समूह की मान्यताओं का पालन करने के लिए बाध्य होंगे।

(iii) **स्वतंत्र संदेशवाहन श्रृंखला** : इसमें विभिन्न व्यक्तियों के मध्य संबंधों को पारिभाषित नहीं किया जा सकता। क्योंकि एक निम्न स्तर के व्यक्ति का भी उच्चतम स्तर के व्यक्ति के साथ सीधा संबंध हो सकता है। इसीलिए संदेशवाहन के प्रवाह को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

टूल बाक्स — 7
संगठन चार्ट
संगठन चार्ट एक रेखा चित्र होता है जो एक संगठन में स्थापित विभिन्न पदो के मध्य संबंधो को स्पष्ट करता है।

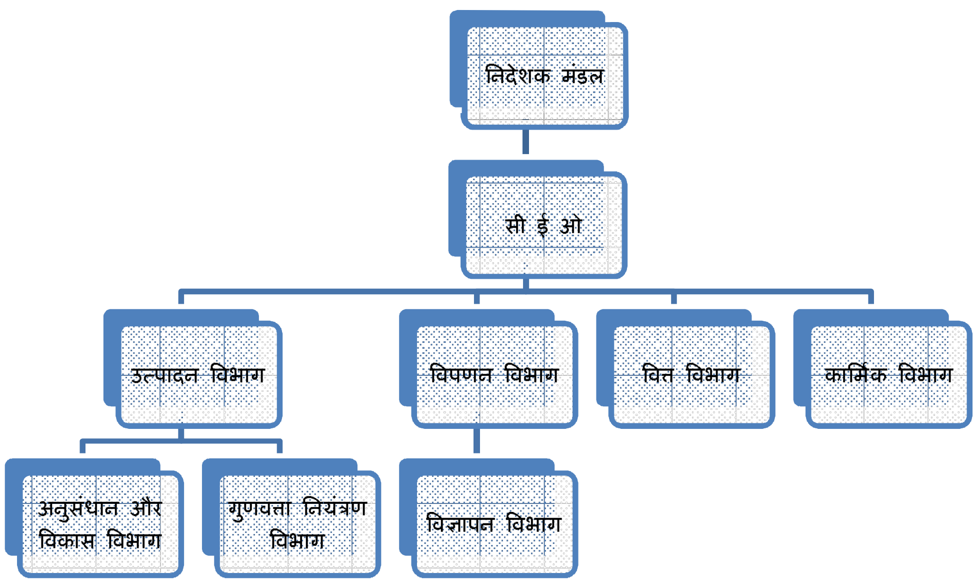

चित्र — 7.7 संगठन चार्ट

टूल बाक्स — 8
संगठन पुस्तिका
संगठन पुस्तिका में संगठन में स्थापित विभिन्न पदो के अधिकार एवं उत्तरदायित्वों की व्याख्या की जाती है। तथा अन्य संबंधित विवरण लिखे जाते हैं।

(iv) **यह जानबूझकर स्थापित नहीं किया जाता है:** अनौपचारिक संगठन की स्थापना जान–बूझकर नहीं की जाती बल्कि व्यक्तियों के आपसी संबंधों एवं रुचियों के आधार पर हो जाती है।

(v) **संगठन चार्ट पर कोई स्थान नहीं:** अनौपचारिक संगठन का विधिवत रुप से तैयार किए गए संगठन चार्ट पर कोई स्थान नही होता। इसके अतिरिक्त संगठन पुस्तिका में भी इसकी कोई जानकारी नहीं दी जाती।

(vi) **यह व्यक्तिगत होता है:** इसके व्यक्तिगत होने का अभिप्राय यह है कि इसके अंतर्गत व्यक्तियों की भावनाओं को ध्यान में रखा जाता है और उन पर किसी भी बात को थोपा नहीं जाता।

(vii) **स्थायित्व की कमी:** इसमें प्रायः स्थायित्व का अभाव होता है: जैसे – एक व्यक्ति आज एक ग्रुप में बैठता है तो कल किसी अन्य ग्रुप में संबंध स्थापित कर लेता है। इतना ही नहीं बल्कि एक व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक समूहों का सदस्य भी हो सकता है।

अनौपचारिक संगठन के लाभ

अनौपचारिक संगठन के लाभ निम्नलिखित हैं:

(i) **प्रभावपूर्ण संदेशवाहन** : निर्धारित मार्ग न होने के कारण यह संदेशवाहन की एक प्रभावपूर्ण पद्धति है। इसके माध्यम से संदेश अतिशीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचाए जा सकते हैं

(ii) सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति: अनौपचारिक संगठन में समान विचार रखने वाले व्यक्ति अपना–अपना समूह बना लेते हैं। समूह के सभी सदस्य संगठनात्मक व व्यक्तिगत मुद्दे पर एक–दूसरे का साथ देते हैं। इससे उन्हे कार्य संतुष्टि प्राप्त होती है और संगठन के भाईचारे की भावना में वृद्धि होती है।

(iii) **संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति:** यहां औपचारिक संगठन के दबाव से राहत मिलती है। अनौपचारिक संगठन में अधीनस्थ बिना किसी डर के अपनी बात अपने अधिकारियों के आगे कह देते हैं जिससे अधिकारियों को उनकी कठिनाइयों को जानने में सहायता मिलती है। और सभी समस्याओं का तुरन्त समाधान निकल आता है। सरलता से समस्याएं दूर होने से संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने में आसानी रहती है।

अनौपचारिक संगठन की सीमाएं

(i) **यह अफवाहें फैलाता है:** अनौपचारिक संगठन में सभी व्यक्ति लापरवाही से बात–चीत करते हैं और कई बार गलत बात एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैल जाती है जिसके भयंकर परिणाम सामने आते हैं।

(ii) **यह परिवर्तन का विरोध करता है:** यह संगठन परिवर्तनों का विरोध करता है और पुरानी पद्धतियों को ही लागू रखने पर जोर देता है।

(iii) **समूह परंपराओं का दबाव:** इस संगठन में सदस्यों पर समूह परंपराओं का पालन करने का दबाव रहता है कई बार अनौपचारिक समूहों में एकत्रित हुए कर्मचारी अपने लक्ष्य से बेखबर हो जाते हैं और सभी एक आवाज़ में अपने अधिकारों का विरोध करने का निर्णय ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त वर्णन से दोनो प्रकार के संगठनों के गुण व दोष स्पष्ट होते हैं जहां एक ओर औपचारिक संगठन संस्था के उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त करने में सहायक हैं, वहीं दूसरी ओर, यदि ठीक ढंग से प्रयोग में लाया जाए तो अनौपचारिक संगठन का महत्व भी कम नहीं है। संक्षेप में, कर्मचारियों में अनौपचारिक संबंध, औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन एक सामूहिक कार्य के लिए इस तरह जरुरी है जैसे कि एक कैंची को कार्य करने योग्य बनाने के लिए उसमें दो ब्लेडों का होना जरुरी है। इसी संदर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि, प्रबंध का अनौपचारिक संगठन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 अनौपचारिक संगठन क्या है?
प्र.11 संगठन चार्ट की प्रक्रिया उदाहरण से समझाइए।
प्र.12 अनौपचारिक संगठन में प्रभावपूर्ण संदेशवाहन कैसे संभव है?

- **औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन में अंतर**

दोनों प्रकार के संगठनों में अंतर निम्न चित्र एवं तालिका की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

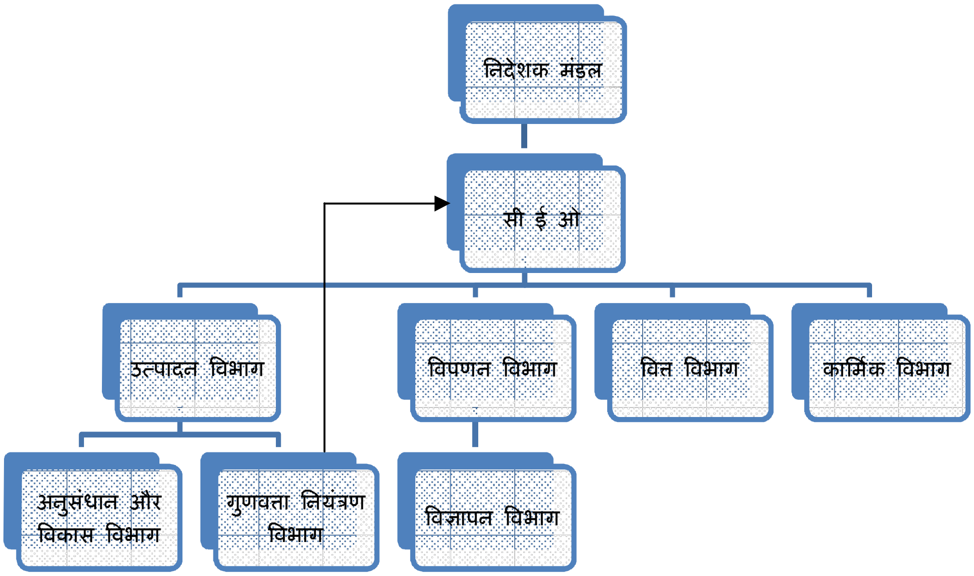

———— औपचारिक संगठन

————> अनौपचारिक संगठन

चित्र – 7.8 औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट होता है कि औपचारिक संगठन के अंतर्गत मुख्य प्रबंधक, क्रय प्रबंधक तथा क्रय सुपरिटेन्डेन्ट के मुख्य, श्रृंखला में रहते हुए व्यवहार करना होता है। अर्थात क्रय सुपरिटेन्डेन्ट अपनी बात केवल क्रय प्रबंधक को ही कह सकता है। इसी प्रकार की श्रृंखला उत्पादन एंव वित्त विभाग में भी काम करेगी। इसके विपरीत, अनौपचारिक संगठन में क्रय सुप्रिटेंडेंट अपने आपसी संबंधो के कारण उत्पादन प्रबंधक से विचार–विमर्श कर सकता है। इसी प्रकार वित्त सुप्रिटेंडेंट सीधे ही मुख्य प्रबंधक के सामने अपनी समस्या रख सकता है।

निम्न तालिका द्वारा औपचारिक संगठन के मध्य अंतर को आसानी से समझा जा सकता है।

अंतर का आधार	**औपचारिक संगठन**	**अनौपचारिक संगठन**
1.अर्थ	अधिकार संबंधो के ढांचे के रुप में प्रबंध द्वारा उत्पन्न किए गए संगठन को औपचारिक संगठन कहते हैं।	आपसी संबंधों के कारण स्वतः उत्पन्न संगठन को अनौपचारिक संगठन कहते हैं।

2.उद्गम	इसकी स्थापना संगठन की नीतियों एवं नियमों के कारण होती है।	इसकी स्थापना सामाजिक संबंधों के कारण होती है।
3.अधिकार	अधिकार संगठन में स्थापित पदों के कारण उत्पन्न होते हैं तथा ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होते हैं।	अधिकार व्यक्तिगत गुणों के कारण उत्पन्न होते हैं। अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे या समतल रुप में हो सकता है।
4.व्यवहार	व्यवहार पूर्व निर्धारित होता है। अर्थात यह पहले से ही मालूम होता है कि कौन क्या करेगा, कैसे करेगा, कौन बॉस होगा ओर कौन अधीनस्थ।	व्यवहार व्यक्तिगत लगाव पर निर्भर करता है। अर्थात यह पहले से निर्धारित नहीं होता है।
5.संदेशवाहन अथवा सम्प्रेशण का प्रवाह	सम्प्रमेषण पारिभाषित होता है। यह सोपान श्रृंखला के अनुसार चलता है।	सम्प्रेषण पारिभाषित नहीं होता। यह किसी भी दिशा में प्रवाहित हो सकता है।
6.प्रकृति	यह अधिक स्थिर अथवा टिकाऊ होता है। इसमें पूर्वानुमान संभव नहीं होता है।	यह अस्थिर अथवा कम टिकाऊ होता है। इसमें पूर्वानुमान संभव नहीं है।
7.नेतृत्व	प्रबन्धक अपने उच्च पदों के कारण नेता होते हैं।	नेता चुना जाता है।

सारांश

विभागीयकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। विभागीयकरण के कारण प्रबंधक कुछ ही क्रियाओं को बार–बार करते हैं और अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए निर्णय लेते हैं। थोड़े ही समय में वे उस विभाग के विशेषज्ञ बन जाते हैं। विशेषज्ञ बनने पर अधिक व अच्छा काम कम से कम समय में होने लगता है। विभागीयकरण के अंतर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष के दायित्वों का निर्धारण करना संभव हो जाता है। यदि किसी कर्मचारी को एक काम न सौंप कर पूरी संस्था के काम सौंपे जाएं तो उसके दायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है और

प्रत्येक कर्मचारी विपरीत परिणामों की जिम्मेदारी अन्य कर्मचारियों पर डालने का प्रयास करता है। इसके विपरीत, दायित्व निर्धारण हो जाने पर सभी प्रबंधकों को स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। इस प्रकार उनका पूरा ध्यान एक ओर लग जाता है और परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। विभागीयकरण के अंतर्गत संस्था में की जाने वाली सभी क्रियाओं को अनेक इकाइयों अथवा विभागों में बांट दिया जाता है। इन छोटे–छोटे विभागों पर प्रबंध करना आसान होता है। प्रत्येक विभाग में एक अध्यक्ष नियुक्त कर दिया जाता है जिसे उस विशेष विभाग का ज्ञान एवं अनुभव होता है। अपने ज्ञान एवं अनुभव का प्रयोग करके अध्यक्ष सभी कार्य समय पर एवं नियमबद्ध ढंग से पूरे करता है। इस प्रकार संस्था की साख में वृद्धि होती है। संगठन का ढांचा औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी। अर्थात संगठन में कार्यरत सभी व्यक्तियों के मध्य संबंध दो प्रकार से स्थापित हो सकते हैं, प्रथम, वे जो निश्चित होते हैं और इनको पहले से ही परिभाषित कर दिया जाता है, तथा दूसरे, वे जो अनिश्चित होते हैं और पहले से परिभाषित नहीं होते। औपचारिक संगठन का अभिप्राय एक ऐसे संगठन से है जिसके अंतर्गत संस्था में कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों, अधिकारों एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट परिभाषित कर दिया जाता है। अनौपचारिक संगठन का आशय ऐसे संगठन से है जिसकी स्थापना जान–बूझकर नहीं की जाती, बलिक अनायास ही पारस्परिक समान हितों, रुचियों, धर्म, एव संबंधों के कारण हो जाती है। अनौपचारिक संगठन की मुख्य विशेषता आपसी संबंधों की मैत्रीपूर्ण व सहयोगपूर्ण प्रक्रति है। इसके अंतर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कामों में इसलिए मदद नहीं करता कि वह इसके लिए जिम्मेदार है, बल्कि इसलिए करता है कि यह उसकी निजी इच्छा एवं पसंद है। उदाहरणार्थ, औपचारिक संगठन के अंतर्गत क्रय विभाग का पर्यवेक्षक अपनी कार्य संबंधी किसी समस्या के लिए केवल क्रय विभाग के प्रबंधक से ही सलाह लेने के लिए बाध्य हैं। लेकिन अनौपचारिक संगठन में यह सलाह किसी अन्य विभाग के प्रबंधक या पर्यवेक्षक से ली जा सकती है। इतना ही नहीं बलिक एक पर्यवेक्षक सीधा मुख्य प्रबंधक से भी बातचीत कर सकता है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1 विभागीयकरण से क्या अभिप्राय है? विभागीयकरण की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिए।

प्र.2 विभागीयकरण के विभिन्न आधार कौन–कौन से हैं? उदाहरण सहित समझाइये।

प्र.3 औपचारिक संगठन का अर्थ क्या है?

प्र.4 औपचारिक संगठन के लाभ व दोष का वर्णन कीजिए।

प्र.5 औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों की परिभाषा दीजिए तथा इन दोनों में अंतर बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 विभागीयकरण किस प्रकार से किसी संगठन की सहायता करता है?

प्र.7 विभागीयकरण का अर्थ समझाइए। विभागीयकरण के मुख्य आधारों की विवेचना कीजिए।

प्र.8 व्यावसायिक संगठन के विभागीयकरण की आवश्यकता क्यों पड़ती है? विभागों का निर्माण करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

प्र.9 मैट्रिक्स के आधार पर विभागीयकरण से आपका क्या अभिप्राय है? मैट्रिक्स संगठन के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

प्र.10 विभागीयकरण के अर्थ, परिभाषा एवं महत्व का उल्लेख करें।

प्र.11 'अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन से अच्छा माना जाता है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण दीजिए।

प्र.12 औपचारिक संगठन औपचारिक संगठन की चार विशेषताएं बताइए।

खण्ड – 3

इकाई – 1 समन्वय

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

8.0 प्रस्तावना

8.1 समन्वय का अर्थ

8.2 समन्वय का महत्व

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- समन्वय का अर्थ।
- समन्वय की परिभाषाएं।
- समन्वय की प्रकृति।
- समन्वय प्रबन्ध का सार है।
- समन्वय की आवश्यकता प्रबन्ध के सभी स्तरों पर होती है।
- समन्वय का महत्व।

8.0 प्रस्तावना

विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का उत्तरदायित्व उच्च प्रबंध का होता है। उच्च–प्रबंध क्रियाओं का निर्धारण तथा उनमें समन्वय स्थापित करता है। उपक्रम का प्रत्येक कार्य सामूहिक सहयोग से होने के कारण उपक्रम में संलग्न सभी व्यक्तियों की क्रियाओं में सामंजस्य लाने के लिए समन्वय का सहारा लिया जाता है। समन्वय की प्रक्रिया इसलिए की जाती है जिससे उपक्रम अपने निर्धारित लक्ष्यों को पा सके। यदि क्रियाओं में समन्वय न हो तो उपक्रम अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाएगा। समन्वय के माध्यम से व्यक्तियों के प्रयत्नों में एकता स्थापित की जाती

है। समन्वय प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। उच्च प्रबंध को समन्वय करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना होता है।

8.1 समन्वय का अर्थ एवं परिभाशाएं

सरल शब्दों में, समन्वय का अर्थ है तालमेल अर्थात एकता। सहयोग एवं कुशलता बढ़ाने के लिए भिन्न – भिन्न व्यक्तियों, कार्यो, साधनों, हितों तथा लक्ष्यों में तालमेल बैठाना समन्वय कहलाता है। जिस भी संगठन में दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं, वहां उनकी शक्ति का सही व पूरा सहयोग करने के लिए उनकी क्रियाओं में समन्वय करने की आवश्यता होती है।

किसी व्यवस्था के विभिन्न अंगों अथवा गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करना समन्वय कहलाता है। एक व्यावसायिक उपक्रम के संदर्भ में, समन्वय का अर्थ व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं, (क्रय, विक्रय, उत्पादन, वित्त, सेविवर्गीय आदि) को संतुलित करना है ताकि व्यवसाय के उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सके। समन्वय की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(i) **कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, ''समन्वय प्रबंध का सार तत्व है जोकि एक समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत प्रयासों में सामंजस्य लाने के लिए किया जाता है।''

(ii) **मैक्फारलैंड** के अनुसार, ''समन्वय वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अधिकारी अपने अधीनस्थों के सामूहिक प्रयासों के एक व्यक्तिगत स्वरुप का विकास करता है और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्रियाओं में एकरुपता को सुनिश्चित करता है।''

(iii) **मूने व रेले के** अनुसार 'कार्य में एकता की स्थापना के लिए सामूहिक प्रयास की नियमित व्यवस्था को समन्वय कहते हैं।'

(iv) **ई.एफ.एल. ब्रैच** के अनुसार, ''समन्वय कार्य दल में संतुलन बनाने तथा उसे एकजुट बनाए रखने की प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न व्यक्तियों के बीच काम का सही–सही बंटवारा किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि ये लोग मिलकर तथा एकता के साथ अपना–अपना कार्य कर सकें।''

(v) **जेम्स स्टोनर** के अनुसार, ''समन्वय संगठन के लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त करने के लिए संगठन की भिन्न इकाइयां (विभागों या कार्यकारी क्षेत्रों) के उद्देश्यों और क्रियाओं के बीच एकीकरण करने की प्रक्रिया है।''

(vi) **थियो हैमेने** के अनुसार, ''समन्वय अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों की गति, प्रगति और किस्म से मेल खाए तथा आपस में मिलकर समन्वय के समान उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हों।''

टूल बाक्स – 1
समन्वय सहयोग एवं कुशलता बढ़ाने के लिए व्यक्तियों, कार्यो, साधनों, हितों तथा लक्ष्यों में तालमेल बैठाना समन्वय कहलाता है।

8.1.1 समन्वय की विशेषताएं

समन्वय की विभिन्न परिभाषाओं का विवेचन करने पर समन्वय की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं –

(i) **प्रबंधकीय उत्तरदायित्व** : समन्वय एक प्रबंधकीय उत्तरदायित्व है। यह कार्य नियोजन के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। संगठन निर्माण के समय इसे योजनाबद्ध विधि से स्थापित किया जाता है और बदलती हुई परिस्थितियों में प्रबंधक इसे बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं।

(ii) **सामूहिक प्रयास** : समन्वय की आवश्यकता सामूहिक प्रयासों के संबध में होती है क्योंकि व्यक्तिगत प्रयास किसी दूसरे के कार्य को प्रभावित करते रहते है।

(iii) **एक निरंतर तथा गतिशील प्रक्रिया** : संगठन में किसी न किसी प्रकार के समन्वय की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है। प्रबंध उच्च स्तर का समन्वय प्राप्त करने का प्रयास करता है।

(iv) **कार्यवाही की एकता** : समन्वय का उद्देश्य कार्यवाही की एकता उत्पन्न करना है, जिससे कि सभी प्रयास एक ही दिशा में प्रशस्त हों, संतुलित हो तथा एक–दूसरे की सहपूर्ती करें।

(v) **प्रक्रह्न समन्वय** : आंतरिक समन्वय के अंतर्गत संगठन के भिन्न–भिन्न भागों कार्यों एवं उद्देश्यों में तालमेल करना पड़ता है, जबकि बाह्न समन्वय के अंतर्गत संगठन तथा इसके बाहरी वातावरण का समन्वय शामिल है।

टूल बाक्स – 2
समन्वय की वि□शताएं ● प्रबंधकीय उत्तरदायित्व ● सामूहिक प्रयास ● एक निरंतर तथा गतिशील प्रक्रिय ● कार्यवाही की एकता ● प्रक्रह्ह समन्वय

8.1.2 समन्वय की प्रकृति

समन्वय एक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने वाली प्रक्रिया है। समन्वय की परिभाषाएं इसकी प्रकृति के बारे में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत करती हैं :–

(i) **समन्वय सामूहिक प्रयास में सामंजस्य स्थापित करता है** : समन्वय की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक व्यक्तियों के प्रयासों की जरुरत हो। संक्षेप में, समन्वय का संबंध सामूहिक प्रयास से है न कि एकाकी प्रयास से। यदि एक ही व्यक्ति काम करने वाला हो तो समन्वय का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ii) **समन्वय प्रयास में एकता सुनिचित करता है** : समन्वय की प्रकृति प्रयास में एकता पैदा करने की है। इसका अभिप्राय प्रक्रिया के दौरान एक संगठन की विभिन्न क्रियाओं में एकता पैदा करने के प्रयास से है। उदाहरण के लिए, क्रय तथा विक्रय विभागों को अपनी क्रियाओं को इस ढंग से समन्वित करना होता है ताकि क्रय आदेशों की पूर्ती की जा सके।

(iii) **समन्वय एक सतत् प्रक्रिया है** : यह कोई ऐसा कार्य नहीं है जो हमेशा के लिए एक ही बार में पूरा कर दिया जाए बल्कि इसकी आवश्यकता कदम–कदम पर होती है। व्यवसाय में अनेक क्रियाएं की जाती हैं। इनमें से कोई न कोई क्रिया आवश्यकता से अधिक या कम होती रहती है जो पूरे संतुलन को बिगाड़ देती है। अतः सभी क़्रियाओं में संतुलन बनाए रखने के लिए उन पर लगातार निगरानी रखनी पड़ती है।

(iv) **समन्वय एक सर्वव्यापक कार्य है** : सर्वव्यापकता का अर्थ उस सत्य से है जो सभी क्षेत्रों (व्यावसायिक तथा गैर–व्यावसायिक) तथा सभी स्थानों पर समान रुप से लागू होता हो और

समन्वय की ऐसी प्रकृतिः जैसे – एक शिक्षण संस्था में टाईम टेबल बनाना समन्वय स्थापित करने का एक अच्छा उदाहरण है। किसी भी सामूहिक खेल, जैसे– फुटबॉल में सभी खिलाड़ियों को पूर्व निर्धारित स्थनों पर खड़ा करना समन्वय ही है। इसी प्रकार एक व्यावसायिक इकाई में क्रय और विक्रय, उत्पादन, वित्त आदि विभागों की क्रियाओं में मिलान स्थापित करना समन्वय है।

(v) **समन्वय सभी प्रबंधकों का उत्तरदायित्व है** : समन्वय की जरुरत उच्च, मध्य व निम्न तीनों प्रबंधकीय स्तरों पर होती है। सभी स्तरों पर की जाने वाली विभिन्न क्रियाएं अपने आप में महत्वपूर्ण होती हैं। अतः सभी प्रबंधकों का यह उत्तरदायित्व है कि समन्वय स्थापित करने का प्रयास करें। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि समन्वय का किसी विशेष प्रबंधकीय स्तर पर अथवा कियी विशेष प्रबंधक के लिए अधिक महत्व है।

(vi) **समन्वय जानबूझ कर किया जाने वाला कार्य है** : समन्वय कभी भी अपने–आप स्थापित नहीं होता बल्कि यह जानबूझ कर किया जाने वाला एक प्रयास होता है। केवल सहयोग से बात नहीं बनती। सहयोग के साथ समन्वय का होना जरुरी है। उदाहरण के लिए, एक सेल्स एक्ज़ीक्यूटिव किसी उत्पाद का वितरण करना चाहता है जिससे कि संस्था के लाभ में वृद्धि हो। किंतु निश्चित समय पर अपेक्षित मात्रा में उत्पाद न मिलने की सूरत मे समन्वय के अभाव में आती है। दूसरी ओर, सहयोग के अभाव में समन्वय कर्मचारियों को असंतुष्ट करता है। अतः एक ही समय पर दोनों का होना जरुरी है।

टूल बाक्स – 3
समन्वय की प्रकृति
• समन्वय सामूहिक प्रयास में सामंजस्य स्थापित करता है • समन्वय प्रयास में एकता सुनिचित करता है • समन्वय एक सतत् प्रक्रिया है • समन्वय एक सर्वव्यापक कार्य है • समन्वय सभी प्रबंधकों का उत्तरदायित्व है • समन्वय जानबूझ कर किया जाने वाला कार्य है

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 समन्वय क्या है?
प्र.2 किसी सामूहिक कार्य में एकता की क्यों आवश्यकता होती है?
प्र.3 समन्वय के किसी एक परिभाषा की समीक्षा कीजिए।

8.2 समन्वय का महत्व

एक औद्योगिक संगठन में समन्वय का महत्व निम्नलिखित कारणों से होती है। –

(i) **श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण** : श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के परिणामस्वरुप एक मुख्य क्रिया को अनेक छोटी–छोटी उपक्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक उपक्रिया को अलग–अलग व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों को सौंपा जाता है। जोकि उस क्रिया के विशेषज्ञ होते हैं जिससे अधिकतम कार्यकुशलता का लाभ उठाया जा सके। जहां एक ओर, हम श्रम–विभाजन और विशिष्टीकरण से लाभ प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर समन्वय की कठिनाई का भी सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति उसी कार्य में दक्ष हो जाता है, जिसे वह निरंतर कर रहा है और वह अपने आप को 'कुल कार्य' के साथ नहीं जोड़ पाता। अतः दोष को दूर करने के लिए समन्वय की आवश्यकता होती है।

(ii) **विभिन्न विभागों का अर्थ–स्वतंत्र अस्तित्व** – वर्तमान युग बड़े पैमाने के उत्पादन का युग है, जहां संगठन का आकार बहुत बड़ा होता है। एक संगठन में अनेक विभाग होते हैं। विकेन्द्रियकरण की प्रक्रिया के कारण इन विभागों को अनेक विषयों में स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार है। इस स्वतंत्रता के कारण ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि एक विभाग के द्वारा लिए गए निर्णय, दूसरे विभागो के कार्यों, हितों एवं नीतियों से तथा संगठन के हितों से तालमेल नहीं खाते। अतः समन्वय की आवश्यकता पड़ती है।

(iii) **संगठन में मानवीय तत्व** – प्रत्येक संगठन में कार्य करने वाले व्यक्ति होते हैं और प्रबंधकों को अन्य कर्मचारियों से काम लेना होता है। मानव स्वभाव प्राकृतिक रुप से ही बड़ा परिवर्तनशील, चंचल एवं विषम है, जो कि अनेक बार संगठनात्मक उद्देश्यों से हटकर भी कार्य करने लग जाता है। इसके अतिरिक्त प्रेम, ईर्ष्या, विचारों में मतभेद आदि भी मानव स्वभाव के आवश्यक अंग है। समन्वय की आवश्यकता का एक अन्य कारण यह है कि संगठन में विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग मात्रा में अधिकार सौंपे जाते है। जिन व्यक्तियों

को कम अधिकार मिलते हैं, उनका अनेक बार अपने उच्च अधिकारियों से मन–मुटाव चलता है। अतः इसे दूर करने के लिए भी समन्वय की आवश्यकता होती है।

8.2.1 समन्वय प्रबंध का सार है

समन्वय के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या इसे प्रबंध के अन्य कार्यों (जैसे– नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन व नियंत्रण) की श्रृंख्ला में ही प्रबंध का छठा कार्य माना जाए या नहीं? कुछ प्रबंध विशेषज्ञयों (जैसे – फेयोल, एल. ए.ऐलन व ऑर्ड वे टीड) का मानना है कि समन्वय प्रबंध का एक अलग कार्य नहीं है बल्कि यह प्रबंध के अन्य सभी कार्यों का एक मुख्य हिस्सा है। आधुनिक प्रबंध विशेषज्ञय कूण्ट्ज तथा ओ'डोनेल इस विचारधारा के प्रबल समर्थक है। इसी संदर्भ में उन्होनें कहा है कि समन्वय प्रबंध का सार है। अर्थात जब एक प्रबंधक सभी कार्यों को पूरा करता है तो वह समन्वय की स्थापना में ही व्यस्त रहता है। यह तथ्य निम्न व्याख्या से स्पष्ट होता हैः

(i) **समन्वय तथा नियोजन** : एक प्रबंधक जब नियोजन कार्य में व्यस्त होता है तो उस समय उसके सोच–विचार का केन्द्र–बिंदु समन्वय ही होता है। विभिन्न विभागों की क्रियाओं को ध्यान में रखकर ही नियोजन किया जाता है। उदाहरण के लिए, जब एक विक्रय प्रबंधक अपने विभाग के विक्रय लक्ष्य को बढ़ाने की योजना बना रहा होता है तो वह उत्पादन प्रबंधक, क्रय प्रबंधक, वित्त प्रबंधक, आदि से भी विचार विमर्श करता है ताकि भविष्य में कोई समस्या उत्पन्न न हो ऐसा करना यह प्रदर्शित करता है कि नियोजन के दौरान समन्वय स्थापित किया जाता है।

(ii) **समन्वय एवं संगठन** : प्रबंध के संगठन कार्य के अन्तर्गत संस्था के मुख्य कार्य को अनेक उपक्रमों में बांटने तथा उन्हें पूरा करने वाले व्यक्तियों के मध्य सम्बधों की व्याख्या की जाती है ताकि व्यवसाय की सभी क्रियाएं व्यवस्थित ढंग से पूरी की जा सकें। जब प्रबंधक वह कार्य कर रहा होता है तो उसका प्रयास सभी विभागों में तथा एक ही विभाग के अनेक व्यक्तियों में समन्वय स्थापित करने का रहता है। उदाहरण के लिए, क्रय विभाग में कार्य करने वाले अनेक व्यक्तियों के मध्य काम व बाजार का बंटवारा इस ढंग से किया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे के काम में अड़चन नहीं बनें।

टूल बाक्स – 4
समन्वय एवं प्रबंध के कार्य
प्रबंध का कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसे समन्वय के अभाव में पूरा किया जा सके अथवा जिसका प्रयास समन्वय की स्थापना करना न हो।

(iii) **समन्वय एवं नियुक्तिकरण** : संगठन के कार्य के अंतर्गत संस्था में विभिन्न पद स्थापित किए जाते हैं जबकि नियुक्ति कार्य द्वारा उनमें जान डाली जाती है। अर्थात संगठन में स्थापित विभिन्न पदों को व्यक्तियों से भरा जाता है। जब एक प्रबंधक नियुक्ति कार्य कर रहा होता है तो उस समय भी उसका ध्यान समन्वय को समर्पित होता है। उसका यह प्रयास रहता है कि सभी पदों को योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों से भरा जाए ताकि संस्था की सभी क्रियाएं बिना रुकावट के चलती रहें।

(iv) **समन्वय एवं निर्देशन** : प्रबंधक निर्देशन कार्य को पूरा करते समय समन्वय को प्राथमिकता देता है। जब वह एक अधीनस्थ को आदेश देता है तो इस बात का ध्यान रखता है कि अन्य लोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। अन्य लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ने की संभावना को टालने का पूरा प्रयास किया जाता है। ऐसी विचारधारा कुछ और नहीं बल्कि समन्वय स्थापना का ही एक प्रयास है। उदाहरण के लिए, एक जैसा काम करने वाले दो व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता है ताकि उनमें कोई मनमुटाव न हो।

(v) **समन्वय एवं नियंत्रण** : नियंत्रण के अन्तर्गत काम की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है ताकि समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही करके विपरीत परिणामों से बचा जा सके। समन्वय के संदर्भ में, नियंत्रण द्वारा संस्था के उद्देश्यों, उन्हें प्राप्त करने के लिए उपलब्ध साधनों एवं मानवीय प्रयासों में सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि समन्वय प्रबंध के सभी कार्यों कें साथ जुड़ा होता है। अतः निसंकोच यह कहा जा सकता है कि समन्वय प्रबंध का कोई अलग कार्य नहीं है बल्कि यह तो प्रबंध का सार है।

8.2.2. समन्वय की आवश्यकता प्रबंध के सभी स्तरों पर होती है

प्रबंध के तीन स्तर होते हैं : उच्च मध्य एवं निम्न स्तर। प्रबंध के स्तरों को यदि समन्वय के दृष्टि से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि समन्वय का सम्बन्ध किसी एक प्रबंधकीय स्तर से नहीं है बल्कि इसकी आवश्यकता अथवा महत्व सभी प्रबंधकीय स्तरों पर बराबर है। किसी कार्य को यदि एक ही व्यक्ति कर रहा हो तो समन्वय की समस्या उत्पन्न नहीं होती क्योंकि सारा काम एक ही व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समन्वय का सम्बन्ध सामूहिक प्रयासों के साथ है। प्रबंध के प्रत्येक स्तर का काम अनेक व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रुप से किया जाता है और इस काम को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए उनमें समन्वय की आवश्यकता होती है। अतः कहा जा सकता है कि समन्वय की आवश्यकता सभी प्रबंधकीय स्तरों पर है।

इतना ही नहीं यदि प्रबंध के तीनों स्तरों को एक नज़र में देखा जाए तो यह भी अपने आप में एक समूह बन जाता है और समूह का नाम आते ही पूनः समन्वय कर जरुरत महसूस होती है। अतः तीनों प्रबंधकीय स्तरों पर व्यक्तिगत रुप से भी और सामूहिक रुप से भी समन्वय की आवश्यकता होती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 संगठन में मानवीय तत्व होने से समन्वय का क्या महत्व है?
प्र.5 विशिष्टीकरण का समन्वय से क्या सम्बन्ध है?

8.2.3 प्रभावपूर्ण समन्वय के आवश्यक तत्व

प्रभावपूर्ण समन्वय के निम्न प्रमुख आवश्यक तत्व हैं :—

(i) **उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या** : प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ती के लिए किया जाता है। इन उद्देश्यों की पूर्ती हेतु सामूहिक प्रयासों में उचित तालमेल होना आवश्यक है। प्रयासों में तालमेल के लिए यह जरुरी है कि व्यवसाय का प्रत्येक विभाग, उपविभाग एवं व्यक्ति निर्धारित लक्ष्यों से परिचित हो और उन्हें ठीक प्रकार से समझते हों। दो व्यक्तियों एव विभागों के बीच समन्वय की स्थापना उस समय उग्र रुप धारण कर लेती है जब वे समान उद्देश्यों के लिए प्रयत्नशील न हों। टैरी का मत है, ''प्रयासों में एकता लाने के

लिए उद्देश्यों में समानता आवश्यक है।'' उद्देश्यों में समानता के लिए उनकी स्पष्ट व्याख्या अति आवश्यक है।

(ii) **उचित संगठन संरचना** :– यह निर्विवाद सत्य है कि एक अच्छी संगठन सरंचना उपक्रम में समन्वय की स्थापना में सहायक सिद्ध होती है। इसीलिए अनेक विद्वानों ने इस बात पर बल दिया है कि संगठन संरचना समन्व के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए। **अर्ल पी. स्ट्रांग** ने कहा है कि, ''विभाग का सामूहीकरण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि कार्य एक विभाग से दूसरे विभाग को सरलता से निरंतर मिलता रहे। आवश्यकता से अधिक मात्रा में विशिष्टीकरण का परिणाम समन्वय की समस्याओं को अनावश्यक रुप से बढ़ावा देना होता है।''

(iii) **अधिकार एवं दायित्व की स्पश्ट रेखाएं** :– व्यवसाय के कुशल प्रबंध के लिए अनेक व्यक्ति नियुक्त किए जाते हैं। कार्य को सुचारु रुप से करने के लिए आवश्यक अधिकार और उत्तरदायित्व दिए जाते हैं। व्यवहार में यह देखा गया है कि प्रबंध के विभिन्न स्तरों पर अधिकारों के बंटवारे एवं उनके उपयोग कें सबंध में अनेक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं फलस्वरुप उनकी क्रियाओं के मध्य समन्वय स्थापित करना समस्या बन जाता है। जहां तक एक ओर प्रबंधक अधिक से अधिक अधिकार लेने का प्रयत्न करते हैं, वहीं वे उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयत्न करते हैं। परिणामस्वरुप हानि होने पर उनका उत्तरदायित्व किसी अन्य व्यक्ति पर डाल दिया जाता है जिसे ज्ञात करना कठिन हो जाता है। इसके कारण व्यवसाय अस्त–व्यस्त हो जाता है। अतः प्रभावी समन्वय के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :

(क) प्रत्येक अधिकारी का क्षेत्र स्पष्ट होना चाहिए। जिससे कि कार्य की उपेक्षा की जिम्मेवारी निश्चित की जा सके।

(ख) प्रत्येक अधिकारी को अपने अधिकार क्षेत्र की जानकारी के साथ–साथ अन्य सहयोगियों व अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिए जिससे कि वह व्यवसाय की समस्याओं को अधिक गहनता से समझ सकें।

(ग) परस्पर व्यापी अधिकार कम से कम होने चाहिए।

(घ) अधिकार उन्हीं को दिए जाने चाहिए जो उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में तत्परता दिखाते हैं।

(iv) **प्रभावपूर्ण संप्रेशण व्यवस्था** :– अधिकार एवं उत्तरदायित्व का स्पष्टीकरण और वर्तमान समन्वय व्यवस्था का निरीक्षण विभिन्न संप्रेषण विधियों द्वारा ही संभव है। अतः प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए प्रभावपूर्ण संप्रेषण विधियों का उचित उपयोग भी आवश्यक है। जैसे – समितियों का गठन, बैठकों और सम्मेलनों द्वारा सामूहिक निर्णय संलेख, रिपोर्ट एव अन्य दूसरे के व्यक्तिगत संपर्क। **डिमोक के भाब्दों** में, ''स्टाफ सभाएं उपस्थित व्यक्तियों के व्यवसाय के कार्य के प्रति निष्ठा भाव जागृत करती हैं उन्हें अपने कार्यों को प्रभावित करने वाली नवीनतम समस्याओं से अवगत कराती हैं, समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न सदस्यों के विचार ज्ञात होते हैं और उनका सहयोग प्राप्त किया जाता है।''

(v) **जांच एवं निरीक्षण की व्यवस्था** : प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए व्यवसाय में संबंधित अधिकारियों की क्रियाओं की जांच एवं निरीक्षण व्यवस्था का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके होने से समन्वय प्रयास का विरोध करना अथवा उसका दुर्बल बनाने वाले अधिकारियों की क्रियाओं पर आवश्यक नियंत्रण किया जा सकता है।

(vi) **कुशल नेतृत्व** – प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए कुशल नेतृत्व का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। जहां तक संभव हो व्यवसाय का नेतृत्व किसी एक व्यक्ति के हाथ में हो, क्योंकि एक से अधिक नेता होने पर अनेक प्रकार के भ्रम एवं अनिश्चितता का भय रहता है। यही नहीं, अधीनस्थों के लिए यह निश्चित करना भी कठिन हो जाता है कि वे किस अधिकारी के आदेशों का पालन करें। अतः परम सत्ता के रुप मे भी व्यवसाय का एक नेता होना ही वांछिनीय है और वही व्यवसाय का सर्वोच्च समन्वय अधिकारी भी होता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.6 प्रभाव संप्रेषण से समन्वय कैसे हो सकता है?
प्र.7 कुशल नेतृत्व का समन्वय से क्या सम्बन्ध है?
प्र.8 प्रभावी समन्वय के लिए किन–किन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

सारांश

आज व्यवसाय का पैमाना निरंतर बढ़ता जा रहा है। व्यवसाय का पैमाना बढ़ने पर उसमें काम करने वाले व्यक्तियों का संख्या में वृद्धि होती है। सभी व्यक्तियों की रुचि, काम करने का ढंग, आपसी मेलजोल, काम करने का उद्देश्य, सहन–शक्ति आदि अलग–अलग होते है। इतनी

विभिन्नताओं के होते हुए भी उन्हें एक समूह में काम करना होता है जोकि एक आसान काम नहीं है। अतः जरुरी है कि समन्वय के माध्यम से ऐसा वातावरण तैयार किया जाए ताकि सभी व्यक्ति संस्था उद्देश्य प्राप्ति में पूरा योगदान दे सकें। एक संस्था में स्थापित विभिन्न विभागों का हित अलग–अलग हो सकता है। ऐसी स्थिति में संस्था के मुख्य उद्देश्य को पूरा करने में रुकावट बन जाती है। इस हानि से बचने का एक ही तरीका है वह यह कि दोनों में समन्वय स्थापित किया जाए। प्रत्येक संगठन में, विशिष्टीकरण का लाभ उठाने के लिए एक मुख्य क्रिया को अनेक छोटी–छोटी उपक्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक उपक्रिया को अलग–अलग व्यक्तियों को सौपा जाता है जो कि उस उपक्रिया के विशेषज्ञ होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति 'कुल कार्य' की परवाह किए बिना अपने कार्य को अपने ढंग से करना चाहता है। ऐसी स्थिति में विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए उनमें समन्वय स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। समन्वय स्थापित हो जाने पर सभी व्यक्ति अपना–अपना कार्य 'कुल कार्य' कें संदर्भ में पूरा करते हैं। साथ ही एक संस्था की सभी इकाईयां एक दूसरे पर आश्रित होती हैं। विभिन्न इकाइयां एक–दूसरे पर जितनी अधिक आश्रित होंगी, समन्वय की अवश्यकता उतनी ही अधिक होगी।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र□न

प्र.1 समन्वय के अर्थ का वर्णन कीजिए।

प्र.2 समन्वय की प्रकृति पर टिप्पणी कीजिए।

प्र.3 समन्वय व नियोजन में क्या संबंध है?

प्र.4 क्या विशिष्टीकरण में समन्वय आवश्यक है?

प्र.5 संगठन के आकार से समन्वय पर क्या प्रभाव पड़ता है?

दीर्घ उत्तरीय प्र□न

प्र.1 ''कार्य की एकता की स्थापना के लिए सामूहिक प्रयास की नियमित व्यवस्था को समन्वय कहते है?'' इस कथन के संदर्भ में समन्वय की प्रकृति समझाइए।

प्र.2 ''समन्वय प्रबंध के लिए अतिआवश्यक है।'' क्या आप सहमत हैं? कारण दीजिए।

प्र.3 ''समन्वय प्रबंध का सार है।'' इस कथन को उदाहरणों की सहायता से समझाइए।

प्र.4 ''समन्वय को प्रबंध के एक अलग कार्य के स्थान पर प्रबंध का सार क्यों माना जाता है।?''

प्र.5 ''समन्वय की आवश्यकता प्रबंध के सभी कार्यों में होती है।'' क्या आप इस से सहमत हैं'? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।

प्र.6 ''समन्वय प्रबंध का अलग कार्य नहीं है। यह प्रबंध का सार है।'' उपयुक्त उदाहरण की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

प्र.7 समन्वय एक संगठन में ''सतत प्रक्रिया'' तथा '' प्रबंध का सार'' है। वर्णन कीजिए।

खण्ड – 3

इकाई – 2 अभिप्रेरण

विश्य सूची

अध्याय का उद्देश्य

9.0 प्रस्तावना

9.2 अभिप्रेरण का अर्थ तथा परिभाषाएँ।

9.2 अभिप्रेरण की विशेषताएँ।

9.3 अभिप्रेरण की प्रक्रिया।

9.4 अभिप्रेरण का महत्व

9.5 अभिप्रेरण के सिद्धान्त

9.5 अभिप्रेरण की विचारधाराएँ

9.6 मौद्रिक तथा अमौद्रिक अथवा प्रेरणाएँ।

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- अभिप्रेरण का अर्थ तथा परिभाषाएँ।
- अभिप्रेरण की विशेषताएँ।
- अभिप्रेरण की प्रक्रिया।
- अभिप्रेरण का महत्व
- अभिप्रेरणा के सिद्धान्त
- मास्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता विचारधारा।
- मौद्रिक तथा अमौद्रिक अथवा प्रेरणाएँ।
- मौद्रिक तथा अमौद्रिक प्रेरणाओं में अंतर।
- एक मौद्रिक तथा अमौद्रिक अथवा प्रेरणाएँ।

9.0. प्रस्तावना

एक प्रबन्धक का मुख्य कार्य संगठन में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं को संगठित करके पूर्व–निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। यहां विभिन्न व्यक्तियों से अभिप्राय उत्पादन के मानवीय तत्व से है जिसकी कार्यकुशलता पर गैर–मानवीय तत्वों: जैसे–मशीन, माल आदि की उपयोगिता आधारित होती हैं। अतः स्पष्ट है कि संगठन में उत्पादन के मानवीय तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है। अब प्रश्न यह उठता है कि उत्पादन के मानवीय तत्व की उपलब्ध क्षमता का कुशलतापूर्वक उपयोग कैसे किया जाए। किसी व्यक्ति की कार्यकुशलता का संबंध दो तत्वो से होता हैः प्रथम, किसी कार्य को करने की योग्यता का स्तर तथा द्वितिय, उसकी कार्य करने की इच्छा। जहां तक 'कार्य करने की योग्यता के स्तर' का प्रश्न है यह शिक्षण तथा प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन कार्य करने की इच्छा को अभिप्रेरण द्वारा ही पैदा किया जा सकता है।

टूल बाक्स – 1
आग–घी–चिंगारी संबंध कर्मचारियों की पूर्ण क्षमता का उपयोग करने के लिए उनमे छिपी हुई क्षमता रुपी आग में अभिप्रेरण रुपी घी डालना पड़ता है, ऐसा करते ही कार्यकुशलता में निखार रुपी चिंगारी निकलती है और प्रबन्धक अपने उदेश्य मे सफल हो जाता है।

9.1. अभिप्रेरण का अर्थ

एक व्यक्ति जब कोई कार्य करता है तो इसके पीछे उसकी कोई न कोई जरुरत होती है जो उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है तथा प्रेरित करने वाली इन जरुरतों को प्रेरणा कहते हैं। अभिप्रेरण के अन्तर्गत व्यक्तियों को उनकी जरुरत अथवा प्रेरणा का अनुभव करवाकर उनमे काम करने की इच्छा को जागृत किया जाता है। अभिप्रेरण का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद 'मोटीवेशन' है, जिसकी उत्पत्ति अंग्रेजी के 'मोटिव' शब्द से हुई है। 'मोटिव' शब्द का अर्थ व्यक्ति में छिपी हुई ऐसी इच्छा शक्ति से है जो उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती हे। इस प्रकार 'मोटिवेशन' का अर्थ हुआ, व्यक्ति में छिपी इच्छा शक्ति का उसे अनुभव कराना। संक्षेप में, अभिप्रेरण का अर्थ उस प्रक्रिया

से है जिसके द्वारा व्यक्तियों को उनकी जरुरतों का अनुभव इसलिए कराया जाता है कि उन जरुरतों को पूरा करने के लिए वे कुछ कार्य करेंगे जाकि संस्था के हित में होगा

टूल बाक्स – 2
अभिप्रेरण इसका अभिप्राय व्यक्ति में छिपी हुई इच्छा–शक्ति से है जो उसे काम करने के लिए प्रेरित करती है। यह एक आंतरिक अनुभव है ।

- **अभिप्रेरण की परिभाशाएँ**

विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर अपने अनुभव के आधार पर अभिप्रेरण की विभिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. **कुण्टज़ तथा ओ'डेनोल** के मतानुसार, 'अभिप्रेरण करना लोगों को इच्छित ढंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करना है।'
2. **डब्लयु.जी.स्कॉट** के शब्दों में, 'अभिप्रेरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जो इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु लोगों को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है।'

टूल बाक्स–3
अभिप्रेरण इसका अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो वांछित उद्देश्य प्राप्ति हेतु लोगों में उतेजना पैदा करती है।

9.2 अभिप्रेरण की वि◻िशताएँ

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों के आधार पर अभिप्रेरण की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं:

1. **अभिप्रेरण एक आंतरिक अभिव्यक्ति का अनुभव है:** अभिप्रेरण एक मनोवैज्ञानिक धारणा है जो व्यक्ति के अन्दर पैदा होती है। सर्वप्रथम व्यक्ति के मस्तिष्क में कुछ आवश्यकताएं जन्म लेती हैं जिनका प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है। अर्थात उनको संतुष्ट करने के लिए वह कुछ कार्य करने की सोचता है।

2 **अभिप्रेरण से लक्ष्य प्राप्ति व्यवहार पैदा होता है** : अभिप्रेरण एक ऐसी शक्ति है जो कर्मचारियों को उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है। अभिप्रेरित कर्मचारियों के व्यवहार से स्पष्टतः दिखाई देता है। कि उनका रुझान उद्देश्य प्राप्ति की ओर है। उदाहरण के लिए, पदोन्नति अभिप्रेरण की विधि है। पदोन्नति की इच्छा रखने वाले कर्मचारी निश्चित रुप से बढ़िया निष्पादन का प्रयास करेंगे

3 **अभिप्रेरण सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती हैं**: अभिप्रेरण के दृष्टिकोण से कर्मचारी दो तरह के होते हैं – काम करने वाले तथा कामचोर। जो कर्मचारी काम करने वाले हैं उन्हें पुरस्कृत करके प्रोत्साहित किया जाता है। इसे सकारात्मक अभिप्रेरण कहते हैं। दूसरी ओर, जो कर्मचारी कामचोर प्रकृति के है उन्हें पदावनति, निष्कासन, पदच्युति आदि का डर दिखाकर प्रोत्साहित किया जाता है। ऐसे लोग सज़ा मिलने के डर से काम करने लगते हैं। इसे नकारात्मक अभिप्रेरण कहते हैं।

4 **अभिप्रेरण एक जटिल प्रक्रिया है** : एक संगठन में काम करने वाले सभी लोग भिन्न प्रकृति के होते हैं। सभी की आवश्यकताएं भिन्न होती हैं। इसलिए सभी को किसी एक अभिप्रेरक से प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता है। संबंधित व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मौद्रिक व अमौद्रिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। अतः यह एक जटिल प्रक्रिया है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 अभिप्रेरण का क्या अर्थ है?   प्र.2 अभिप्रेरण एक जटिल प्रक्रिया है ? क्या आप सहमत हैं?   प्र.3 क्या अभिप्रेरण संगठन का केन्द्र बिंदु है?

9.3. अभिप्रेरण प्रक्रिया

अभिप्रेरण प्रक्रिया का अभिप्राय यह जानना है कि यह कहां से शुरु होकर कहां समाप्त होती है। यह कार्य ऐसा नहीं है जो एक ही झटके में पूरा हो जाए बल्कि यह अनेक पदों का समूह है। रॉर्विस तथा कोल्टर ने भिन्न आवश्यकता–संतुष्टि प्रक्रिया प्रस्तुत की है।

(1) असंतुश्ट आव□यकता → (2) तनाव → (3) तीव्रता → (4) खोज व्यवहार → (5) आव□यकता संतुश्टि → (6) तनाव से मुक्ति

चित्र – 9.1 आव□यकता–संतुश्टि प्रक्रिया

(1) **असंतुश्ट आव□यकता** : अभिप्रेरण के प्रथम चरण के रुप में एक व्यक्ति को किसी चीज की आवश्यकता महसूस होती है अथवा उसे लगता है कि वह कहीं कमी में है।

(2) **तनाव** : व्यक्ति के मस्तिष्क में आवश्यकता असंतुष्टि का विचार आते ही वह तनाव में आ जाता है।

(3) **तीव्रताः** तीव्रता का अर्थ व्यक्ति के मस्तिष्क में हलचल शुरु होने से है। इस चरण पर व्यक्ति आवश्यकता पूर्ती के लिए प्रयत्न करता है। आवश्यकता का पूरा होना प्रयत्न की तीव्रता व सही दिशा पर निर्भर करता है।

(4) **खोज व्यवहारः** इस चरण पर व्यक्ति आवश्यकता संतुष्टि के लिए विभिन्न विकल्पों की खोज करता है। सर्वाधिक बेहतर विकल्प को अमल में लाया जाता हैः

(5) **आव□यकता पूर्ति** : यदि विकल्प वास्तव में ठीक निकले तो आवश्यकता संतुष्टि प्राप्त हो जाती है।

(6) **तनाव से मुक्तिः** आवश्यकता के संतुष्ट होते ही संबंधित व्यक्ति को तनाव से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त अभिप्रेरण से स्पष्ट होता है कि जब कोई व्यक्ति बढ़िया कार्य निष्पादन करता है तो पर्दे के पीछे उसकी कोई आवश्यकता उस पर ऐसा करने के लिए दबाव बनाए रखती है। अतः आवश्यकताऐं व्यक्ति को लगातार अभिप्रेरित करती है।

9.4 अभिप्रेरण का महत्व

रीनसिस लिकर्ट ने अभिप्रेरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए इसे 'प्रबन्ध का हृदय' बताया है। इसी प्रकार ऐलन ने अभिप्राय के महत्व तथा आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा है कि ''अपर्याप्त रुप से अभिप्रेरित व्यक्ति सर्वाधिक सुदृढ़ संगठन को भी प्रभावहीन कर देते हैं। अभिप्रेरण का महत्व अग्रलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है :

(1) **निष्पदान स्तर में सुधार** : एक व्यक्ति की कुशलता पर कार्य करने की योग्यता तथा कार्य करने की इच्छा दोनों का प्रभाव पड़ता है। कार्य करने की योग्यता तो शिक्षण व प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति बहुत पढ़ा–लिखा है और इस योग्यता के आधार पर उसे नियुक्त कर लिया गया है। लेकिन यह जरुरी नहीं है कि वह बढ़िया काम करेगा। बढ़िया काम करवाने के लिए उसमें इच्छा जागृत करनी होगी और ऐसा अभिप्रेरण से ही संभव है। अतः अभिप्रेरण से कुशलता में सुधार होता है। एक कर्मचारी की कुशलता ''उत्पादकता में वृद्धि'' तथा ''लागतों में कमी'' के रुप में दृष्टिगोचर होती है।

(2) **कर्मचारियों की नकारात्मक अथवा उदासीनता मनोवृत्ति को बदलने में सहायकः** संगठन में कुछ व्यक्ति नकारात्मक मनोवृत्ति के होते हैं। वे हमेशा सोचते हैं कि अधिक काम करने से कोई लाभ नहीं। प्रबन्धक विभिन्न अभिप्रेरक विधियों का प्रयोग करके इस मनोवृत्ति को बदलता है। उदाहरण के लिए, यदि ऐसे कर्मचारी की वित्तिय स्थिति कमजोर है तो ''पारिश्रमिक बढ़ाकर'' अथवा यदि वित्तीय ठीक है तो 'काम' की प्रशंसा करके' अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(3) **कर्मचारी आवागमन में कमीः** कर्मचारियों के आवागमन की ऊँची दर से संस्था की साख प्रभावित होती है। इससे प्रबन्धकों के समक्ष अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। बार–बार कर्मचारियों की नियुक्ति करना, उनके शिक्षण व प्रशिक्षण की व्यवस्था करना आदि समस्याओं में समय व धन दोनो की बर्बादी होती है। एक संस्था को इस बर्बादी से केवल अभिप्रेरण ही बचा सकती है। अभिप्रेरित व्यक्ति संस्था में अधिक समय तक कार्य करते हैं और उनकी आवागमन की दर में भी कमी आती हे।

(4) **संगठन में अनुपस्थिति दर घटाने में सहायकः** कुछ संगठनों में अनुपस्थिती दर अधिक होती है। इसके मुख्य कारण ये है :

- काम की घटिया दशाएं
- सहयोगियों एवं अधिकारियों से घटिया संबंध
- संगठन में पहचान न मिलना
- अपर्याप्त पुरस्कार आदि

एक प्रबन्धक इन सभी कमियों को दूर करके कर्मचारियों का अभिप्रेरित करता है। अभिप्रेरित कर्मचारी काम से अनुपस्थित नहीं रहते क्योंकि काम का स्थान उनके लिए खुशी का स्रोत है।

(5) **परिवर्तन के विरोध में कमी**: संगठन में नये–नये परिवर्तन होते रहते हैं। प्रायः कर्मचारी जिस तरह के ढांचे में कार्य कर रहे होते हैं वे उसमें कोई परिवर्तन स्वीकार नहीं करते जबकि समय की मांग को देखते हुए परिवर्तनों को लागू करना जरुरी होता है। इन परिवर्तनों को केवल अभिप्रेरण द्वारा ही आसानी से स्वीकृत करवाया जा सकता है। अभिप्रेरित व्यक्ति उत्साह के साथ इन्हें स्वीकार करते हुए कार्य निष्पादन करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 क्या अभिप्रेरण एक प्रक्रिया है?
प्र.5 असंतुष्ट आवश्यकता का क्या अभिप्राय हैं?
प्र.6 अभिप्रेरण की क्या महत्ता है?

9.5 अभिप्रेरण के सिद्धान्त

क. **अभिप्रेरण के सिद्धांत**

भय एवं दंड का सिद्धांत या विचारधारा अभिप्रेरण की सबसे प्राचीन विचारधारा है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति पेट के लिए कार्य करता है। अतः यदि श्रमिकों एवं कर्मचारियों को भय दिखाया जाये कि काम न करने पर अथवा मंद गति से काम करने पर उन्हें सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा तो वे घबराकर कार्य करेंगे। इसी प्रकार दंड का भय भी श्रमिकों एवं कर्मचारियों से कार्य करा सकता है। औद्योगिक क्रांति की प्रारम्भिक अवस्था में यह विचारधारा सफल रही लेकिन कालांतर में इसका महत्व कम होता

गया और वर्तमान समय में भय दिखाकर अथवा दंड देकर कार्य कराना अमानवीय समझा जाने लगा है।

ख. **पुरस्कार का सिद्धान्त** – अभिप्रेरण में पुरस्कार सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय **एफ.डब्लयू टेलर** को जाता है। यह विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि अच्छा पुरस्कार कर्मचारियों को अधिकाधिक उत्पादन के लिए अभिप्रेरित करता है। जितना अधिक पारिश्रमिक अथवा प्रतिफल कर्मचारियों को मिलेगा, वे उतनी अधिक लगन एवं परिश्रम से कार्य करेंगे। अच्छा पुरस्कार और अच्छी कार्य दिशाएं श्रमिकों को संतुष्ट बनांएगी जिससे उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। टेलर के अनुसार मौद्रिक अभिप्रेरणाएं कार्यरत श्रमिकों में कार्य के प्रति इच्छा शक्ति एवं उत्साह जागृत करने के लिए महत्वपूर्ण है। अतः उत्पादन में वृद्धि के लिए इन्हीं को आधार बनाना होगा। यह विचारधारा कार्य करने के वातावरण में मानवीय संबंधों को सर्वश्रेष्ठ बनाने पर भी बल देती हैं। लेकिन आधुनिक प्रबंध विद्वानों का विचार है कि पुरस्कार एक उत्तप्रेरक तत्व है ना कि अभिप्रेरण का साधन। श्रम श्रमिकों को संतुष्टि तो प्रदान कर सकता है लेकिन उन्हें अभिप्रेरण नहीं प्रदान कर सकता। **पीटर एफ. ड्रकर** के भी इस संबंध में यही विचार हैं कि मौद्रिक पुरस्कार से संतुष्ट होना पर्याप्त अभिप्रेरण नहीं है।

ग. **केरेट एवं स्टिक सिद्धान्त** – अभिप्रेरण का यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि श्रमिक एवं कर्मचारियों को दंड एवं पुरस्कार दोनों के समिश्रण से अभिप्रेरित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिन श्रमिकों का कार्य निष्पदान निश्चित न्यूनतम स्तर से नीचा हो उन्हें दंड दिया जाना चाहिए। इस प्रकार यह विचारधारा अभिप्रेरण के लिए पुरस्कार को शर्तायुक्त बना देता है। यह दृष्किोण कुछ विशेष परिस्थितियों में ही प्रभावी होता है। **मैंक्ग्रेगर** के अनुसार, ''यह विचारधारा एक बार व्यक्ति के पर्याप्त जीवन स्तर पर पहुंच जाने के बाद कार्य करती है तब श्रमिक मुख्य रुप से उच्चतम आवश्यकताओं द्वारा अभिप्रेरित होता है। इस प्रकार यह विचारधारा केवल उन व्यक्तियों को ही प्रभावी ढंग से अभिप्रेरित करती है जिनकी जीवन निर्वाह, मनोवैज्ञानिक एवं सुरक्षा आवश्यकताएं पूरी नहीं हो सकी हैं।''

सिद्धान्त का लागू होना

अभिप्रेरण के इस सिद्धान्त में प्रबंधकों के लिए अनेक मार्ग दर्शाये गये, जो कि निम्नलिखित हैं:

(i) प्रबंधकों को ऐसे पारितोषिक या कमियों को निश्चित करना होगा जिन्हें कर्मचारी या श्रमिक प्राथमिकता देते हैं।

(ii) प्रबंधकों को यह भी निश्चित करना होगा कि निष्पादन के कौन–कौन से स्तर होगें, उत्पाद की लागत क्या आएगी तथा वस्तु की किस्म के प्रमाप क्या होंगे?

(iii) प्रबंधकों को कार्य की दशाओं, अनौपचारिक समूहों, निष्पादन की आवश्कताओं के बारे में आधार निर्धारित करने होगे।

(iv) निष्पादन मूल्यांकन तथा पारितोषक पद्धतियों के निर्धारण में प्रबंधकों को वास्तविक निष्पादन पर ध्यान देना होगा कि मनुष्यों को जो पारितोषिक दिया जा रहा है वह उचित है या नहीं, उन्होनें संगठन में कितने दिन कार्य किया है।

(v) कार्यों मे भी आधुनिक ढंग से सुधार किया जा सकता है ताकि उनमें होने वाली घटनाओं को न्यूनतम किया जा सके।

सिद्धान्त का आलोचन

इस सिद्धान्त को काफी लाभप्रद बताया गया है परन्तु फिर भी आलोनाओं से मुक्त नहीं है। ये निम्नलिखित है –प्रबंधकों को ऐसे पारितोषिक या कमियों को निश्चित करना होगा जिन्हें कि कर्मचारी या श्रमिक प्राथमिकता देते हैं।

(i) मनुष्य की सभी इच्छाओं को पूर्णरुप से संतुष्ट नहीं किया जा सकता। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी रह जाती हैं जो अनेक कारणो से संतुष्ट नहीं हो पातीं।

(ii) यह भी कोई वास्तविकता नही है कि व्यक्ति अभिप्रेरणा के संबंध में स्वयं चयन करेंगे।

(iii) यह भी कोई वास्तविकता नहीं है कि उच्च आशावादी सिद्धांत होगा तो अभिप्रेरण का स्तर भी ऊंचा होगा।

यद्यपि आशावादी सिद्धांत कि उपरोक्त आलोचनाएं की गई हैं परन्तु इसका आशय यह नही है कि यह सिद्धान्त निरर्थक है। यदि इसका उचित ढंग से प्रयोग एवं इस पर उचित नियंत्रण किया जाए तो निश्चित है कि अमुक आलाचनाओं का उन्मूलन किया जा सकता है तथा आशावादी दृष्टिकोण सार्थक हो सकता है।

9.5.1 अभिप्रेरण की विचारधारा

1. **मास्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता विचारधारा**

मास्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता विचारधारा के जन्मदाता अब्राहम मास्लो हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम 1943 में अभिप्रेरण का आवश्यकता–प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तुत किया। मास्लो की विचारधारा को आवश्यकताओं की क्रमबद्धता के आधार पर विकसित किया है। उनके अनुसार एक व्यक्ति की आवश्यकताएं असंख्य हैं और इनका प्राथमिकता के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जो आवश्यकताएं अधिक तीव्र हैं उन्हे पहले संतुष्ट करने की कोशिश बाद में की जाएगी तथा इसी प्रकार कम तीव्र आवश्यकताओं के बारे में विचार किया जाएगा। मास्लो ने मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को प्राथमिकता के आधार पर पाँच भागों मे विभक्त किया है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता हैः

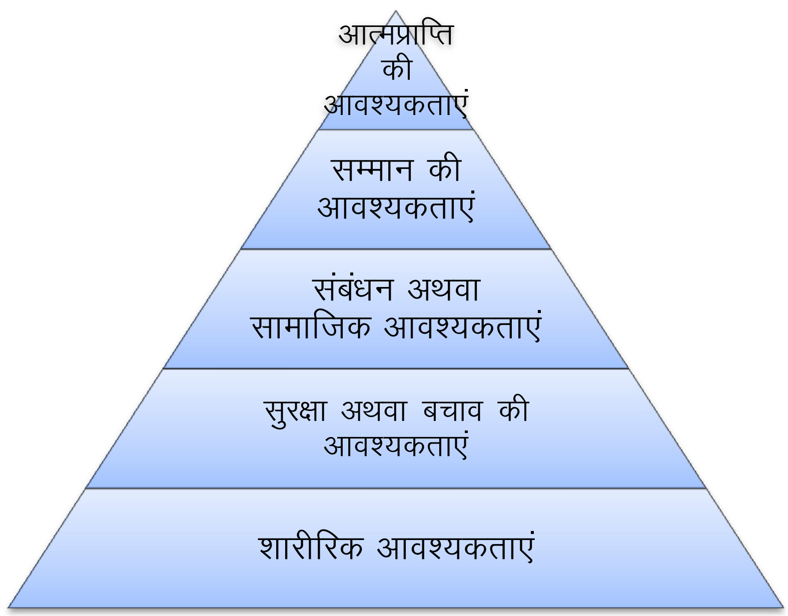

चित्र – 9.2 मास्लो का आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम का

(i) **भारीरिक आवश्यकताएं** : इस श्रेणी में वे आवश्यकताएं सम्मिलित की जाती हैं जिनको मनुष्य के जीवित रहने के लिए सबसे पहले संतुष्ट किया जाता है। इनमें खाने के लिए भोजन, रहने के लिए आश्रय (मकान), पहनने के लिए वस्त्र, आराम के लिए निद्रा आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(ii) **सुरक्षाा अथवा बचाव की आवश्यकताएंः** शारीरिक आवश्यकताएं संतुष्ट हो जाने के बाद मनुष्य का ध्यान अपनी सुरक्षा की ओर जाता है। सुरक्षा आवश्यकताओं का अभिप्राय भौतिक व आर्थिक सुरक्षा से है। भौतिक सुरक्षा का अर्थ दुर्घटना, आक्रमण, बीमारी व अन्य आकस्मिकताओं से बचाव करना है। आर्थिक सुरक्षा का अभिप्राय रोजगार को सुरक्षित रखना व बुढ़ापे की व्यवस्था करना है।

(iii) **संबंधन अथवा सामाजिक आवश्यकताएं** : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में सम्मानपूर्वक रहना चाहता है। जिसके लिए यह आवश्यक है कि उसके मित्र व संबंध हों जिनके साथ वह अपना दुःख–सुख बांट सके। मास्लो ने इन आवश्यकताओं के प्राथमिकता में तीसरे स्थान पर रखा है।

(iv) **सम्मान की आवश्यकताएं :** सम्मान की आवश्यकता मनुष्य की अहम आवश्यकता है। इनका अभिप्राय यह हे कि मनुष्य ऊँचा पद प्राप्त करना चाहता है जिससे उसकी शक्ति बढे व अधिकार प्राप्त हो।

(v) **आत्म प्राप्ति की आवश्यकताएं** : आत्म प्राप्ति आवश्यकताओं का अभिप्राय एक व्यक्ति की क्षमता को उच्चतम स्तर तक ले जाने की चाह से है। उदाहरणार्थ एक संगीतकार संगीत कला में निपुण होना चाहता है और इसी प्रकार एक कवि कविता लिखने का विशेषज्ञ बनना चाहता है।

- **मास्लो की विचारधारा की मान्यताएं**

मास्लो की विचारधारा की मान्यताएं निम्न हैं।

(i) लोगों का व्यवहार, उनकी आवश्यकताओं से प्रभावित होता है।

(ii) लोगों की आवश्यकताएं अनेक हैं और उनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

(iii) संतुष्ट आवश्यकता से अभिप्रेरण बंद हो जाती है इसके बाद अगली उच्चस्तरीय आवश्यकता अभिप्रेरण का काम करती है।

(iv) लोग अगली उच्चस्तरीय आवश्यकता पर तभी जाते हैं जब निम्नस्तरीय आवश्यकता संतुष्ट हो जाती है।

व्यक्तिगत एवं संगठन संबंधी आवश्यकताओं का क्रम

मास्लो विचारधारा के आधार पर एक व्यक्ति की व्यक्तिगत एवं संगठन संबंधी आवश्यकताओं के क्रम को निम्न उदाहरण में समझा जा सकता हैः

व्यक्तिगत आव□यकता क्रम		संगठन संबंधी आव□यता क्रम
5– स्वयं संतुष्टि		5– लक्ष्यों की प्राप्ति
4– पद		4– जॉब
3– मित्रता		3– सहयोगियों से मधुर संबंध
2– आय		2– पेशन योजना
1–भूख		1–मूल वेतन

सारणी–1 **सारणी–2**

(1) **व्यक्तिगत आव□यकता क्रम** : संगठन से बाहर व्यक्तिगत रुप में एक व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाली आवश्कताओं के क्रम को सारणी–1 में दिखाया गया है।

(2) **संगठन संबंधी आव□यकता क्रम**: संगठन के अंदर एक व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाली आवश्यकताओं के क्रम को सारण–2 में दिखाया गया है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनेक हैं तथा उनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है। जैसे ही मनुष्य की पहली आवश्यकता पूरी होती है वह दूसरी आवश्यकता के बारे में चिन्तित हो जाता है, उसके बाद तीसरी और फिर यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि सभी आवश्यकताएं संतुष्ट नहीं हो जाती। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की आवश्यकताएं ही उसके लिए अभिप्रेरण का काम करती हैं अर्थात् मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए स्वयं ही पूरी क्षमता से कार्य करना चाहता है।

- **आलोचना**

यदि विशेष अध्ययन न किया जाये तो मास्लो की आवश्यकताओं की प्राथमिकता संबंधी विचारधारा उचित प्रतीत होती है लेकिन विभिन्न शोधकर्ताओं ने इस विचारधारा को अपना मत देते हुए निम्न आलोचनाएं की हैं:

(i) मास्लो का आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम स्थायी नहीं है। यह परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

(ii) यह आवश्यक नहीं है कि एक समय पर एक ही वर्ग की आवश्यकताएं प्रबल हों और शेष महत्वहीन रहें।

9.5.2 मैक्ग्रेगर का 'एक्स' तथा 'वाई' सिद्धान्त

डगलस मैक्ग्रेगर ने मानवीय अभिप्रेरण के संबंध में ''एक्स'' विचारधारा तथा ''वाई'' विचारधारा की विवेचना की है। **मैस्लो** के आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम का समर्थन करते हुए संगठन में कर्मचारियों की अभिप्रेरण को बढ़ाने के लिए विकेंद्रीकरण तथा विस्तार अधिकर सौंपने, कार्य विस्तार, भागीदारी, प्रामर्शत्मक प्रबंध तथा प्रगति मूल्यांकन आदि प्रणलियों का सुझाव दिया है। मैक्ग्रेगर की एक्स विचारधारा की यह मान्यता है कि औसत कर्मचारी आलसी होते हैं कार्य से मन चुराते हैं उनमें कार्य करने की इच्छा नहीं होती, वे उत्तरदायित्वों को टाल देना चाहते हैं, वे आलसी होते हैं और संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति से उनका कोई संबंध नहीं होता। इसलिए किसी उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्रप्ति के लिए कर्मचारियों पर आवश्यक दबाव एवं नियंत्रण रखना पड़ता है। लेकिन कर्मचारी की प्रकृति के संबंध में ''एक्स विचारधारा'' की मान्यताएं ठीक नहीं हैं और मान्यताओं के आधार पर कर्मचारियों को अभिप्ररित करने के लिए आरंभ की गई प्रत्येक योजना सफलता प्राप्त नही कर सकती ।

उल्लेखनीय है कि सिद्धान्त एक्स आधुनिक समय में एकदम अवांछनीय हो गया है क्योंकि यह अधिनायकवादी परंपरा पर आधारित है जो आज संभव नहीं है। प्रबंधकों को साफ कर लेना चाहिए कि संगठन में काम कर रहा इन्सान सबसे संवेदनशील घटक है जिसका सावधानीपूर्व नियंत्रण किया जाना चाहिए। अस्थायी समय के लिए ही उत्पीड़न दवाब, डर या दंड के रास्तों से काम कराया जा सकता है। स्वयं मैक्ग्रेगर ने इस सिद्धान्त को खारिज करते हुए लिखा हैः

''सिद्धान्त एक्स का परंपरागत पहुंच इन गलत धाराणओं पर आधारित है कि क्या कारण है तथा क्या परिणाम है।''

सिद्धान्त ''वाई' की विचारधारा

सिद्धान्त ''वाई' सिद्धान्त ''एक्स'' से पूरी तरह विपरीत है। यह मान्यता है कि संगठन के उद्देश्य तथा व्यक्तियों के उद्देश्य बहुत महत्व के नहीं होते लेकिन अधिकांश संगठनों में मूल समस्या होती है संगठनात्मक उद्देश्यों के प्रति श्रमिकों की वचनबद्धता पाना। श्रमिकों की वचनबद्धता विशेषतः उच्च या बाह्य आवश्यकताओं की संतुष्टि से प्रत्यक्षतः संबंधित है।

वाई–विचारधारा मानवीय व्यवहार चित्रण प्रस्तुत करती है। इस विचारधार की मान्यता है कि जिस प्रकार व्यक्ति के लिए आराम करना और खेलना स्वाभाविक है, ठीक उसी प्रकार कार्य करना भी स्वाभाविक है। औसत कर्मचारी उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने की कला सीख सकते हैं। व्यक्ति स्वतः अपने से अधिक अनुभवी व्यक्तियों से निर्देशन प्राप्त कर सकते हैं एवं यदि उन्हें ठीक ढंग से अभिप्रेरित किया जाये तो वे सृजनशीलता से कार्य कर सकते हैं। मैकग्रेगर के अनुसार, ''एक प्रभावशाली संगठन वह है जिसमें निर्देशन एवं नियंत्रण के स्थान पर सत्यनिष्ठा एवं सहयोग हो और जिसके प्रत्येक निर्णय में, निर्णय से प्रभावित होने वाले को सम्मिलित किया जा सकता है।''

सारांश के रुप में, मैग्कग्रेगर का विचार है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबंघकों को चहिए कि वे विकेंद्रीकरण, कार्य विस्तार, तथा भागीदारी व परामर्शत्मक प्रबंध प्रणलियों का प्रयोग करे और कर्मचारियों को स्वयं अपना कार्य तय करने तथा अपने दायित्व का स्व – मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करे। मैक्ग्रेगर के अनुसार, प्रबंधक एक शिक्षक, परामर्शदाता तथा सहयोगी तो है लेकिन अधीक्षक नहीं है ।

एक्स तथा वाई सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	एक्स सिद्धान्त	वाई सिद्धान्त
1	सामान्य व्यक्ति कार्य के प्रति सुस्त, आराम पसंद एवं अपरिपक्व होता है अर्थात वह काम से दूर रहना ही पसंद करता है।	सामान्य व्यक्ति के लिए बौद्धिक और शारीरिक कार्य उतना ही आवश्यक है जितना भोजन और आराम करना।
2	कार्य के प्रति विमुखता के कारण अधिकतर व्यक्तियों से कार्य करवाने के लिए उत्पीड़न, कठोर नियंत्रण एवं भय का वातावरण बनाना पड़ता है।	संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बाह्य नियंत्रण या दंड का भय ही एकमात्र तरीका है।
3	सामान्य व्यक्ति में उत्तरदायित्व एवं पहल की भावना का अभाव पाया जाता है।	सामान्य व्यक्ति उपयुक्त परिस्थिति में न रहकर केवल दायित्व ग्रहण करने का इच्छुक होता है वरन उसमें पहल और कल्पना करने की भावना भी होती है। परंतु इसके लिए वातावरण का संतोषप्रद होना आवश्यक है।
4	सामान्य व्यक्ति महत्वाकांक्षी नहीं होता	सामान्य व्यक्ति महत्वाकांक्षी होता है ,

	वरन निर्दशन एवं आदर्श प्राप्त करना पसंद करता है।	स्वयं निर्देश प्राप्त करता है और नियंत्रित होता है।
5	सामान्य व्यक्ति सुरक्षा को सर्वाधिक महत्व देता है।	उद्देश्यों के प्रति वचनबद्धता, उद्देश्यों की प्राप्ति से प्राप्त होने वाले पारितोषिक से संबंधित होता है।
6	यह परंपरागत, कठोर, तानाशाही विचारधारा है।	यह विचार आधुनिक मानवीयता से ओत–प्रोत एवं सहभागिता में विश्वास करता है

9.5.3 हर्जबर्ग का अभिप्रेरण स्वास्थ्य सिद्धान्त या द्वि–घटक सिद्धान्त

हर्जबर्ग ने अभिप्रेरण की एक नवीन विचारधारा का विकास किया। इस विचारधारा को स्वास्थ्य या आरोग्य विचारधारा के नाम से जाना जाता है। हर्जबर्ग और उनके साथियों ने ''साइकोलोजिकल सर्विस, पिटसबर्ग'' में अनेक अध्ययनों के आधार पर इस विचारधारा का विकास किया। हर्जबर्ग ने स्पष्ट किया कि मनुष्य की आवश्यकताओं को दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है जो परस्पर एक–दूसरे से संबंधित है और मानवीय व्यवहार को अलग–अलग ढंग से प्रभावित करती है। अनुरक्षक, आरोग्यवर्धक अथवा असंतोषजनक तत्व का अभिप्राय उन तत्वों से है जिनकी विद्यमानता कर्मचारियों को अधिक उत्साह से काम करने के लिए प्रेरित नहीं करते लेकिन जिनकी अनुपस्थिति उनमें एक भयंकर एवं विस्फोटक असंतोष को जन्म देती हैं। ये प्रायः कार्य के वातावरण से संबंध रखते हैं और उनमें निम्नलिखित दस तत्व शामिल होते हैं:

1. कंपनी नीति तथा प्रशासन
2. तकनीकि निरीक्षण
3. अधीनस्थ के साथ पारस्परिक व्यक्तिगत संबंध
4. सहकर्मियों के साथ पारस्परिक संबंध
5. निरीक्षकों के साथ पारस्परिक व्यक्तिगत संबंध
6. पारिश्रमिक
7. कार्य सुरक्षा
8. व्यक्तिगत जीवन
9. कार्य करने की दशाएं
10. पदस्थिति

हर्जबर्ग ने संतुष्टि प्रदान करने वाले घटकों को 'अभिप्रेरित या तथ्य घटक या तत्प' के नाम से संबोधित किया है। ये सभी तत्व मनुष्य को अधिक कुशलता के साथ कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। इन सभी घटकों को हर्जबर्ग एवं उनके सहयोगियों ने कार्य के आंतरिक घटक माना है। ये तत्व प्रायः कार्य से संबंधित होते हैं। अतः इन्हें कार्य तत्व भी कहा जाता है। इसमें 6 तत्व शामिल है–

1. उपलब्धि या कार्य सफलता
2. मान्यता
3. उन्नति
4. स्वयं कार्य
5. प्रगति के अवसर
6. उत्तरदायित्व

हर्जबर्ग के सिद्धांत की भी अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। कुछ विद्वान इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि हर्जबर्ग द्वारा चर्चित आरोग्यवर्धक या अनपुरक्षण तत्व केवल असंतुष्टिजनक होते हैं, संतुष्टिजनक नहीं। हर्जबर्ग के सिद्धांत उन्हीं परिस्थितियों में अनुकूल परिणाम देते है जब उसे उसी विधि से आयोजित किया जाये जिस विधि से हर्जबर्ग ने आयोजित की थी। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आज भी व्यावसायिक संगठन में अभिप्रेरण को बढ़ाने के लिए अनुरक्षण या आरोग्यवर्धक तत्वों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

वस्तुत हर्जबर्ग का सिद्धान्त द्विघटकीय अभिकल्पना पर आधारित है अर्थात कार्य संतुष्टि की ओर ले जाने वाले घटक। इन घटकों के आधार पर इस परिणाम पर पहुचते हैं कि यदि कार्य चुनौतिपूर्ण हो तथा मनोरंजक हो, उसमें विकास की संभावनाएं हों तथा अपने विवेक से काम लेने का अधिकार हो तथा पेशे में आगे बढ़ने की योग्यता हो तथा किये गये काम के लिए उचित मान्यता प्राप्त होती हो तो लोग अभिप्रेरित अनुभव करते हैं।

9.5.4 क्लेटन एल्डफर की ई.आर.जी विचारधारा

येल विश्वविद्यालय के **वलेटर एल्डफर** ने त्रिस्तरीय आवश्यकता प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तावित करके मैस्लो के सिद्धान्त की पुनः अभिव्यक्ति की। ई.आर.जी का अर्थ है अस्तित्व, संबद्धता तथा विकास आवश्यकताएं। क्लेटन के अनुसार एक से अधिक स्तरों पर आवश्यकताएं किसी भी समय विशेष कर

सक्रिय रहती है तथा आधार से प्राथमिकता में उच्च स्तर तक उनमें उर्ध्वाधर तथा अधोगामी गतिशीलन होता जाता हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी उच्च स्तरीय आवश्यकताओं को संतुष्ट न कर पाने के कारण परेशान सा रहता है तो वह उससे निचले स्तर की आवश्यकता की ओर वापिस आना तथा उनको पूरा करके ही संतुष्टि अनुभव करेगा।

अंग – एल्डफर की विचारधारा के निम्न चार अंग हैं –

(i) **संतुष्टि आरोह** – यह तत्व मास्लो की विचारधारा में भी लागू होता है। इसका आशय यह है कि जब निम्नस्तर की आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तो उच्च स्तर की आवश्यकताएं जागृत हो जाती है तथा महत्वपूर्ण बन जाती हैं।

(ii) **नैरा□य या विफलता** – निराशा उस समय होती है जब व्यक्ति किसी आवश्यकता की पूर्ति में असफल हो जाता है। इस निराशा से व्यक्ति के लिए असंतुष्ट आवश्यकता और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है तथा वह अधिक शक्ति के साथ उसकी पूर्ति का प्रयास करता है जब तक कि वह लगातार सफल न हो जाये।

(iii) **नेरा□य प□चगमन** – इस अवस्था में जब व्यक्ति को किसी आवश्यकता की पूर्ति के संबंध में बार–बार निराशा का अनुभव होता है तो वह निम्न स्तरीय आवश्यकता, जोकि उसे अधिक यथार्थपूर्ण एवं पहुंच योग्य लगती हैं, पर अपना ध्यान केंन्द्रित करने लगता है।

(iv) **अभिलाशा** : यह अंग स्पष्ट करता है कि विकास अपनी प्रकृति के कारण गहन रुप से संतृतकारी होता है। एक व्यक्ति जितना अधिक विकास करता है वह उतना ही और अधिक विकास करना चाहता है। अतः विकास आवश्यकता को जितना अधिक पूरा किया जाए वह महत्वपूर्ण बन जाती है तथा व्यक्ति उसकी पूर्ति के लिए उतना ही अधिक अभिप्रेरित होता है।

ई.आर.जी विचारधारा के निहितार्थ – एल्डफर का ई.आर.जी सिद्धान्त स्पष्ट दिशानिर्देशन नहीं करता। यह कहता है कि पहले कोई भी जीवन की आवश्यकताएं संतुष्ट करनी होती हैं। इस नियम के अनुसार आवश्यकताएं समान परिचालन करते हैं। यदि संतुष्टि के किसी विशेष मार्ग पर बाधाएं आती हैं तो वह उस जरुरत को भी संतुष्ट करने का प्रयत्न करेगा जो आसानी से संतुष्ट हो सकती हों। एल्डफर का सिद्धांत आवश्यकताओं के वर्गीकरण, उनके संबंध, संतुष्टि के उपरिगमन एवं प्रतिगमन को बताता है।

9.5.5 मैक्लेलैंड का प्रकट या अर्जित आवश्यकता सिद्धान्त

हावर्ड विश्वविद्यालय के डेविड मैक्लेलैंड ने जॉन अटकिन्सन तथा दो अन्य के साथ मिलकर 1948 मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त मर्रे के आवश्यकता सिद्धान्त में विश्वास रखता है । मर्रे ने लगभग दो दर्जन से अधिक आवश्यकताओं को परिभाषित किया। उनका विश्वास था कि अधिकांश आवश्यकताएं जन्मजात उत्पन्न होती हैं। आवश्यकताएं तभी लागू होती हैं जबकि बाहरी वातावरण की दशाएं भी अनुकूल हों, ये आवश्यकताएं एक–दूसरे से भिन्न भी हो सकती हैं। 1948 के उपरान्त मैक्लेलैंड का यही प्रयास रहा कि प्राप्ति के लिए आवश्यकताओं की खोज की जाए। काफी खोजबीन के उपरान्त इन्होंने तीन ऐसी प्रमुख आवश्यकताओं को वर्गित किया जो किसी व्यक्ति को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती हों। ये आवश्यकताएं निम्न प्रकार से हैं :–

(i) **उपलब्धि के लिए आवश्यकता** – बाहरी प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों का सामना करने के लिए उपलब्धि प्राप्त करना अति आवश्यक हैं। इसके लिए अनेक प्रमाप निर्धारित करने पड़ते हैं। उपलब्धि किसी एक साधन से संभव नहीं है। इसके लिए अनेक तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। श्रेष्ठ बनने के लिए इच्छा, प्रमापकों के मध्य संबंध स्थापित करने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। समाधान करने के लिए अपने–अपने उत्तरदायित्व को पूरा करना पड़ता है। आधुनिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों को इस प्रकार लेकर चलना पड़ता है कि उनका समाधान न तो ज्यादा कठिन हो न सरल। उद्देश्यों को पूरा करने हेतु तथा उपलब्धि को प्राप्त करने लिए इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न करना पड़ता है कि कमियों को दूर किया जा सके। उपलब्धि प्राप्त करने के लिए उन्हें कर्म पर विश्वास रखना पडता है न कि भाग्य पर। भाग्य के भरोसे छोड़कर किसी भी प्रकार की उपलब्धि नहीं प्राप्त की जा सकती। उनका मुख्य आकर्षण उपलब्धि की तरफ होता है धन की तरफ नहीं। धन तो उनके लिए उपलब्धि का केवल एक साधन मात्र होता है। उन्हें आवश्यकता होती है कार्य में स्वतंत्रता एवं नियंत्रण की।

मैक्लेलैंड ने उपलब्धि के लिए आवश्यकता को महत्वपूर्ण माना है। उपक्रम ही अर्थिक विकास के मुख्य आधार होते है। वे देश जो कि उपलब्धि के क्षेत्र में आगे रहे हैं – जापान, पश्चिमी यूरोप, तथा यू.एस हैं। मैक्लेलैंड ने आर्थिक विकास के कारणों का महत्वपूर्ण अध्ययन किया

तथा ऐसे कारणों का पता लगाया जो कि उपलब्धि तथा आर्थिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं इस क्षेत्र में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका विकसित देश हैं।

(ii) **भक्ति के लिए आव□यक** : अन्य व्यक्तियों, दशाओं पर इस प्रकार नियंत्रण करना कि शक्ति की इच्छा उत्पन्न हो सके। अन्य व्यक्तियों को ऐसा व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करना अथवा उनके अंदर ऐसी इच्छा उत्पन्न करने जैसा व्यवहार वे अन्यथा नहीं कर पाते। इसके अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है– विभिन्न संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की योग्यता जोकि शक्ति के संसाधन हों, जैसे – सूचना, ज्ञान, धन इत्यादि। परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें नेतृत्व, राजनीतिक, कानूनी, व्यवसाय तथा शिक्षा जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है। अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने की शक्ति का होना नितांत आवश्यक है।

मैक्लेलैंड का कहना है कि संगठनों में प्रबंधकीय व्यवहार के बारे में स्पष्ट रुप से वर्णन किया जाना चाहिए। प्रबंधकगण को अपने अधिकारों का प्रयोग दूसरों के द्वारा किए गए कार्यों, निर्णय लेने, संसाधनों का उपयोग करने तथा घटनाओं को प्रभावित करने से करना पड़ता है।

मैक्लेलैंड ने विस्तार संबंधी व्यक्तित्व परीक्षणों के द्वारा उपरोक्त अभिप्रेरणाओं के सामर्थ्य को विभिन्न व्यक्तियों में मापा। मैक्लेलैंड के अनुसार कुछ व्यक्तियों में उपलब्धियों की तीव्र इच्छा होती है तथा वे किसी भी स्थिति में सर्वात्कृष्ट से काम को स्वीकार नहीं करते हैं। उच्च महात्वाकांक्षी भारी जोखिम वहन करते हैं तथा वे तब तक संतुष्ट नहीं होते जब तक कि उन्होंने कार्य की पूर्णता के लिए अधिकतम प्रयास नहीं किया हो। द्वितीय श्रेणी के व्यक्ति अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हें संबद्धता या संबंध की अत्यधिक आवश्यकता होती है, प्रेम से उत्पन्न होने वाले सुख की इच्छा करते हैं तथा वे घृणा किए जाने वाले कार्य से उत्पन्न होने वाले दुख से बचने का प्रयास करते हैं। तृतीय श्रेणी के व्यक्ति जिन्हें शक्ति की अत्याधिक आवश्यकता होती है, प्रभाव तथा नियंत्रण करने के इच्छुक होते हैं।

9.5.6 ब्रूम की प्रत्या□ाा विचारधारा या सिद्धान्त

अभिप्रेरणा के संबंध में 1964 में विक्टर ब्रूम ने प्रत्याशा विचारधारा का प्रतिपादन किया था। ब्रूम का मत था कि संतुष्टि घटक सिद्धान्त कार्य अभिप्रेरण प्रक्रिया की व्याख्या स्पष्ट रुप से नहीं कर पाते। अतः विकल्प के रुप में उन्होंने अभिप्रेरण की प्रक्रिया विचारधारा का प्रतिपादन किया जो

मनोविज्ञानिक **कुर्त लेविन, एडवर्ड टोलमेन** की संज्ञानात्मक अवधारणाओं तथा अर्थशास्त्र के चयन व्यवहार व उपयोगिता सिद्धान्तों पर आधारित है।

यह अभिप्रेरण, निष्पादन तथा कार्य संतुष्टि के कारणों को विभिन्न विवरण प्रदान करता है। इस सिद्धान्त के अंतर्गत व्यक्ति अपने कार्य का चयन करता है। सभी व्यक्ति अपने उद्देश्यों, आवश्यकताओं, मूल्यों, कुशलताओं, योग्यताओं तथा भूमिकाओं के संबंध में सतर्क रहते है। उनके अंदर भी अपने कुछ अरमान होते हैं। कुछ व्यक्तिगत गुण होते है जिनके आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकताओं, प्रयासों की प्राथमिकताओं तथा गणनाओं का अनुमान भी इन्हीं के आधार पर किया जाता है।

इस सिद्धान्त में मनुष्य की शक्ति को परिभाषित किया जाता है। यदि किसी श्रमिक का इस तथ्य में विश्वास है कि कठिन परिश्रम करना ही उच्च निष्पादन की कुंजी है, तो इसका आशय स्पष्ट है कि वह उच्च आशावादी है। यदि श्रमिक का यह दृढ़ विश्वास है कि उच्च निष्पादन से ही मजदूरी में वृद्धि होगी तो इसका आशय है कि उसमें तांत्रिकता है।

इस सिद्धान्त का निम्न रुपों में वर्गीकरण किया जा सकता हैः—

(i) किसी व्यक्ति के कार्य का निष्पादन अर्थात उसकी क्षमता केवल उसके द्वारा किए गए प्रयासों पर ही निर्भर नहीं करती वरन उसकी योग्यताओं, कुशलताओं, कार्य के उद्देश्यों की स्पष्टता, पर्यवेक्षण की किस्म, कार्य प्रबंध तथा तकनीक पर भी निर्भर करती है। आशावाद का स्तर इन सभी तत्वों से प्रभावित होता है।

(ii) यह भी कोई वास्तविकता नहीं है कि व्यक्ति अभिप्रेरण के संबंध में स्वयं चयन करेंगे।

(iii) व्यक्ति को विश्वास होना चाहिए कि जो कार्य वह कर रहा है वह अवश्य पूरा होगा तथा आशावादी दृष्टिकोण का सामना किया जा सकता है। यदि अभिप्रेरण को उच्च स्तर तक पहुंचाना हो तो इन सभी शर्तों को पूरा करना चाहिए।

व्रूम के सिद्धान्त में तीन चर होते हैं जिनको एक समीकरण के रुप में दिया गया है। चूँकि मॉडल सभी तीनों चरों का एक मल्टीप्लायर है अतः इसे अभिप्रेरित निष्पति चयनों के समावेश वाला अत्यधिक सकारात्मक मूल्य का होना चाहिए। यदि कोई भी चर शून्य है तो अभिप्रेरित निष्पति की संभावना भी शून्य होगा।

Motivation = Valence x Expectancy x Instrumentality

(i) **कर्षण–शक्ति** – इसे Reward Performance के रुप में जाना जाता है। यह एक पुरस्कार पाने के लिए एक व्यक्ति की प्राथमिकता की शक्ति का बोध कराता है। यह वह मूल्य है जो वह परिणाम या प्रतिफल पर डालता है । एक परिणाम या पुरस्कार से जुड़ा मूल्य व्यक्तिनिष्ठ होता है क्योंकि यह हर व्यक्ति में परिवर्तित होता है। कर्मचारी अपनी आयु, शिक्षा तथा कार्य प्रकार के अनुसार Valence के प्रति सापेक्षिक मूल्य जोड़ते है। Valence सकारात्मक तथा ऋणात्मक प्राथमिकता पर निर्भर करता है। यदि वह अपने परिणाम के प्रति तटस्थ होता है तो उसका **Valence** शून्य होता है।

(ii) **प्रत्याशा** – यह प्रयास–निष्पति संभावना है उस मात्रा तक जिस तक व्यक्ति विश्वास करता है कि उसके प्रयास परिणाम तक ले जाएंगे अर्थात एक कार्य की पूर्णतः प्रत्याशा किसी गतिविधि से एक परिणाम मात्र इंगित करती है–संभावना की मात्रा। यदि कर्मचारी अनुभव करता है कि किसी परिणाम को पाने के लिए यदि वह प्रत्याशा को उच्च आंकता है तो वह अपेक्षत परिणाम पाने के लिए कहीं अधिक प्रयास डालेगा।

(iii) **करणत्व**– इससे Performance Reward probability का बोध होता है अर्थात जिस संभावना को निष्पति अपेक्षित प्रतिफल तक ले जाएंगी। उदाहरण के लिए, यदि एक संगठन का एक उपखाता अधिकारी समझता है कि सुपीरियर तथा उच्च निष्पति पदोनति है तथा पदोनति द्वितीय स्तरीय परिणाम। इस मामले में सुपीरियर निष्पति पदोनति पाने मे तंत्र व्यवस्था का मूल्य 0 से 1 के बीच कर सकता है।

उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि अभिप्रेरणाएं, Valence Expectancy तक गुणनफल हैं। प्रत्याशा मॉडल में ये तीनों घटक अनेक संयोजनों में विद्यमान हो सकते हैं तो Valence के दायरे तथा Expectancy तथा Instrumentality की मात्रा पर निर्भर करता है।

वह संयोजन जो सबसे सुदृढ अभिप्रेरणा उत्पन्न करता है उच्च सकारात्मक Valence, high expectancy तथा Instrumentality होता है। यदि वे तीनों ही निम्न होते है तो अभिप्रेरणा कमजोर होगी लेकिन अन्य मामलों में अभिप्रेरण मध्यम होगी। इसी तरह व्यवहार की ताकत नकारात्मक Valence तथा Expectancy तथा Instrumentality घटकों द्वारा निर्धारित की जाएगी।

मान्यताएं – व्रूम की विचारधारा निम्न मान्यतओं पर आधारित हैं –

(i) कर्मचारी की उपेक्षाओं तथा कर्षण–शक्ति में अंतर होता है।

(ii) व्यवहार का निर्धारण व्यक्ति एवं वातावरण के निश्चित घटकों से होता है।

(iii) कर्मचारी कार्य के लिए तभी तैयार होता है जब उसे वांछित परिणामों की आशा होती हैं।

(iv) व्यक्ति अपने व्यवहार सबंधी निर्णय चैतन्यता से करता है।

9.6 वित्तिय /मौद्रिक तथा अवित्तिय/अमौद्रिक प्रेरणाएँ

प्रेरणा अथवा प्रोत्साहन एक ऐसी शक्ति है जो एक व्यक्ति को लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। ये दो प्रकार के होते हैं—वित्तीय तथा अवित्तीय। वित्तीय तथा अवित्तीय प्रेरणाओं के संदर्भ में कहा जाता है कि, ''जिस प्रकार चलने के लिए दायें एवं बाएं दोनों पैरों की आवश्यता होती है उसी प्रकार श्रमिकों को अधिक कार्य के लिए प्रोत्साहित करने हेतु वित्तीय एवं अवित्तीय दोनों प्रकार की प्रेरणाओं की जरुरत होती है।'' अर्थात दोनों का समान महत्व है और दोनों का एक साथ लागू किया जाना जरुरी है।

9.6.1 वित्तीय अथवा मौद्रिक प्रेरणाएँ

वित्तीय प्रेरणाएँ वे हैं जिनका मूल्यांकन मुद्रा के रुप में किया जा सके। यहां मुद्रा में मुल्यांकन का आशय यह है कि जरुरी नहीं है कि सभी अभिप्रेरणाएँ नकदी के रुप में दी जाएं बल्कि कुछ ऐसी सुविधाएं भी प्रदान की जा सकती है जिनका मुल्यांकन मुद्रा में किया जा सकता हो। उदाहरण के लिए, किराया मुक्त मकान, कार, नौकर आदि की सुविधा। वित्तीय प्रेरणाएँ प्रायः कर्मचारियों की शारीरिक तथा सुरक्षा आवश्यकताओं कों संतुष्ट करने में सहायक होती हैं। मुख्य वित्तीय प्रेरणाओं में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है।

(1) वेतन एवं भत्ते

(2) उत्पादकता—मजदूरी मिलान प्रेरणाएँ

(3) बोनस

(4) लाभ—भागिता

(5) सह—भागिता

(6) सेवा—निवृत्ति लाभ

(7) अनुलाभ

(1) **वेतन एवं भत्ते** :

वेतन एवं भत्ते प्रत्येक कर्मचारी के लिए प्रमुख मौद्रिक प्रेरणाएँ हैं। वेतन के अंतर्गत मूल वेतन, महंगाई भत्ता तथा अन्य भत्ते सम्मिलित होते हैं। वेतन एवं भत्ते मे प्रतिवर्ष होने वाली वृद्धि से कर्मचारी अभिप्रेरित होते हैं।

(2) **उत्पादकता–मजदूरी मिलान प्रेरणाएँ**

उत्पादकता को मजदूरी से जोड़कर कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। अर्थात जितनी अधिक उत्पादकता होगी, उतनी ही अधिक मजदूरी का भुगतान किया जाएगा।

(3) **बोनसः**

बोनस का अभिप्राय कर्मचारियों को उनके समान पारिश्रमिक के अतिरिक्त किए जाने वाले ऐसे भुगतान से है जो उन्हें बेहतर सेवाएं प्रदान करने के बदले किया जाता है। यह योजना मालिकों तथा कर्मचारियों में मधुर संबंध स्थापित करने में सहायक है। आजकल बोनस के भुगतान का प्रचलन लगभग सभी उद्योगों में है। बोनस का भुगतना नकदी अथवा किसी अन्य रुप में हो सकता है। उदाहरण के लिए किसी कर्मचारी की सेवा से खुश होकर कम्पनी नकदी का भुगतान कर सकती है अथवा विदेश भ्रमण पर भेज सकती है।

(4) **लाभ–भागिताः**

एक व्यवसायिक संस्था द्वारा अर्जित लाभ को पक्षधारों के प्रयासों का परिणाम होता है – स्वामी पुंजी लगाते हैं और कर्मचारी अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं। स्वामियों को पुंजी विनियोग के फलस्वरुप लाभ तथा कर्मचारियों को सेवाओं के फलस्वरुप वेतन/मजदूरी प्राप्त होती है। अतः वैसे तो कर्मचारियों को अपनी सेवाओं के बदले पारिश्रमिक प्राप्त होता है लेकिन इस उम्मीद से कि वे अपनी पूरी क्षमता, मेहनत व ईमानदारी से काम करें, कभी–कभी, उन्हें कम्पनी के लाभों में भी हिस्सा दिया जाता है। इस प्रकार लाभ में दिए जाने वाले हिस्से की योजना को लाभ–भागिता कहते हैं।

(5) **सह–भागिता**

वास्तव में सह–भागिता लाभ–भगिता का विकसित स्वरुप है। सह–भागिता का आधार औद्योगिक प्रजातन्त्र तथा प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी है। इस योजना के अंतर्गत कर्मचारी अपनी सेवाएं प्रदान करने के साथ–साथ कम्पनी की समता पूंजी मे भी भागीदार होते हैं। परिणामस्वरुप, कर्मचारी अपने सामान्य पारिश्रमिक के अतिरिक्त लाभांश प्राप्त करते हैं तथा

कम्पनी के प्रबन्ध में भी भागीदार होते हैं। कर्मचारियों को कम्पनी के समता अंश दो तरह से जारी किए जा सकते है।:

(i) **नकदी के बदले**।

(ii) **नकदी में मिलने वाली प्रेरणा के बदलेः** जैसे–लाभ–भागिता योजना के अंतर्गत अंश जारी करना अथवा बोनस का अंशों के रुप में भुगतान करना।

(6) **सेवानिवृत्ति लाभ**

प्रत्येक कर्मचारी सेवानिवृत्ति के बाद के समय को लेकर चिंतित रहता है। यदि उसे इस समय के लिए आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर दी जाए तो उसका भविष्य सुरक्षित हो जाएगा। ऐसी स्थिति में वह निश्चित रुप से अभिप्रेरित होगा। भविष्य निधि तथा उपदान सेवा–निवृत्ति लाभ के सबसे अच्छे उदाहरण हैं।

(7) **अनुलाभ**

अनुलाभों का अभिप्राय ऐसी सुविधाएं से है जो कर्मचारी को अपने नियोक्ता से निःशुल्क प्राप्त होती हैं। जैसे – किराया मुक्त मकान, कार, नौकर की सुविधा आदि। ये सुविधाएं कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने मे अहम भूमिका निभाती हैं।

9.6.2 अवित्तीय अथवा अमौद्रिक प्रेरणाएँ

अवित्तीय प्रेरणाएँ वे है जिनका मुद्रा से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। ये प्रेरणाएँ मनुष्य में उच्चस्तरीय आवश्यकताओंः जैसे –सामाजिक, सम्मान व आत्म आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सहायक होती है। डयूवि के अनुसार, 'अवित्तीय प्रेरणाएँ मासिक पुरस्कार के रुप में होती हैं।' चेस्टर वर्नार्ड का मत है कि, ''वह एक आम धाराणा की बात है कि भौतिक पुरस्कार (जैसे–मुद्रा) जीवन–यापन की सीमा के बाद प्रभावाहीन हो जाते हैं'। इसका अभिप्राय यह है कि वित्तीय रुप से सम्पन्न व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने के लिए वित्तीय पुरस्कार के स्थान पर अवित्तीय पुरस्कार अधिक प्रभावी होते हैं। कर्मचारियों को अवित्तीय पुरस्कारों द्वारा अभिप्रेरित करने में निम्नलिखित घटक मुख्य रुप से सहायक हैं :

(1) पद

(2) संगठनात्मक वातावरण

(3) कैरियर बढ़ोतरी अवसर

(4) कार्य सम्पन्नता

(5) कर्मचारी पहचान कार्यक्रम

(6) सेवा सुरक्षा

(7) कर्मचारी भागीदारी

(8) कर्मचारी सशक्तिकरण

(1) **पद :** पद का अर्थ एक व्यक्ति के संगठन में स्थान से है। पद छोटा या बड़ा हो सकता है। पद का छोटा या बड़ा होना पद से जुड़े अधिकार, उत्तरदायित्व व अन्य सुविधाएं (जैसे – अलग केबिन, महंगा फर्नीचर, गाड़ी, चपरासी. पी.ए. आदि) पर निर्भर करता है। हर व्यक्ति बड़े पद की चाह रखता है। अतः कर्मचारियों के पद में बढ़ोतरी करके उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। उच्च पद की प्राप्ति कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सम्मान की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

(2) **संगठनात्मक वातावरण** : संगठनात्मक वातावरण का अर्थ संगठन की कार्य – प्रणाली से है। इसके अंतर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता, पुरस्कार प्राप्ति, कर्मचारियों के महत्व, आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति बेहतर संगठनात्मक वातावरण में काम करना पसंद करता है। प्रबन्धक बेहतर संगठनात्मक वातावरण उपलब्ध कराकर कर्मचारियों को अभिप्रेरित कर सकता है।

(3) **कैरियर बढ़ोतरी अवसर** : संगठन का प्रत्येक कर्मचारी अपने जीवन में तरक्की चाहता है। पदोन्नति तरक्की का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। पदोन्नति के लिए प्रशिक्षण एवं विकास सुविधाएं उपलब्ध करवाने की आवश्यकता होती है। अतः प्रबन्धक ये सुविधाएं उपलब्ध कराकर कर्मचारियों की पदोन्नति का रास्ता साफ कर देता है। पदोन्नति के अवसर उपलब्ध होने पर कर्मचारी निश्चित रुप से अभिप्रेरित होते हैं।

(4) **कार्य सम्पन्नताः** कार्य सम्पन्नता का अर्थ कार्य के महत्व को बढ़ाने से है। अर्थात ऐसी जॉब जिसमें :

(i) अधिकार, उत्तरदायित्व एवं चुनौतियों का क्षेत्र विस्तृत हो

(ii) उच्च–स्तरीय ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता हो

(iii) व्यक्तिगत विकास के अवसर उपलब्ध हों, तथा

(iv) निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता हो।

कर्मचारी इस तरह की जॉब प्राप्त करके गर्व महसूस करते हैं अतः कार्य संपन्नता से लोगों की काम में रुचि बढ़ती है। और स्वतः ही अभिप्रेरित होने लगते हैं।

(5) **कर्मचारी पहचान कार्यक्रम** : प्रत्येक कर्मचारी की यह इच्छा होती है कि उसे संगठन के एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में माना जाए। अर्थात उसकी पहचान हो और वह सबसे अलग दिखे। कर्मचारियों की पहचान स्थापित करने के कुछ उदाहरण निम्न हैंः–

(i) अच्छे कार्य निष्पादन के लिए कर्मचारियों को बधाई देना।

(ii) कर्मचारियों की उपलब्धियों को सूचना पटल पर प्रदर्शित करना अथवा संगठन की समाचार पत्रिका में छापना।

(iii) बेहतर निष्पादन के लिए संगठन के समारोहों में प्रमाण–पत्र वितरित करना।

(iv) स्मृति चिन्ह भेंट करना।

(v) मूल्यवान सुझावो के लिए पुरस्कृत करना।

(6) **सेवा सुरक्षा** : सेवा सुरक्षा एक महत्वपूर्ण अवित्तीय अभिप्रेरक है। सेवा सुरक्षा का अभिप्राय नौकरी स्थिरता से है। उदाहरण के लिए, एक कर्मचारी के मन में यदि यह डर है कि उसे नौकरी के कभी भी हटाया जा सकता है तो वह दिल लगाकर कार्य नहीं करता और यही चिंता उसे परेशान करती रहती है। दूसरी ओर, यदि उसे इस बात का आभास है कि उसकी नौकरी स्थाई है और उसे अतिशीघ्र नहीं हटाया जाएगा तो वह चिंतामुक्त होकर कार्य करता है। फलस्वरुप उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। यही कारण है कि लोग अधिक वेतन वाली अस्थायी नौकरी की तुलना में कम वेतन वाली स्थाई नौकरी को प्राथमिकता देते हैं।

(7) **कर्मचारी भागीदारी** : कर्मचारी प्रबन्धकीय कार्यों में अपनी भागीदारी को देखकर प्रोत्साहित होते हैं। तथा उनकी मदद से तैयार की गई नीतियों को सफल बनाने में भी वे पूरा सहयोग देते हैं।

(8) **कर्मचारी स□क्तिकरण** : कर्मचारी सशक्तिकरण का अर्थ कर्मचारियों को अधिक निर्णय स्वत़ंत्रता देने से है। जब कर्मचारियों की निर्णय स्वतंत्रता बढ़ती है तो वे समझते हैं कि वे संगठन का एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। यह भावना उन्हें अभिप्रेरित करती है।

- **मौद्रिक एवं अमौद्रिक प्रेरणाओं में अंतरः**

अंतर का आधार	मौद्रिक प्रेरणाएँ	अमौद्रिक प्रेरणाएँ
1- नाप	इन्हें मुद्रा के रुप में नापा जा सकता है।	इन्हें मुद्रा के रुप में नहीं नापा जा सकता है।
2. उपयुक्तता	ये श्रमिक के लिए अधिक उपयुक्त है।	ये प्रबन्धकों के लिए अधिक उपयुक्त है।
3. संतुष्टि का स्तर	ये निम्न–स्तरीय आवश्यकताओं (रोटी,कपड़ा और मकान) का संतुष्ट करता है।	ये उच्च–स्तरीय आवश्यकताओं (सम्मान, पद व आत्म प्राप्ति) की संतुष्टि करता है।
4. देखने योग्य	वित्तीय प्रेरणाओं को देखा जा सकता है क्योंकि इन्हे मुद्रा के रुप में आंका जा सकता है।	अवित्तीय प्रेरणाओं को देखा नहीं जा सकता क्योंकि इन्हे मुद्रा के रुप में नहीं आंका जा सकता है।

सारांश

विभिन्न व्यक्तित्व, मूल्य प्रणाली, मनोवृत्ति एवं आवश्यताओं वाले व्यक्तियों को मिलाकर संगठन को लाभ पहुंचाना कठिन होता हैः– अतः प्रबंधक को उनकी आवश्यताओं, समस्याओं, मनोवृत्ति आदि को समझना होता है। कर्मचारी की कार्य क्षमता उसकी योग्यता पर निर्भर करती है। योग्यता बताती है कि कर्मचारी क्या कार्य कर सकता है और अभिप्रेरण यह इंगित करती है कि कर्मचारी क्या काम कर सकेगा। यदि सही अभिप्रेरण हो तो कर्मचारी का उत्पादन बढ़ेगा। अभिप्रेरण क्रिया कार्य को प्रेरित करने वाली होती है। संगठन की सफलता कर्मचारियों की रुचि पर निर्भर करती है। दूसरों से काम लेने की प्रक्रिया में बहुत कठिनाई आती है। संगठन का व्यवहार काम को प्रभावित करता है। अतः प्रबन्धक को जानना चाहिए कि लोग काम क्यों नहीं करते। भय एवं दण्ड की विचारधारा अभिप्रेरण की सबसे पुरानी विचारधारा है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति पेट के लिए कार्य करता है। अतः यदि श्रमिकों एवं कर्मचारियों को भय दिखाया जाए कि काम न करने पर अथवा मंद गति से काम करने पर उन्हें सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा तो वे

घबरा कर कार्य करेंगे। इसी प्रकार दण्ड का भय भी श्रमिकों एवं कर्मचारियों से बरबस कार्य करा सकता है। औद्योगिक क्रांति की प्रारम्भिक अवस्था में यह विचारधारा सफल रही लेकिन कालांतर में इसका महत्व कम होता गया और वर्तमान समय में तो भय दिखाकर अथवा दंड देकर कार्य करवाना अमानवीय समझा जाने लगा है।

अभिप्रेरण की विचारधारा : इन सिद्धान्तों को हम मूल रुप में निम्न भागों में बांट सकते हैः

(i) मैस्लो की आवश्यकताः क्रमबद्ध सिद्धान्त

(ii) हर्ज़बर्ग का अभिप्रेरक–अनुरक्षक तत्वों का सिद्धान्त

(iii) वलेटन एल्डफर की ERG विचारधारा

(iv) मैक्ग्रेगर का ''एक्स'' सिद्धान्त तथा ''वाइ'' सिद्धान्त

(v) उर्विक का जैड सिद्धान्त

(vi) अभिप्रेरण की एकात्मक विचारधारा

(vii) मैक्लेलैण्ड का प्रकट या अर्जित आवश्यकता सिद्धान्त

(viii) एडमस का समता सिद्धान्त

(ix) व्यवहार अभिप्रेरण सिद्धान्त

(x) व्रूम की प्रत्याशा विचारधारा

(xi) पोर्टर–लॉलर का निष्पादन संतुष्टि प्रतिरुप

(xii) अभिप्रेरण की लिकट की विचारधारा

(xiii) अभिप्रेरण की लक्ष्य निर्धारण विचारधारा

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र□न

(i) अभिप्रेरण का अर्थ एवं महत्व बताइये।

(ii) 'अभिप्रेरण' शब्द का वर्णन कीजिए। एक संगठन में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना क्यों महत्वपूर्ण है?

दीर्घ उत्तरीय प्र□न

(iii) अभिप्रेरण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

(iv) प्रेरणा, अभिप्रेरण व अभिप्रेरक का अर्थ बताइये। मास्लो की आवश्यकता क्रम में प्रोत्साहन के सिद्धान्त की चर्चा कीजिए।

(v) मास्लो की आवश्यकता–श्रृंखला अभिप्रेरण की समझ के लिए आधार समझी जाती है। इस आवश्यकता–श्रृंखला की अभिप्रेरण समझाइये।

(vi) एक कर्मचारी की 'सम्मान आवश्यकताओं का वर्णन कीजिए।

(vii) मास्लो के आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम की किन दो आधारों पर आलेचना की जा सकती है?

(viii) 'अभिप्रेरण द्वारा प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को उनकी पूर्ण कार्यकुशलता संगठन को प्रदान करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।'' इस कथन के संदर्भ में अभिप्रेरण का महत्व संक्षेप में समझाइए।

(ix) कर्मचारियों में उनकी योग्यता के उच्चतम स्तर तक काम करने की इच्छा पैदा करना निर्देशन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वर्णन कीजिए कि यह संगठन की सफलता में कैसे भागीदारी करता है?

खण्ड – 3

इकाई – 3 नियंत्रण एवं प्रबंध अंकेक्षण

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

10.0 प्रस्तावना

10.1 नियंत्रण का अर्थ

10.2 नियंत्रण का महत्व

10.3 नियंत्रण की सीमाएं

10.4 नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध

10.5 नियंत्रण की प्रक्रिया (नियंत्रण प्रक्रिया)

10.6 नियंत्रण तकनीकें

10.7 प्रबंधकीय अंकेक्षण

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्दे□य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- नियंत्रण का अर्थ व परिभाषाएं।
- नियंत्रण की विशेषताएं।
- नियंत्रण का महत्व।
- नियंत्रण की सीमाएं।
- नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध।
- नियंत्रण प्रक्रिया।
- नियंत्रण तकनीकें।
- प्रबंधकीय अंकेक्षण।

10.0 प्रस्तावना

नियंत्रण प्रबंध का अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबंध के प्रथम कार्य के रुप में नियोजन के अंतर्गत भावी क्रियाओं के बारे में पहले से ही मनन किया जाता है। भावी क्रियाओं का निर्धारण कर लेने के बाद प्रबंध के दूसरे कार्य संगठन के अंतर्गत, नियोजन में निर्धारित भावी क्रियाओं को कार्यरुप देने के लिए कार्य–भूमिकाओं का ढांचा तैयार किया जाता है। अर्थात संस्था के विभिन्न पद स्थापित कर दिए जाते हैं। संगठनात्मक ढांचे में स्थापित किए गए विभिन्न पदों पर व्यक्तियों को लगाने का कार्य नियुक्तिकरण द्वारा संपन्न किया जाता है। संस्था में कार्यरत सभी व्यक्तियों को सही मार्गदर्शन प्रदान करने का कार्य निर्देशन के अंतर्गत आता है। सबसे अंत में आवश्यकता यह देखने की है कि क्या वे समस्त क्रियाएं जिनके लिए प्रबंध के प्रथम चार कार्यों को सम्पन्न किया गया है, योजनाओं के अनुरुप हो रही हैं अथवा नहीं। अर्थात कार्य की प्रगति का मूल्यांकन करके उसमे कमी को ढूँढा जाता है ताकि समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही करके विपरीत परिणामों से बचा जा सके और यह कार्य नियंत्रण के अंतर्गत किया जाता है।

10.1 नियंत्रण का अर्थ व परिभाशाएं

प्रबंध में नियंत्रण इच्छित उद्देश्यों को कुशलता, किफायत तथा सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए वास्तविक कार्य प्रगति की समय–समय पर समीक्षा करने से है ताकि वास्तविक कार्य प्रगति अपेक्षित प्रगति के अनुरुप हो सकें। नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक प्रगति व निर्धारित प्रमापों के बीच विचलनों का पता लगाया जाता है, विचलनों के कारणों की खोज की जाती है तथा उन्हें दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है ताकि भविष्य में गलतियों की पुनरावृत्ति से बचा जा सके। संक्षेप में, उद्देश्यों के अनुरुप वास्तविक प्रगति को सुनिश्चित करना ही नियंत्रण का प्रमुख उद्देश्य है।

टूल बाक्स – 1
नियंत्रण इसका अभिप्राय वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के नज़दीक लाना है।

विभिन्न विद्वानों ने नियंत्रण को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **फिलिप कोटलर** के अनुसार, ''नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिनके द्वारा वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किये जाते है।''

(2) **डेल हेनिंग** के शब्दों में, ''नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यों की योजना के अनुरुप किया जाता है।''

10.2 नियंत्रण का महत्व

नियंत्रण प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी महत्ता इसी बात से पता चलती है कि प्रबंध के सभी कार्यों में इसकी आवश्यकता है। नियंत्रण गलतियों को तो रोकता ही है साथ ही यह भी बताता है कि नई चुनौतियों का सामना करने के लिए कितनी क्षमता की जरुरत है। नियंत्रण का महत्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होता है:

(i) **संगठनात्मक लक्ष्यों का पूरा करना** : योजनाओं की निगरानी के लिए नियंत्रण प्रक्रिया लागू की जाती है। इसके द्वारा विचलनों का अति शीघ्र पता लगाया जाता है और सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है परिणामतः वांछित एवं वास्तविक परिणामों का अंतर न्यूनतम हो जाता है। इस प्रकार, नियंत्रण उद्देश्य प्राप्ति में सहायक है।

(ii) **प्रमापों की भुद्धता को जांचना** : एक प्रबंधक नियंत्रण कार्य करते समय वास्तविक कार्य प्रगति व प्रमापों की तुलना करता है। वह यह जांचता है कि कहीं निर्धारित प्रमाप सामान्य प्रमापों से अधिक या कम तो नहीं है। यदि आवश्यकता हो तो उनका पुर्ननिर्धारण किया जाता है।

(iii) **संसाधनों का कुशलतम उपयोग करना** : नियंत्रण मानवीय व भौतिक साधनों के अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाता है। नियंत्रण के अंतर्गत यह देखा जाता है कि कोई भी कर्मचारी निष्पादन में जानबूझ कर देरी न करें। इसी प्रकार सभी भौतिक साधनों के उपयोग में होने वाली बर्बादी को रोका जाता है।

(iv) **कर्मचारी अभिप्रेरणा में सुधार करना** : नियंत्रण के माध्यम से कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने का प्रयास किया जाता है। नियंत्रण व्यवस्था के लागू होने की जानकारी होने पर सभी कर्मचारी पूरी लगन से काम करते हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि उनका कार्य का मूल्यांकन होगा और प्रगति रिपोर्ट अच्छी आने पर उनकी संस्था में पहचान बनेगी।

(v) **व्यवस्था एवं अनुशासन सुनिश्चित करना** : नियंत्रण के लागू होने से व्यवस्था एवं अनुशासन सुनिश्चित होता है। परिणामतः सभी अवांछित क्रियाओं: जैसे – चोरी, भ्रष्टाचार, कार्य में देरी, असहयोग की भावना, आदि पर रोक लग जाती है।

(vi) **समन्वय स्थापित करने में सहायक** : संस्थागत उद्देश्यों को सफलतापूर्वक **प्राप्त करने के लिए संस्था** के सभी विभागों में समन्वय जरुरी है। संस्था के सभी विभाग एक–दूसरे पर निर्भर होतें हैं: जैसे– विक्रय विभाग द्वारा माल के आदेशों की पूर्ती करना, उत्पाद विभाग द्वारा उत्पादित माल पर निर्भर करता है। नियंत्रण के माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि क्या उत्पादन प्राप्त आदेशों के अनुरुप हो रहा है? यदि नहीं तो विचलनों के कारणों की खोज की जाती है और सुधारात्मक कार्यवाही करके दोनों विभागों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 प्रबन्धन का आखिरी कार्य क्या है?
प्र.2 नियंत्रण का अर्थ क्या है?
प्र.3 नियंत्रण का एक संगठन में क्या महत्व है?

10.3 नियंत्रण की सीमाएं

नियंत्रण प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है लेकिन यह सीमाओं से रहित नहीं है। इनकी मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं:

(i) **गुणात्मक प्रमाप निर्धारित करने में कठिनाई:** प्रमाप निर्धारित करने के संबंध में एक मुख्य बात यह है कि जो कार्य संख्यात्मक प्रकृति के हैं उनके माप निर्धारण में कठिनाई आती है। इनके लिए अप्रत्यक्ष मापदंडों का सहारा लिया जाता है। उदाहरणार्थ, कर्मचारियों के ऊँचें मनोबल को मापना एक गुणात्मक प्रकृति का कार्य है। इसे सीधे तरीके से नहीं मापा जा सकता। इसको मापने के लिए श्रम–परिवर्तन दर, अनुपस्थिति दर, झगड़ों की दर, आदि को देखा जा सकता है। यदि ये तीनों दरें ऊँची हैं तो कहा जाएगा कि संस्था में कर्मचारियों का मनोबल ऊंचा नहीं है। अतः स्पष्ट है कि सभी कार्यों के लिए संख्यात्मक प्रमाप निर्धारित नहीं हो सकते और गुणात्मक प्रमाप पूर्णतः शुद्ध नहीं होते।

(ii) **बाहरी तत्वों पर कोई नियंत्रण नहीं:** यदि हम कहें कि एक प्रबंधक प्रबंध के नियंत्रण कार्य को पूरा करके संगठन में पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर देगा तो यह कहना बिल्कुल गलत होगा।

प्रबंधक आंतरिक तत्वों (जैसे– मानव, माल, मशीन आदि) पर तो नियंत्रण कर सकता है लेकिन बाहरी तत्वों (जैसे–सरकारी नीतियां, तकनीकी परिवर्तन, प्रतियोगिता, आदि) पर नियंत्रण करना असंभव है। अतः कभी भी पूर्ण नियंत्रण की स्थिति स्थापित नहीं हो सकती।

(iii) **कर्मचारियों द्वारा विरोध**: व्यवसायिक वातावरण में लगातार परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन का सामना करने के लिए नियंत्रण की नवीनतम पद्धतियों का प्रयोग करना होता है। लेकिन कर्मचारी इन पद्धतियों का विरोध करते है। उदाहरण के लिए, यदि उस हाल में जहां कर्मचारी काम कर रहे हैं, उनकी गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए सी.सी.टी.वी लगा दिए जाएं तो वे निश्चित रुप से इसका विरोध करेंगे।

(iv) **महंगी प्रक्रिया** : नियंत्रण प्रक्रिया को लागू करने के लिए बहुत धन, समय व प्रयासों की जरुरत होती है। छोटी संस्थाओं के लिए यह विलासिता बन कर रह गई है। प्रबन्धकों को चाहिए कि ऐसी नियंत्रण प्रणाली लागू करें जिससे प्राप्त लाभ उसकी लागतों से अधिक हो।

10.4 नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध

नियोजन एवं नियंत्रण के संबंध में निम्नलिखित दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है:

(क) नियोजन एवं नियंत्रण की एक–दूसरे कर निर्भरता

(ख) नियोजन एवं नियंत्रण में विभिन्नता

(क) **नियोजन नियंत्रण की एक–दूसरे पर निर्भरता** : प्रबंध के नियोजन एवं नियंत्रण कार्यो में गहरा संबंध है। इनके संबंध के महत्व को दर्शाते हुए प्रायः कहा जाता है कि नियोजन, नियंत्रण के अभाव में अंधा है। नियोजन एवं नियंत्रण की एक–दूसरे पर निर्भरता के दोनों पहलुओं की व्याख्या निम्नलिखित है:

(i) **नियोजन एवं नियंत्रण के अभाव में अर्थहीन है**: नियोजन एवं नियंत्रण की निर्भरता के पहले भाग में कहा गया है कि नियोजन तभी सफल होता है जबकि एवं नियंत्रण विद्यमान हो अर्थात यदि नियंत्रण विद्यमान न हो तो नियोजन किया जाना व्यर्थ है। यदि प्रबंध में से नियंत्रण प्रक्रिया को अलग कर दिया जाए तो संस्था में कार्यरत कोई भी कर्मचारी योजनाओं के अनुरुप काम करने की बात को गंभीरता से नहीं लेगा और परिणामतः योजनाएं असफल हो जाएंगी।

(ii) **नियंत्रण, नियोजन के अभाव में अंधा है** : नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक कार्य निष्पादन की तुलना प्रमापों से की जाती है। अतः यदि प्रमाप निश्चित न किए जाएं तो नियंत्रण का औचित्य ही समाप्त हो जाएगा और प्रमाप नियोजन के अंतर्गत ही निश्चित किए जाते है। इसीलिए कहा जाता है कि नियंत्रण नियोजन के अभाव में अंधा अथवा आधारहीन होता है।

(ख) **नियोजन एवं नियंत्रण में विभिन्नताः** यह ठीक है कि नियोजन एवं नियंत्रण एक–दूसरे के बिना अपूर्ण एवं प्रभावहीन हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि इनके बीच कोई अंतर नहीं है। इनके बीच मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं:

(i) **नियोजन आगे देखता है जबकि नियंत्रण पीछे देखनाः** योजनाएं हमेशा भविष्य के लिए बनाई जाती हैं और निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भविष्य में की जाने वाली कार्यवाही को निर्धारित करती हैं। इसके विपरीत नियंत्रण को पीछे देखने की प्रक्रिया कहा जाता है क्योंकि इसके अंतर्गत प्रबधंक कुछ कार्य पूरा हो जाने के बाद ही यदि देखते हैं कि कार्य प्रमापों के अनुसार हुआ अथवा नहीं। अतः स्पष्ट है कि नियोजन आगे अर्थात भविष्य में देखता है और नियंत्रण पीछे अथार्त भूतकाल में देखता है।

लेकिन नियोजन एवं नियंत्रण के अंतर को उपरोक्त तथ्य के विपरीत करके भी कहा जा सकता है अर्थात नियोजन पीछे देखना, जबकि नियंत्रण आगे देखना नियोजन को पीछे देखना इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि योजनाओं का निर्माण भूतकाल में हुई घटनाओं अथवा प्राप्त अनुभवों के आधार पर ही किया जाता है। दूसरी ओर नियंत्रण भूतकाल में किये गये कार्य का मूयांकन करता तो है लेकिन इसमें सुधारात्मक कार्यवाही भविष्य के लिए की जाती है। अतः यह कहने में भी कोई संकोच नही होना चाहिए कि नियोजन पीछे देखना है जबकि नियंत्रण आगे देखना।

(ii) **नियोजन प्रबंधकीय प्रक्रिया का पहला कार्य है तथा नियंत्रण अंतिमः** प्रबंधकीय प्रक्रिया एक निश्चित क्रम में चलती है, जैसे– नियोजन, संगठन, नियुक्तियां एवं नियंत्रण। इस क्रम से स्पष्ट होता है कि नियोजन प्रबंधकीय प्रक्रिया का प्रथम कदम है जबकि नियंत्रण अंतिम।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.4 नियंत्रण के बिना नियोजन अधूरा है।

प्र.5 नियंत्रण संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग है।

प्र.6 नियोजन आगे देखता है और नियंत्रण पीछे देखता है। क्या आप सहमत हैं?

10.5 नियंत्रण प्रक्रिया

नियंत्रण प्रक्रिया के पांच कदम निम्नलिखित हैं

चित्र – 10.1 नियंत्रण प्रक्रिया

(क) **प्रगति प्रमापों का निर्धारण** : प्रमापों का निर्धारण करना नियंत्रण का पहला चरण है। प्रमाप वे आधार होते हैं जिनके संदर्भ में वास्तविक प्रगति को मापा जाता है। प्रमाप ही व्यक्तियों एवं विभागों को बताते हैं कि उनकी मंजिल क्या है? इनके आधार पर ही एक प्रबंधक वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन करके विचलनों का पता लगाता है।

- **प्रमापों के प्रकार**

प्रमाप निम्न दो प्रकार के होते हैं:

(i) **संख्यात्मक प्रमाप** : ये ऐसे प्रमाप होते हैं जिन्हें आंकड़ो में प्रदर्शित किया जाता हैः जैसे – एक श्रमिक द्वारा एक दिन में 10 इकाईयां का उत्पादन करना, प्रति इकाई कुल लागत 100 रुपये होना, आदि।

(ii) **गुणात्मक प्रमापः** ये ऐसे प्रमाप होते हैं जिन्हें आंकड़ो के रुप में प्रदर्शित नहीं किया जा सकताः जैसे–कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करना। कर्मचारियों के मनोबल को मापना एक गुणात्मक प्रकृति का प्रमाप है। इसे सीधे तरीके से नहीं मापा जा सकता। इसको मापने के लिए श्रम–परिवर्तन दर, अनुपस्थिति दर, झगड़ों की दर, आदि को देखा जा सकता है। यदि इन तीनों की दर नीची हो तो कहा जाएगा कि कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि हुई है।

- **प्रमाप के आधार**

प्रमाप निर्धारण के मुख्यतः चार आधार होते हैंः

(i) मात्रा

(ii) किस्म

(iii) समय तथा

(iv) लागत

मात्रा प्रमाप – उत्पादन, विक्रय स्टॉक आदि के संबंध में होते हैं।

किस्म प्रमाप – कच्चे माल एवं तैयार माल के संबध में तथा ग्राहक सेवा एवं कर्मचारी मनोबल के संबंध में होते हैं।

समय प्रमाप–उत्पादन में लगने वाले समय के संबंध में होते हैं।

इसी प्रकार लागत–प्रमाप – श्रम, माल व अन्य खर्चों के संबंध में होते हैं।

(ख) **वास्तविक प्रगति का मापन** : नियंत्रण प्रक्रिया का दूसरा कदम वास्तविक कार्य प्रगति को मापना है। वास्तविक प्रगति का मापन पूर्व–निर्धारित प्रमापों के आधार कर किया जाता है। वास्तविक प्रगति के माप से प्रबंधकों को यह जानकारी मिलती है कि कार्य योजना के अनुरुप हुआ है या नहीं।

वास्तविक प्रगति के मापन के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रगति का मापन, कार्य पूरा होने पर ही किया जा सकता है अथवा जब कार्य चल रहा हो तब भी हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहना उचित होगा कि कार्य प्रगति का मापन दोनों

दशाओं में हो सकता है। प्रथम, जब कार्य चल रहा हो तो पर्यवेक्षण के माध्यम से यह देखना चाहिए कि कार्य इच्छित गति से हो रहा है अथवा नहीं, ताकि नकारात्मक परिणाम पर तुरन्त सुधारात्मक कार्यवाही करके शेष कार्य में होने वाली हानि को रोका जा सके। द्वितीय, जब संपूर्ण कार्य पूरा हो जाए। ऐसी स्थिति में नकारात्मक परिणाम आने पर सुधारात्मक कार्यवाही केवल भविष्य के लिए ही की जा सकेगी, अर्थात जो हानि हो चुकी है उसे कम नहीं किया जा सकता।

वास्तविक कार्य प्रगति को मापते समय निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिएः

(i) कार्य प्रगति के आंकड़े यथासंभव पूर्णतया सही होने चाहिए।

(ii) ये आंकड़े निरंतर तैयार किए जाने चाहिए।

(iii) प्रगति मापने के मापदंड वैसे ही होने चाहिए जैसे कि प्रमाप तय करने के लिए इस्तेमाल किए गए हों।

(iv) प्रगति मापन पद्धति शीघ्र विचलन को प्रकट करने वाली होनी चाहिए।

(ग) **वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलना**ः इस चरण पर वास्तविक प्रगति की तुलना प्रमापों से की जाती है। इससे वास्तविक प्रगति एवं प्रमापों में विचलन की जानकारी प्राप्त होती है। विचलन दो प्रकार के हो सकते हैंः

(i) नकारात्मक विचलन

(ii) धनात्मक विचलन

नियंत्रण प्रक्रिया में ऋणात्मक विचलन अर्थात प्रमापित कार्य से कम कार्य होने के कारणों का पता लगाना तो जरुरी है ही, लेकिन धनात्मक विचलनों के कारणों की जानकारी प्राप्त करना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। गुणनात्मक विचलन का अभिप्राय वास्तविक कार्य प्रमापित कार्य से अधिक होना है। यदि यह जानकारी मिल जाए तो वास्तविक प्रगति अधिक होने के क्या कारण हैं, तो उनमें और अधिक सुधार करके भविष्य में कार्यकुशलता को बढ़ाया जा सकता है।

(घ) **विचलनों का वि्लेश्षण**ः इस चरण पर विचलनों का विश्लेषण किया जाता है। विचलनों के विश्लेषण के दौरान निम्न बातों का अध्ययन किया जाता हैः

(i) क्या प्रमाप प्राप्त हो सका? यदि 'हां' तो कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। काम पूर्व की भांति जारी रहेगा, वास्तविक प्रगति का मापन होगा और शेष प्रक्रिया आगे चलेगी। इसके विपरीत, यदि प्रमाप प्राप्त नहीं हो सका तो अगले प्रश्न के उत्तर ढूंढने होंगे।

(ii) क्या विचलन स्वीकार्य है? यदि वास्तविक प्रगति प्रमापित प्रगति से कम है लेकिन विचलन स्वीकार्य है (अर्थात ऐसा विचलन नहीं है जिसके लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जरुरत हो) तो पुनः 'कुछ नहीं करना' और काम पहले की भांति आगे चलेगा। इसके विपरीत, यदि विचलन स्वीकार्य नहीं है तो अगले प्रश्न का उत्तर ढूंढना होगा।

(iii) क्या प्रमाप स्वीकार्य है? यदि प्रमाप स्वीकार्य है अथवा उसमें कुछ भी गलत नहीं है तो विचलन के कारणों की खोज की जाएगी, तत्पश्चात सुधारात्मक कार्यवाही की जाएगी और काम आगे चलेगा। इसके विपरीत, यदि निर्धारित किया गया प्रमाप ही गलत हो तो अगले प्रश्न का उत्तर ढूंढना होगा।

(iv) प्रमाप का पुननिर्धारणः यदि प्रमाप गलत है तो उसको फिर से निर्धारित किया जाएगा। अतः नये सिरे से प्रमाप निश्चित होगा एवं वास्तविक प्रगति का मापन होगा।

(ङ) **सुधारात्मक कार्यवाही करना** : नियंत्रण प्रक्रिया का अंतिम, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कदम सुधारात्मक कार्यवाही करना है। इससे पूर्व विचलनों व उनके कारणों का पता लगा लिया जाता है। अब बारी आती है वास्तविक कार्य प्रगति में अड़चन बने कारणों अथवा बाधाओं को दूर करने की।

सुधारात्मक कार्यवाही का उद्देश्य वास्तविक प्रगति को अपेक्षित प्रगति के अनुकूल बनाना है। इसमें दो प्रकार की व्यवस्थाएं शामिल हैंः

(i) वास्ताविक प्रगति में कमी को दूर करना। उदाहरण के लिए, यदि उत्पादन में कमी मशीन की खराबी के कारण हुई तो मशीन को तुरन्त ठीक करवा लेना चाहिए तथा कर्मचारियो से अधिक समय तक काम करवाकर उत्पादन में कमी को पूरा कर लेना वाहिए।

(ii) इस कमी की भविष्य में पुनरावृत्ति को रोकनाः उदाहरण के लिए, मशीन में खराबी होने के कारणों का गहराई से अध्ययन करके ऐसे उपाय करना ताकि भविष्य में यह समस्या उत्पन्न ही न हो।

- सुधारात्मक कार्यवाही में ध्यान रखने योग्य बातेंः

सुधाारात्मक कार्यवाही करते समय प्रबंधकों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिएः

(i) सुधारात्मक कार्यवाही विचलनों के कारणों की पूरी जांच–पड़ताल करने के बाद की जानी चाहिए।

(ii) यदि प्रमाप गलत निर्धारित कर दिए गए थे तो उन्हे ठीक कर देना चाहिए।

(iii) सुधारात्मक कार्यवाही उसी प्रबंधक की जानी चाहिए जिसका कार्य से सीधा संबंध हो।

(iv) कार्यवाही शीघ्र की जाने चाहिए ताकि भविष्य में हानि से बचा जा सके।

(v) यदि आश्यक हो तो नीतियों, कार्यविधियों, नियमों आदि में परिवर्तन कर देना चाहिए।

सुधारात्मक कार्यवाही करने के संबंध में एक विशेष बात यह है कि मात्र सुधारात्मक कार्यवाही कर देने से ही नियंत्रण कार्य पूरा नहीं हो जाता बल्कि यह भी देखना चाहिए कि इस कार्यवाही का वास्तविक परिणामों पर क्या प्रभाव पड़ा और नकारात्मक परिणाम मिलने पर पुनः सुधारात्मक कार्यवाही करनी चाहिए। इसीलिए कहा जाता है कि नियंत्रण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

टूल बाक्स – 2 **नियंत्रण प्रक्रिया**
• प्रगति प्रमापों का निर्धारण • वास्तविक गति का मापन • वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलना • विचलनों का विश्लेषण • सुधारात्मक कार्यवाही करना

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 'नियंत्रण' को परिभाषित कीजिए तथा व्याख्या कीजिए कि वह प्रबंध में कैसे सहायक हैं? प्र.8 'नियंत्रण' शब्द की व्याख्या करें। प्र.9 नियंत्रण किस प्रकार समन्वय स्थापित करने में तथा बेहतर नियोजन में सहायक होता है, समझाइये। प्र.10 नियंत्रण प्रक्रिया के पांच कदम समझाइये।

10.6 नियंत्रण की तकनीकें

व्यवसाय में प्रभावपूर्ण नियंत्रण की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यवसाय की सफलता का आधार प्रभावपूर्ण नियंत्रण ही है। नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक कार्य प्रगति का मिलान प्रमापित कार्य से करके विचलनों का पता लगाया जाता है। ताकि सुधारात्मक कार्यवाही करके विचलनों को दूर किया जा सके। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी कौन–सी पद्धतियां अथवा प्रणालियां हैं जिनके माध्यम से प्रबंध कार्य को सफलतापूर्वक पूरा किया जा सके।

समय के साथ–साथ अनेक नवीनतम नियंत्रण प्रणालियों की खोज की गई है और पुरानी प्रणालियों में सुधार किया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नियंत्रण प्रणालियों को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

(i) परंपरागत नियंत्रण प्रणाली

(ii) समकालिक अथवा आधुनिक

दोनों प्रकार की नियंत्रण प्रणालियों को निम्न चित्र में दिखाया गया है:

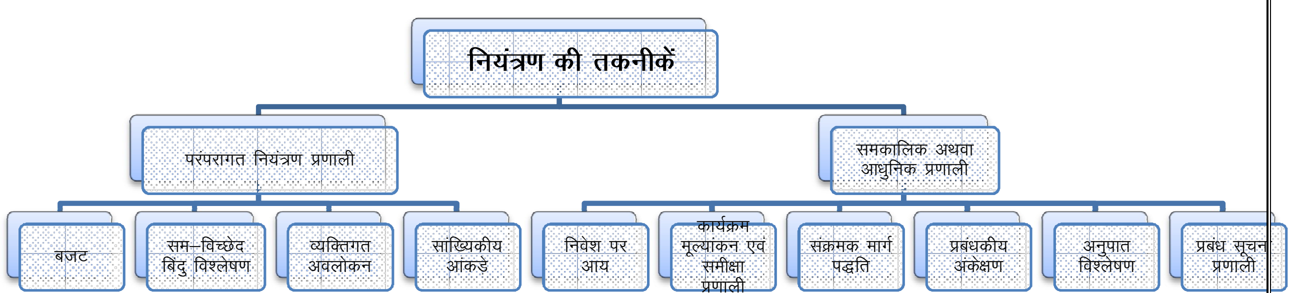

चित्र – 10.2 नियंत्रण की तकनीकें

अब हम दोनों प्रकार की पद्धतियों का विस्तृत अध्ययन करेंगेः

- **परंपरागत नियंत्रण प्रणालियां**

10.6.1 बजटीय नियंत्रण

बजटीय नियंत्रण, प्रबंधकीय नियंत्रण की सर्वाधिक लोकप्रिय पद्धति है। इसका आशय बजटों द्वारा नियंत्रण करने से हे। बजटीय नियंत्रण पद्धति का विस्तृत अध्ययन करने से पहले तीन मिलती–जुलती (बजट, बजट बनाना, बजटीय नियंत्रण) का अर्थ समझा देना जरुरी है।

बजटः बजट भावी कार्यवाही की गणनात्मक विवेचना है अर्थात भविष्य में जो किया जाना है उसकी वित्तीय अथवा गणात्मक रुपरेखा बजट कहलाती है।

बजट बनानाः बजट बनाना वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बजट निर्माण किया जाता है। अर्थात बजट बनाने से संबंधित सभी सूचनाएं एवं आंकड़े एकत्रित करके उन्हें एक विवरण का रुप देना बजट बनाना कहलाता है।

बजटीय नियंत्रणः यह एक व्यवस्था है जिसमें नियंत्रण के उद्देश्य से बजटों का प्रयोग किया जाता है। अर्थात जब एक व्यवसायिक संस्था की विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए बजट का प्रयोग किया जाता है तो इसे बजटीय नियंत्रण कहते हैं।

बजटीय नियंत्रण की वि□ाशताएं

बजटीय नियंत्रण की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैंः

(i) तुलनात्मक अध्ययनः बजटीय नियंत्रण की प्रथम विशेषता तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत बजट आंकड़ों अथवा अनुमानों की तुलना वास्तविक कार्य प्रणाली से की जाती है।

(ii) विचलनों का विशलेषणः बजटीय नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक एवं प्रमापित आंकड़ों की तुलना के आधार पर विचलनों का पता लगाकर उनका गहराई से अध्ययन किया जाता है और विचलनों के कारणों की खोज की जाती है।

(iii) सुधारात्मक कार्यवाहीः इसके अंतर्गत विचलनों के कारणो की खोज करके उनमें सुधार करने के उपाए सुझाए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि बजटी नियंत्रण क्रियाओं को सीधे तौर

पर नियंत्रित नहीं करता बल्कि यह बताता है कि सुधारात्मक कार्यवाही की जरुरत कहां है और किस तरह की सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए।

(iv) सभी विभागों के लिए बजटः इसके अंतर्गत किसी एक विभाग अथवा क्रिया के लिए बजट न बनाकर सभी विभागों अथवा क्रियाओं के लिए बजट बनाए जाते हैं और फिर सभी बजटों को एक मास्टर बजट के रुप में संगठित कर दिया जाता है।

(v) पूर्वानुमानों पर आधारितः बजटीय नियंत्रण प्रक्रिया में बजटों का निर्माण किया जाता है जिनका आधार पूर्वानुमान होता है।

बजटीय नियंत्रण के लाभ

बजटीय नियंत्रण को लागू किए जाने से निम्नलिखित मुख्य लाभ प्राप्त होते हैंः

(i) तुलनात्मक अध्ययन : बजटीय नियंत्रण की प्रथम विशेषता तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत बजट आंकड़ों अथवा अनुमानों की तुलना वास्तविक कार्य प्रणाली से की जा सकती है।

(ii) विचलनों का विशलेषण : बजटीय नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक एवं प्रमापित आंकड़ों की तुलना के आधार पर विचलनों का पता लगाकर उनका गहराई से अध्ययन किया जाता है और विचलनों के कारणों का खोज की जाती है।

(iii) सुधारात्मक कार्यवाहीः इसके अंतर्गत विचलनों के कारणों की खोज करके उनमें सुधार करने के उपाय सुझाए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि बजटीय नियंत्रण क्रियाओं को सीधे तौर पर नियंत्रण नहीं करता बल्कि यह बताता है कि सुधारात्मक कार्यवाही की जरुरत कहां है और किस तरह की सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए।

(iv) सभी विभागों के लिए बजटः इसके अंतर्गत किसी एक विभाग अथवा क्रिया के लिए बजट न बनाकर सभी विभागों अथवा क्रियाओं के लिए बजट बनाए जाते हैं और फिर सभी बजटों को एक मास्टर बजट के रुप में संगठित कर दिया जाता है।

(vi) पूर्वानुमानों पर आधारितः बजटीय प्रक्रिया में बजटों का निर्माण किया जाता है जिनका आधार पूर्वानुमान होता है।

बजटीय नियंत्रण के दोश अथवा सीमाएं

(i) गलत अनुमानों का खतराः बजट पूर्वानुमान पर आधारित होते हैं और पूर्वानुमान कभी भी खतरे से खाली नही होते। अतः बजटीय नियंत्रण की सफलता पूवानुमानों की सत्यता पर निर्भर करती है।

(ii) लोचहीनता का खतराः प्रायः देखा जाता है कि बजट में लोचन की कमी होती है। लोचहीनता के कारण परिवर्तनों को शामिल करना संभव नहीं होता। इस प्रकार परिवर्तनों का समायोजन न किए जाने के कारण बजटों को लागू करने में कठिनाई आती है।

(iii) मानवीय सीमाएंः बजटीय नियंत्रण को सफल बनाने के लिए संस्था में काम करने वाले सभी कर्मचारियों के सहयोग की आवश्यता होती है। लेकिन प्रायः ऐसा संभव नहीं होता कि सभी कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो जाए।

(iv) अति–बजट का खतराः प्रायः विभागीय अध्यक्षों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे विभागीय बजटों में खर्चों को आवश्यकता से अधिक दिखाते हैं क्योंकि उनका अपने प्रस्तुत किए गए अनुमानों में कुछ कटौती होने का अन्देशा रहता है। यदि गलती से उनका बजट बिना कटौती किए ही पास हो जाए तो वे जरुरत से ज्यादा खर्चे करके संस्था को हानि पहुँचा सकते हैं।

(v) महंगी पद्धतिः इस पद्धति को सफल बनाने के लिए अधिक मात्रा में धन, समय व प्रयासों की जरुरत होती है। कई बार इसकी लागतें इससे प्राप्त होने वाले लाभों से अधिक हो जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.11 बजट का अर्थ क्या है?
प्र.12 बजट बनाने से संगठन को क्या लाभ हैं?
प्र.13 क्या बजट बनाना एक महंगी पद्धति है।

10.6.2 सम–विच्छेद बिंदु वि‍लेशण

सम–विच्छेद बिंदु उत्पादन एवं विक्रय के उस स्तर को दर्शाता है जिस पर व्यवसाय को न तो लाभ होता है ओर न हानि। अर्थात वस्तुओं की लागत और उनका कुल विक्रय मूल्य दोनों बराबर होते हैं। सम–विच्छेद बिंदु को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता हैः

माना एक कम्पनी में लागते एवं विक्रय मूल्य इस प्रकार हैंः

स्थाई लागतें	5000
परिवर्तनशील लागतें	5000 प्रति इकाई
विक्रय मूल्य	10 प्रति इकाई
सम–विच्छेद बिंदु	$\frac{\text{स्थाई लागतें}}{\text{विक्रय मूल्य – परिवर्तनशील लागतें}}$ $\left\{\frac{5000}{10-5}\right\}$
अर्थात सम–विच्छेद बिंदु 1000 इकाईयां हैं। हम अपने उत्तर की पड़ताल निम्न प्रकार कर सकते हैंः	
1000 इकाईयों की कुल लागतें	रु. 5000 (स्थाई लागत) + $\{1000x5\}$ (परिवर्तनशील लागत) = रुपये 10000
1000 इकाईयों का विक्रय मूल्य	= $\{1000x10\}$ = रुपये 10000
लाभ / हानि = विक्रय मूल्य – लागतें = 10000 – 10000 = शून्य	

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 1000 इकाईयों का उत्पादन एवं विक्रय करने पर न तो लाभ होता है और न ही हानि। यदि कम्पनी इस बिंदु से अधिक उत्पादन एवं विक्रय करती है तो लाभ होगे और उसके कम उत्पादन एवं विक्रय होने पर हानि को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है।

(1)माना कि कम्पनी 1200 इकाईयों का उत्पादन एवं विक्रय करती है तो लाभ–हानि इस प्रकार ज्ञात किया जाएगा।

लाभ = कुल विक्रय मूल्य – कुल लागतें

= $(1200x10)-[5000+(1200x5)]$

= 12000–11000

= 1000

(2) माना कि कम्पनी 1200 इकाईयों का उत्पादन एवं विक्रय करती है तो लाभ–हानि इस प्रकार ज्ञात किया जाएगा।

लाभ = कुल विक्रय मूल्य – कुल लागतें

= $(800x10)-[5000+(800x5)]$

= 8000–900

= (–) 1000 (हानि)

सम–विच्छेद बिंदु द्वारा नियंत्रणः अब प्रश्न यह उठता है कि सम–विच्छेद बिंदु का अध्ययन करने से नियंत्रण में किस प्रकार सहायता मिलती है। सम–विच्देद बिंदु ज्ञात हो जाने से प्रबंधकों को यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि उत्पादन एवं विक्रय एक निश्चित मात्रा से नीचे चला गया तो संस्था को भारी हानि का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार प्रबंधक इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही बाकी की सभी क्रियाएं निश्चित करते हैं।

10.6.3 सांख्यिकीय आंकड़े

इस विधि के अंतर्गत व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं के संबंध में पिछले वर्षों के आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जातें हैं। उदाहरणार्थ, पिछले वर्षों के विक्रय आंकड़ों का विश्लेषण करके प्रवृत्ति ज्ञात की जा सकती है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भविष्य में विक्रय बढ़ेगा अथवा कम होगा। आंकड़ों को इस ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि ये आसानी से समझ आ जाएं। चित्र अथवा ग्राफ की सहायता से प्रस्तुत किए गए आंकड़े अधिक स्पष्ट एवं प्रभावी होते हैं और उनसे अतिशीघ्र निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

यह कहकर कि इन आंकड़ों का संबंध केववल गत वर्षों से है और भविष्य में इससे कुछ लेना–देना नहीं है इनके महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। क्योंकि ये भावी क्रियाओं के बारे में पूर्वानुमान लगाने में मदद करते हैं और इन्हें भविष्य के बारे में एक चेतावनी के रुप में स्वीकार किया जाता है।

10.6.4 व्यक्तिगत अवलोकन

वास्तव में देखा जाए तो नियंत्रण की कोई पद्धति ऐसी नहीं है जिसको व्यक्तिगत अवलोकन अथवा देख–रेख के अभाव में सफलतापूर्वक लागू किया जा सके। यह देखने के लिए कि क्या कर्मचारी अपने कार्य को पूरी लगन एवं उत्साह से कर रहे हैं उनके व्यवहार की जानकारी प्राप्त करना जरुरी है और यह जानकारी केवल व्यक्तिगत अवलोकन द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। बजट, रिपोर्ट, चार्ट, आंतरिक अंकेक्षण आदि व्यक्तियों के व्यवहार की जानकारी प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं। प्रबंधक को चाहिए कि समय समय पर स्वयं कार्य–स्थल पर जाकर कर्मचारियों को काम करते हुए देखे। ऐसा करने से कर्मचारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और वे प्रबंधक के अचानक भ्रमण के डर

से अपना काम पूरी लगन एवं मेहनत के साथ करते हैं। अतः व्यक्तिगत अवलोकन नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण यंत्र है।

10.6.5 निवे□ा पर आय (ROI-Return On Investment)

इस नियंत्रण पद्धति के अंतर्गत विनियोजित पूंजी व आय का तुलना करके व्यवसाय की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है। ROI में वृद्धि व्यवसाय की प्रगति का सूचक है तथा कमी इसके विपरीत।

यहां विनियोजित पूंजी का अर्थ व्यवसाय में लगाई गई कार्यशील पूंजी तथा स्थाई पूंजी के योग से है। जबकि आय का अभिप्राय शुद्ध आय से है। ROI की गणना निम्न प्रकार की जाती हैः

$$ROI = \frac{\text{Net Iincome Or Profit Before Interest and Tax}}{\text{Total Investment}}$$

निवेश पर आय का उपयोग पूरे व्यवसाय की प्रगति का मापन करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग किसी एक डिवीज़न की प्रगति की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जा सकता है। प्रगति के मापन के लिए पूर्व निर्धारित व वास्तविक ROI की तुलना की जाती है। इसके अतिरिक्त दो वर्षों की ROI की तुलना करके भी चालू वर्ष की प्रगति को जाना जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.14 सम–विच्छेद बिंदु को विस्तार पूर्वक समझाइए।
प्र.15 निवेश पर आय की गणना किस प्रकार की जाती है?

10.6.6 अनुपात वि□लेश्ण

अनुपात विश्लेषण एक ऐसी नियंत्रण पद्धति है जिसके अंतर्गत अनुपातों की मदद से वित्तीय विवरणों का विश्लेषण करके अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। महत्वपूर्ण अनुपात निम्नलिखित हैंः

- (i) तरलता अनुपात
- (ii) शोधन क्षमता अनुपात
- (iii) लाभप्रदता अनुपात
- (iv) आवर्त अनुपात

(1) सरलता अपुनातः इनका अभिप्राय व्यवसाय की अल्पकालीन शोधन क्षमता से है। अल्पकालीन शोध क्षमता का अर्थ व्यवसाय द्वारा चालू दायित्वों के समय पर भुगतान करने की क्षमता से है। ये अनुपात चालू संसाधनों में से चालू दायित्वों के भुगतान करने की क्षमता को वयक्त करते हैं। वित्त प्रबंधक को लगातार देखते रहना पड़ता है कि ये अनुपात आदर्श अनुपात से बहुत कम अथवा अधिक न हों।

(2) शोधन क्षमता अनुपातः ये अनुपात व्यवसाय की दीर्घकालीन दायित्वों का समय पर भुगतान करने की क्षमता की जानकारी प्रदान करते है।

(3) लाभप्रदता अनुपातः ये अनुपात व्यवसाय की लाभ अर्जन क्षमता की जानकारी प्रदान करते हैं। जैसे—क्या व्यवसाय द्वारा कमाए गए लाभ पर्याप्त है?

(4) आवर्त अनुपातः ये अनुपात बेचे गए माल की लागत अथवा विक्रय के आधार पर किए जाते है। ये अनुपात दर्शाते हैं कि कहां तक संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा रहा है।

10.6.7 उत्तरदायित्व लेखांकन की प्रक्रिया

उत्तरदायित्व लेखांकन की प्रकिया में निम्नलिखित चरणों को सम्मिलित किया जाता हैः

(1) उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापनाः नियंत्रण के लिए सर्वप्रथम व्यवसाय के सभी क्रियाओं को समूहों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया समूह एक उत्तरदायित्व केन्द्र होता है। राबर्ट एन.एन्थनी के अनुसार, ''उत्तरदायित्व केन्द्र संस्था की एक इकाई है जिसका अध्यक्ष एक उत्तरदायी व्यक्ति होता है।''

उत्तरदायित्व केंद्र तीन प्रक्रार के होते हैंः

(i) लागत अथवा व्यय केंद्रः संस्था की ऐसी इकाई जिस पर खर्च तो होता है लेकिन उसके उत्पादन को मुद्रा में नहीं मापा जा सकता, लागत अथवा व्यय केंद्र है क्योंकि इसमें प्रशासनिक कार्यो के खर्चे किए जाते हैं लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि इन कार्यो पर किए गए खर्चों से कितनी आय होगी।

(ii) लाभ केन्द्रः संस्था की ऐसी इकाई जिसका लक्ष्य लाभ के रुप में निश्चित कर दिया जाता है, लाभ केंद्र कहलाता है। ऐसी इकाई के आय एवं व्यय के अंतर से लाभ ज्ञात करके उसकी सफलता या असफलता का मूल्यांकन किया जाता है।

जैसे–एक कारखाना लाभ केन्द्र है क्योंकि इसमें उत्पादित वस्तुओं की लागत एवं उनके मूल्य के अंतर से लाभ ज्ञात किया जा सकता है।

(iii) विनियोग केन्द्रः संस्था की ऐसी इकाई है जहां प्रबंधक का आय–व्यय के साथ–साथ विभाग में प्रयोग की जाने वाली सम्पतियों के प्रभावपूर्ण उपयोग के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जाता है, विनियोग केंद्र कहलाता है।

(2) लेखांकन की व्यवस्था विकसित करनाः उत्तरदायित्व लेखांकन के दूसरे चरण के रुप में लेखांकन की ऐसी व्यवस्था तैयार की जाती है जिससे प्रत्येक उत्तरदायित्व केंद्र के लेखे अलग–अलग तैयार किए जा सकें।

(3) लक्ष्य का निर्धारण करनाः उत्तरदायित्व लेखांकन के तीसरे चरण में सभी विभागों के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

(4) नियंत्रणीय तथा अनियंत्रणीय लागतों कर निर्धारणः लक्ष्य निश्चित करने के बाद प्रत्येक विभाग की सभी लागतों को दो भागों में बांट दिया जाता हैः

(i) जिन पर नियंत्रण करना संभव नहीं है तथा

(ii) जिन पर नियंत्रण करना संभव नहीं है। पहली प्रकार की लागतों के लिए ही प्रबंधकों को उत्तरदायी ठहराया जाता है।

(5) जरुरी कार्यवाही करनाः उत्तरदायित्व लेखांकन पद्धति के अंतिम चरण के रुप में विभाग की वास्तविक कार्य प्रगति का रिकार्ड रखा जाता है, विचलनों को ज्ञात किया जाता है, संबंधित अधिकारियों को प्रगति रिपोर्ट भेजी जाती है और उत्तरदायित्व निश्चित करके उचित कार्यवाही का सुझाव दिया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.16 अनुपात विश्लेषण नियंत्रण कैसे करते है?

प्र.17 अनुपात विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?

प्र.18 उत्तरदायित्व केन्द्र कितने प्रकार के हैं?

10.7 प्रबंधकीय अंकेक्षण

प्रबंधकीय अंकेक्षण एक महत्वपूर्ण आधुनिक नियंत्रण प्रणाली है। इसके अंतर्गत संगठन के सभी स्तरों पर प्रबंधकों की कार्यकुशलता की जांच की जाती है। जांच का कार्य प्रबंध अंकेक्षक द्वारा किया जाता है जिसकी नियुक्ति संचालक मण्डल करता है। यह मुख्यतः दो बातों की जांच करता है:

(i) प्रबंधकीय निर्णयों की क्वालिटी तथा

(ii) प्रबंध पद्धतियों की कुशलता

प्रबंध अंकेक्षक दोनों प्रकार की जांच करके अपनी निष्पक्ष रिपोर्ट संचालक मण्डल के सामने प्रस्तुत करता है और सुधार के लिए सुझाव भी देता है।

कून्टज तथा ओ'डोनेल के अनुसार, ''प्रबंधकीय अंकेक्षणकीय अंकेक्षण का अभिप्राय, प्रबंधको का अलग–अलग प्रबंधकों के रुप में मूल्यांकित करके तथा संस्था की समस्त प्रबंधकीय प्रणाली का मूल्यांकन करके, प्रबंधकों के गुणों का अंकेक्षण करना है।''

- **प्रबंधकीय अंकेक्षण की प्रक्रिया**

प्रबंधकीय अंकेक्षण को लागू करने के लिए प्रायः निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया जाता है:

(i) **प्रबंधकीय अंकेक्षण पद्धति को लागू करने के उद्देय** : सर्वप्रथम, संचालकों द्वारा प्रबंधकीय अंकेक्षण पद्धति लागू करने के उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं। इसके साथ ही प्रबन्ध अंकेक्षक की नियुक्ति भी कर दी जाती है।

(ii) **तथ्य एकत्रित करना:** अंकेक्षक की नियुक्ति हो जाने पर वह जांच का काम प्रारम्भ कर देता है। जांच के दौरान वह आवश्यक रिकार्ड का परीक्षण करता है, प्रबन्धकों का साक्षात्कार लेता है, संस्था की नीतियों, संगठनात्मक ढांचे, अभिप्रेरण व संदेशवाहन की प्रणालियों की जांच करता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष अवधि में लिए गए सभी प्रबन्धकीय निर्णयों की क्वालिटी का जांच करता है।

(iii) **आलोचनात्मक परीक्षण:** सभी आवश्यक तथ्य एकत्रित करने के बाद वह उनका आलोचनात्मक परीक्षण करता है और यह देखता है कि कौन–कौन सी क्रियाएं अनावश्यक व अनुपयोगी थीं तथा कौन–कौन से निर्णय असफल रहे और क्यों?

(iv) **सुधार के उपाय**: प्रबन्ध अंकेक्षक का काम केवल कमियों को निकालना ही नहीं है बल्कि उन्हे दूर करने के उपाय बताना भी है। अतः सबसे अंत में वह संचालक मण्डल को सुझावों सहित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

- **कार्यक्रम रेखा–चित्र वि लेश्ण**

कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण की एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधुनिक पद्धति है। इस प्रणाली का प्रयोग उन सस्थाओं में किया जाता है जहां किसी कार्य अथवा प्रोजेक्ट को अंतिम रुप देने के लिए क्रियाएं करना पड़ती हैं। इस पद्धति में विभिन्न क्रियाओं को एक क्रम में व्यवस्थित करके एक रेखा–चित्र तैयार किया जाता है जिसे कार्यक्रम रेखा–चित्र कहते हैं। इसी आधार पर इस पद्धति के कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण का नाम दिया गया है। इस पद्धति के अंतर्गत दो मिलती–जुलती नियंत्रण प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है जिनका वर्णन निम्नलिखित है:

1. कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रणाली
2. संक्रमक मार्ग पद्धति

1 **कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रणाली** : पर्ट का प्रयोग ऐसी परियोजनाओं को पूरा करने में लगने वाले समय को नियंत्रण करने के लिए ज्ञात किया जाता है जो बिल्कुल नई है। अर्थात ऐसी परियोजनाओं जिनके पूरा करने के बारे में पहले से कोई विशष जानकारी नहीं है। पर्ट के अंतर्गत पूरी परियोजना को विभिन्न चरणों अथवा घटनाओं में विभक्त कर दिया जाता है। इसके बाद यह निश्चित किया जाता है कि एक घटना से दूसरी घटना तक पहुंचने के बीच में की जाने वाली क्रिया में कितना समय लगेगा और उस क्रिया को पूरा करने में किस–किस साधन (श्रम, माल, मशीन आदि) की जरुरत पड़ेगी। घटनाओं और क्रियाओं का निर्धारण कर लेने के बाद इसको इस ढंग से व्यवस्थित किया जाता है ताकि परियोजना को पूरा करने मे कम से कम समय लगे।

संक्रमक मार्ग पद्धति : कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण की दूसरी पद्धति 'संक्रमक मार्ग–पद्धति' है। यह पद्धति PERT से मिलती–जुलती है। पर्ट प्रक्रिया के समय अनुमान की बात को छोड़कर शेष सभी बातें यहां पर भी लागू होती हैं। CPM को समझने के लिए इसकी PERT के साथ समानताओं एवं असमानताओं का अध्ययन किया जाना जरुरी है।

प्रबंध सूचना प्रणाली - MIS (Management Information System) : एक व्यवसाय की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वहां विचलनों के लिए कितनी शीघ्रता से सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। अतिशीघ्र सुधरात्मक कार्यवाही करने के लिए नवीनतम, शुद्ध तथा समय पर सूचनाएं उपलब्ध होना जरुरी है। और ऐसा MIS (Management Information System) द्वारा संभव है।

MIS एक ऐसी प्रणाली है जिसके अंतर्गत सूचनाओं के एकत्रण, संग्रहण, प्रोसेसिंग तथा वितरण ्व्यवस्था होती है। इस प्रणाली में कम्प्यूटर व अनेक दूसरे उपकरणों का उपयोग किया जाता है। ये उपकरण अतिशीघ्र आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध करके निर्णयन में मदद करते हैं। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि MIS प्रबंधकों के नियंत्रण कार्य का सरल बनाने में अहम भूमिका निभा रही है।

MIS के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :

(i) यह सूचनाओं के एकत्रण, संग्रहण, प्रोसेसिंग व वितरण द्वारा एक संगठन के विभिन्न विभागों को एक–दूसरे से जोड़ती है।

(ii) यह निर्णयन व नियंत्रण कार्य को सरल बनाती है

(iii) इससे उच्च कोटि की सूचनाएं उपलब्ध होना संभव हुआ है।

(iv) यह सूचनाओं को कम लागत पर उपलब्ध करती हे।

(v) यह आवश्यक सूचनाओं को संक्षिप्त में प्रस्तुत करती है। परिणामतः प्रबंधकों पर ये सूचनाओं का भार कम होता है।

सारां�

नियंत्रण प्रबन्धकीय प्रक्रिया का अंतिम चरण है। किसी भी उपक्रम अथवा उसके विभागों के लक्ष्यों की प्रप्ति के लिए अपनाई गई योजनाएं उनके मूल रुप से कार्यन्वित की जा रही है अथवा नहीं, यह जानने के लिए अधिनस्थों के कार्यों की जांच पड़ताल करके उनमें आवश्यकतानुसार उचित समय पर सुधार करना 'नियंत्रण' कहलाता है। अनेक विद्वान नियंत्रण को प्रबंध का पर्यायवाची मानते हैं। जब प्रबंधक नियंत्रण का कार्य कर रहा होता है तो ऐसा लगता है जैसे वह उपक्रम के प्रबंध कार्य में संलग्न है। उस व्यक्ति को सरलता से हम प्रबंध दल का सदस्य स्वीकार कर लेते हैं जो एक दूसरे के कार्यों की जांच–पड़ताल, कर उनमें संशोधन करता है और उनका मार्गदर्शन करता है।

ये कुछ धारणाएं हैं जो सामान्यतः नियंत्रण के संबध में विद्यमान हैं। वास्तव में नियंत्रण, प्रबंध न होकर, प्रबंध का अंश मात्र है अथवा इसे प्रबंध के अनेक कार्यों में से एक कार्य माना जा सकता है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र□न

प्र.1 'नियंत्रण प्रबंध का एक अभिन्न कार्य है।' क्या आप सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई चार कारण दीजिए।

प्र.2 'यदि नियोजन सावधानीपूर्वक किया जाए और उस के अनुसार प्रबंध के अन्य कार्य उचित दिशा में चलते रहे तो प्रबंध में नियंत्रण कार्य की कोई आवश्यकता नहीं है' । क्या आप इस कथन से सहमत हैं? उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।

प्र.3 नियंत्रण 'लक्ष्यों को प्राप्त करने' तथा 'कर्मचारियों की मनोदशा को सुधारने' में किस प्रकार सहायता करता है?

प्र.4 'नियंत्रण एक सर्वव्यापक कार्य है।' समझाइए।

प्र.5 क्या नियंत्रण 'प्रमापों की शुद्धता की जांच' तथा 'कर्मचारी अभिप्रेरणा में सुधार' मे मदद करता है? वर्णन कीजिए।

प्र.6 नियंत्रण की चार सीमाएं समझाइए।

प्र.7 नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्र□न

प्र.8 बजटीय नियंत्रण पर एक विस्तृत नोट लिखिए।

प्र.9 बजट से आपका क्या अभिप्राय है? व्यवसाय में प्रयोग हाने वाले मुख्य बजटों का वर्णन कीजिए।

प्र.10 बजटीय नियंत्रण की विशेषताएं बताइए।

प्र.11 बजट के पांच प्रकार बताइए।

प्र.12 विभिन्न आधुनिक नियंत्रण तकनीकों का वर्णन उचित उदाहरण सहित कीजिए।

प्र.13 प्रबंधकों द्वारा संस्थानों द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धतियाँ कौन–कौन सी हैं?

प्र.14 उत्तरदायित्व लेखांकन से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्र.15 कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण क्या है? कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रणालरी तथा संक्रमक मार्ग पद्धति में रेखा–चित्र कैसे बनाया जाता है?

सकेत : (कार्यक्रम रेखाचित्र का अर्थ बताइए। PERT तथा CPM की प्रक्रिया का वर्णन करें। ध्यान रहे कि दोनों की प्रक्रिया लगभग एक ही है। दोनों में अंतर स्पष्ट करने के लिए इनकी समानताओं एवं असमानताओं को लिखें।

प्र.16 PERT का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए। इसके लाभ एवं सीमाएं भी बताएं।

प्र.17 प्रबंध सूचना प्रणाली कैसे नियंत्रण में सहायक है?

खण्ड – 4

इकाई – 1 संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत व्यवहार

विश्य सूची

अध्ययन के उद्दश्य

11.0 प्रस्तावना

11.1 संगठनात्मक व्यवहार

11.2 संगठनात्मक व्यवहार की परिभाषाएँ

11.3 संगठनात्मक व्यवहार की विशेषताएँ

11.4 संगठनात्मकता के मुख्य अंग

11.5 संगठनात्मकता की मूल धारणाएँ

11.6 व्यक्तित्व का अर्थ

11.7 व्यक्तित्व की परिभाषाएं

11.8 व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ

11.9 व्यक्तित्व के निर्धारित घटक

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ
- संगठनात्मक व्यवहार की प्रक्रति
- संगठनात्मक व्यवहार की मूल धारणाएँ
- व्यक्तित्व का अर्थ व परिभाषाएं
- व्यक्तित्व व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ
- व्यक्तित्व के निर्धारित घटक

11.0 प्रस्तावना

लोग संगठन में कोई विशेष व्यवहार क्यों करते हैं? एक व्यक्ति या समूह दूसरों से अधिक उत्पादकीय क्यों होते हैं? ये और इसी तरह के कुछ अन्य प्रश्न अध्ययन के एक नये क्षेत्र संगठनात्मक व्यवहार से संबंधित है।

'संगठनात्मक दो शब्दों के योग से बना है, संगठन+व्यवहार। संगठन का अभिप्राय एक ऐसी इकाई से है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सम्मिलित होकर सामूहिक प्रयास द्वारा उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए काम करते हैं। जैसे – एक कम्पनी, एक स्कूल, एक क्लब, आदि सभी संगठन हैं दूसरी ओर, व्यवहार का अभिप्राय किसी एक व्यक्ति या समूह द्वारा की जाने वाली क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं से है। जैसे – एक व्यक्ति अथवा समूह संगठन में महत्वपूर्ण काम मिलने पर बहुत खुश होता है। यह उसका व्यवहार है। इस प्रकार संगठनात्मक व्यवहार का अभिप्राय एक संगठन में रहकर लोगों द्वारा किए जाने वाले व्यवहार से है।

11.1 संगठनात्मक व्यवहार (Organizational Behaviour)

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर संगठनात्मक व्यवहार की जानकारी क्यों आवश्यक है? इसका उत्तर है–यदि यह जान लिया जाए कि लोग संगठन में रहकर कोई विशेष व्यवहार क्यों करते हैं अथवा किस संगठनात्मक वातावरण में लोग कैसा व्यवहार करते हैं, तो ऐसी विधियां खोजी जा सकती हैं जिनके द्वारा लोग अधिक प्रभावपूर्ण से काम करने लग जाएं। अतः संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त होती है कि लोग संगठन में कोई विशेष व्यवहार क्यों करते हैं अथवा एक व्यक्ति या समूह दूसरों से अधिक उत्पादकीय क्यों होता है। इस तरह की जानकारियां प्राप्त करके लोगों के व्यवहार के संबंध में भविष्यवाणी करना तथा उसे नियंत्रित करना संभव होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन से संगठनात्मक प्रभावशीलता में सुधार किया जा सकता है।

टूल बाक्स – 1
संगठनात्मक व्यवहार संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ संगठन में मानवीय व्यवहार का अध्ययन करने से है ताकि संगठनात्मक प्रभावशीलता में सुधार किया जा सके।

11.2 संगठनात्मक व्यवहार की परिभाशाएं

संगठनात्मक व्यवहार की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

(i) **डेविस तथा न्यूस्ट्राम** के अनुसार, ''लोग संगठनों में किस प्रकार काम करते हैं, इसका अध्ययन करना तथा प्राप्त जानकारी का उपयोग करना ही संगठनात्मक व्यवहार है।''

(ii) **फ्रेड लुथांस** के अनुसार, ''संगठनात्मक व्यवहार संगठनों मे मानवीय व्यवहार की समझ, पूर्वानुमान एवं नियंत्रण से प्रत्यक्ष रुप से संबंधित है।''

(iii) **जॉन न्यूस्ट्राम तथा कीथ डेविस के** अनुसार, ''संगठनात्मक व्यवहार, इस बात का अध्ययन व प्राप्त जानकारी का उपयोग करना ही संगठनों में लोग व्यक्तिगत व सामूहिक रुप से कैसे व्यवहार करते हैं। यह ऐसी विधियों की पहचान है जिनमें लोग अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकें।

(iv) **डरबिन** के अनुसार, ''संगठनात्मक व्यवहार का अध्ययन उस संगठन के लोगों के व्यवहार को समझने का एक व्यवस्थित प्रयास है जिसके लोग अभिन्न अंग हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर संगठनात्मक व्यवहार को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –

''संगठनात्मक व्यवहार व्यक्ति एवं समूह द्वारा की गई उस क्रिया या प्रतिक्रिया का वर्णन करता है जो काम के दौरान आस–पास के वातावरण के संपर्क में आने से उत्तेजित होती है।''

11.3 संगठनात्मक व्यवहार की वि□ाशताएँ अथवा प्रकृति

संगठनात्मक व्यवहार की विशेषताएँ अथवा इसकी प्रकृति के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैः–

(i) **OB एक व्यवस्थित अध्ययन हैः** एक व्यवस्थित अध्ययन है न कि अटकलबाजी। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को सर्दी के मौसम में बुखार हो जाए तो उसका एक शुभचिंतक कहेगा कि गर्म कपड़े नही डाले होंगे, दूसरा कहेगा कि ठंडे पेय पदार्थ ले लिए होंगे, तीसरा कहेगा कि इस मौसम में ऐसा होता ही है, आदि आदि। यह किसी को नहीं पता कि ऐसा क्यों हुआ। फिर भी लोग अटकल करने से नहीं चूकते। OB के अंतर्गत इस तरह की अटकलबाजियों के स्थान पर व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। यह जानने की कोशिश की

जाती है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ। अतः एक व्यवस्थित अध्ययन है जिसमें कारण एवं परिणाम को पहचानने का प्रयास किया जाता है।

(ii) **OB की विशय वस्तु** : OB के अंतर्गत मुख्यतः व्यक्ति, समूह, संगठन संरचना, तकनीक, तथा वातावरण का अध्ययन किया जाता है। यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति एवं समूह विभिन्न परिस्थितियों में कैसे व्यवहार करते हैं। विभिन्न प्रकार की संगठन संरचनाओं (जैसे – पदों का क्रम, नियम, कार्यविधि, रिपोटिंग पद्धति, रिवार्ड पद्धति आदि) का लोगों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है। तकनीक (जैसे–उत्पादन विधि) से लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित होता है। इसी प्रकार वातावरण (जैसे –परिवार, सरकार, मित्र आदि) लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।

(iii) **OB उपयोग प्रधान है** : OB से अनेक ऐसी विधियां प्राप्त होती हैं जिनके उपयोग से संगठन को कुशल एवं प्रभावी बनाया जा सकता है। ये विधियां संगठन ढांचे, अभिप्रेरणा, संदेशवाहन, नेतृत्व, प्रशिक्षण, संघर्ष, तनाव, आदि के संबंध में हो सकती है। इनकी प्राप्ति के लिए कर्मचारी मनोवृत्ति, अवरोध, सीखना, व्यक्तित्व, व्यवहारात्मक विशलेषण तथा मानव व्यवहार के अन्य पहलुओं के संबंध में लगातार शोध किए जा रहे हैं।

(iv) **OB निश्पादन प्रधान है** : OB किसी न किसी रुप में निष्पादन से संबंधित होता है। इसके अंतर्गत निष्पादन से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजे जाते हैं। जैसे –किसी व्यक्ति की performance कम या अधिक अधिक क्यों है? इसे कैसे सुधारा जा सकता है? क्या प्रशिक्षण से इसमें सुधार संभव है?

(v) **OB विभिन्न द[illegible]नग्राही ज्ञान है** : इसका अभिप्राय यह है कि यह विषय अनेक अन्य विषयों के सिद्धान्त, मॉडल, विचारधाराओं तथा पद्धतियों के मिश्रण से बना है। OB के वर्तमान स्थिति तक पहुंचने में योगदान करने वाले मुख्य विषय इस प्रकार हैं – मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीति शास्त्र, आदि।

(vi) **OB प्रबंध का एक अंग है** : OB इस बात से संबंधित है कि व्यक्ति (व्यक्तिगत व सामूहिक रुप से) संगठन में कैसे व्यवहार करता है। दूसरी ओर, प्रबंध संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति से संबंधित है। उद्देश्य मानव संसाधन के बिना प्राप्त नहीं किए जा सकते। अतः एक प्रबंधक को OB का ज्ञान होना आवश्यक है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्ति का जन्म

प्रबंध को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं बल्कि प्रबंध के एक सहयोगी के रुप में हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि OB प्रबंध का एक अह्म अंग है।

(vii) **OB परिवर्तन प्रधान है** : OB की प्रकृति परिवर्तन प्रधान है। मानवीय व्यवहार बदलता रहता है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति की मनोवृति, अवरोध, व्यक्तित्व, आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। परिणामतः व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने की नई विधियां खोजते रहना पड़ता है। ऐसा करके ही वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

(viii) **OB मानव व्यवहार के वर्णन, अनुमान व नियंत्रण से संबंधित है**: OB की प्रकृति मानव व्यवहार के वर्णन, अनुमान व नियंत्रण करने की है।

- OB के अंतर्गत यह जानकारी प्राप्त होती है कि किसी व्यक्ति के किसी विशेष व्यवहार के क्या कारण हैं। उदाहरण के लिए, एक महत्वपूर्ण व्यक्ति कम्पनी को छोड़कर चला जाता है। खोज करने पर पता चलता है कि पर्याप्त वेतन के अभाव में ऐसा हुआ। यह मानव व्यवहार के वर्णन की बात है।
- OB के अंतर्गत यह जानकारी प्राप्त होती है कि एक व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेगा। यह मानव व्यवहार का अनुमान है।
- OB के अंतर्गत यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि लोग किसी विशेष परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेगा। विपरीत व्यवहार की आशंका को समय पर ही सही विधि लागू करके समाप्त कर दिया जाता है। यह मानव व्यवहार का नियंत्रण है।

(ix) **OB अध्ययन का नवीन क्षेत्र है** : OB अध्ययन का एक नवीन क्षेत्र है। इसकी लोकप्रियता सन् 1950 से लगातार बढ़ रही है। फिर भी इसे एक विषय की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि अभी तक इसके स्वयं के सिद्धान्त व अवधारणाएँ नहीं बनाए ता सके हैं। इस क्षेत्र की पहचान बनाने के लिए अनेक दूसरे विषयों के सिद्धान्त एवं अवधारणाएँ की मदद ली गई है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभी अपनी OB शैशव अवस्था में है और धीरे–धीरे विकास की ओर अग्रसर है।

(x) **OB में अध्ययन के तीन स्तर हैं** : OB में तीन स्तरों पर मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। ये हैं – व्यक्ति, समूह व संगठन स्तर। इन्हें निम्न चित्र में दिखाया गया है।

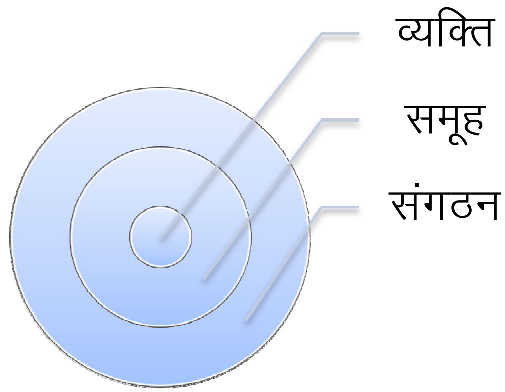

चित्र 11.1 OB में अध्ययन के तीन स्तर

(xi) **OB विज्ञान एवं कला दोनों हैं:** OB के अंतर्गत व्यक्तियों के व्यवहार के कारणों एवं परिणामों के बीच संबंध स्थापित किया जाता है। अतः यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। दूसरी ओर, OB के अंतर्गत किए गए अध्ययनों का प्रयोग लोगों के व्यवहार का वर्णन करने, अनुमान लगाने व नियंत्रण करने के लिए किया जाता है अतः यह एक कला है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 संगठनात्मक व्यवहार को समझना क्यों आवश्यक है?
प्र.2 संगठनात्मक व्यवहार विज्ञान है या कला?
प्र.3 संगठन में परिवर्तन क्यों आवश्यक हैं?
प्र.4 क्या संगठनात्मक व्यवहार एक नवीन क्षेत्र है?

11.4 संगठनात्मक व्यवहार के मुख्य अंग

OB व्यक्ति, समूह, तथा वातावरण विशेषताओं का अध्ययन है। इसके अतिरिक्त लोग एक ढ़ांचे मे रहकर काम करते हैं और काम करते समय तकनीक का प्रयोग भी करते हैं। इस प्रकार कुल पांच अंगों से मिलकर बनता है। ये हैं – व्यक्ति, समूह, तकनीक, संगठन, संरचना तथा वातावरण। इनकी संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित हैं :

(i) **व्यक्ति** : व्यक्ति ही किसी संगठन का निर्माण करते हैं। इसलिए व्यक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण्ण अंग है। व्यक्तियों के बारे में एक विशेष बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से भिन्न होता है। OB के अंतर्गत लगभग एक–सा व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की

श्रेणियों बना दी जाती हैं। फिर प्रत्येक श्रेणी की विशेषताओं का अध्ययन करके मानव व्यवहार के वर्णन, अनुमान व नियंत्रण की विधियों की खोज की जाती है।

(ii) **समूह** : संगठन का अभिप्राय उस इकाई से है जहां दो या अधिक व्यक्ति समूह में कार्य करते हैं। इसलिए संगठनात्मक व्यवहार में मानव समूह का विशेष महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत रुप में एव सामूहिक रुप में भिन्न तरीके से व्यवहार करता है। OB के अतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि लोग जब समूह में होते हैं तो कैसे व्यवहार करते हैं ताकि समूहों में लोगों के आचरण को नियंत्रित किया जा सके।

(iii) **जॉब व तकनीक** : जॉब का अभिप्राय कार्य–स्थल पर व्यक्तियों को सौंपे गए कुल काम से है। जॉब स्वयं लोगों के व्यवहार को प्रभावित करती है। इसलिए OB में जॉब पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। यहां यह देखा जाता है कि जो जॉब किसी व्यक्ति या समूह को सौंपी जा रही है क्या वे उसे पसंद करते हैं या नहीं। जॉब के दौरान व्यक्तियों व समूहों में होने वाले संपर्क से भी उनका व्यवहार प्रभावित होता है। इसलिए जॉब विभाजन पर विशेष ध्यान दिए जाने की जरुरत होती है। इसी प्रकार, जॉब के दौरान होने वाला व्यवहार तकनीक व प्रयोग होने वाले उपकरणों से भी प्रभावित होता है। मनपसंद तकनीक व उपकरणों के प्रयागे से लोगों का व्यवहार सकारात्मक रहता है अन्यथा इसके विपरीत। अतः जॉब व तकनीक दोनों OB के महत्वपूर्ण अंग हैं।

(iv) **संगठन संरचना** : संगठन संरचना लोगों के कार्य संबंधों को परिभाषित करती है। इसके अंतर्गत लोगों के मध्य अधिकार एवं उत्तरदायित्व का वितरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त रिपोर्टिंग पद्धति, रिवार्ड पद्धति, नियम कार्यविधि, आदि का निर्धारण होता है। प्रत्येक प्रकार की संगठन संरचना में ये भिन्न होते हें। कार्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संगठन संरचना का निर्धारण किया जाता है। OB के अंतर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किस परिस्थिति में किस प्रकार की संगठन संरचना उपयुक्त रहेगी। संगठन संरचना जितनी अधिक प्रभावी होती है, कर्मचारियों के व्यवहार को नियंत्रित करना उतना ही अधिक आसान रहता है।

(v) **वातावरण** : कोई भी संगठन शून्य में स्थापित नहीं होता। इसकी स्थापना समाज में होती है। समाज के विभिन्न अंग, जैसे–परिवार, सरकार, सामाजिक संस्थाएं मिलकर वातावरण बनाते हैं। वातावरण के इन घटकों का लोगों के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। OB के

अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वातावरण के विभिन्न अंग लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।

11.5 संगठनात्मक व्यवहार की मूल धाराणाएं अथवा मान्यताएं

OB के अंतर्गत मानव व्यवहार के संबंध में जो कुछ भी कहा जाता है वह कुछ आधारभूत धारणाओं अथ्वा मान्यताओं पर आधारित है। ये धराणाएं अथवा मान्यताएं निम्नलिखित हैंः

(i) **व्यक्तिगत वि�शताओं में भिन्नताः** OB की एक महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्राणी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि 'each person is unmatched'। प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति, अवबोध, सीखने की क्षमता, व व्यक्तित्व दूसरों से भिन्न होती है। प्रत्येक व्यक्ति का अभिप्रेरित होने का ढंग अलग होता है, जैसे – कुछ लोग मौद्रिक प्रेरणाओं से तथा कुछ अमौद्रिक प्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग नेतृत्व शैलियों को पसंद करता है। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि प्रबंधक को कर्मचारियों से व्यवहार करते समय उनकी विशेषताओं का ध्यान रखना होता है।

(ii) **एक व्यक्ति संपूर्णता में** : OB की दूसरी मान्यता प्रत्येक व्यक्ति को संपूर्णता के रुप में देखना है। इसका अभिप्राय यह है कि जब एक व्यक्ति कार्य–स्थल पर काम करता है तो उसकी भावनाएं, आवश्यकताएं, पारिवारिक जीवन, आदि उसके साथ ही रहते हैं। ऐसा संभव नहीं है कि कार्य–स्थल पर व्यक्ति के साथ व्यवहार करते समय उसके पारिवारिक जीवन के प्रभावों को अलग कर दिया जाए। उदाहरण के लिए, यदि एक कर्मचारी का पारिवारिक जीवन अस्त–व्यस्त है तो इससे उसका कार्य–स्थल पर आकर काम करना प्रभावित होगा। कहने का अभिप्राय यह है कि कर्मचारी के साथ व्यवहार करते समय कार्य–स्थल पर उसकी उपस्थिति के साथ–साथ उसके शेष जीवन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अतः प्रबंधक द्वारा कर्मचारियों को 'संपूर्ण मानव' के रुप में स्वीकार करना चाहिए।

(iii) **कोई व्यवहार आकस्मिक नहीं होता** : OB के अंतर्गत ऐसा माना जाता है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यवहार अचानक/अकारण नहीं होता बल्कि उसके पीछे कोई–न–कोई कारण अवश्य होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई कर्मचारी किसी मुद्दे को

लेकर अपने बॉस का विरोध करता है तो समझना चाहिए कि यह विरोध आकस्मिक नहीं है बल्कि इसका कोई विशेष कारण अवश्य है। अतः प्रबंधक के कर्मचारियों के व्यवहार के पीछे काम कर रही शक्तियों को पहचानते हुए ही उनके साथ व्यवहार करना चाहिए।

(iv) **भागीदारी की इच्छा** : OB की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति निर्णयों में भागीदारी की इच्छा रखता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह एक योग्य एवं समझदार प्राणी है। उसमें बेहतर सलाह देने व निर्णय लेने की क्षमता है। यदि उसे मौका दिया जाए तो वह कोई भी काम करके दिखा सकता है। अतः प्रबंधक को कर्मचारियों से व्यवहार करते समय उनकी इस भावना का आदर करना चाहिए।

(v) **मानव एक आर्थिक उपकरण नहीं है**: OB की इस मान्यता के अनुसार, मानव के साथ अन्य भौतिक (निर्जीव) वस्तुओं से भिन्न व्यवहार किया जाना चाहिए। मानव एक जीवित प्राणी है जो सम्मान प्राप्ति का भूखा होता है। उसके सम्मान को ठेस पहुंचे, यह उसे बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं है। अतः प्रबंधकों को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि कर्मचारी एक मानव है और उसके साथ मानवीय व्यवहार ही अपेक्षित है।

(vi) **संगठन एक सामाजिक प्रणाली है** : OB के अंतर्गत माना जाता है कि संगठन एक सामाजिक प्रणाली है। यहां सामाजिक व प्रणाली का अर्थ स्पष्ट कर लेना जरुरी है। सामाजिक का अभिप्राय उस इकाई से है जिसका संबंध समाज प्राणियों से है। दूसरी ओर, प्रणाली अनेक अंगों वाली ऐसी इकाई है जिसके सभी अंग मिलकर काम करते हैं। तभी सफलता मिलती है। जैसे – हमारा शरीर प्रणाली का एक अच्छा उदाहरण है। इसके आधार पर संगठन को एक सामाजिक प्रणाली कहना उचित है। – क्योंकि इसे लोगों द्वारा (सामजिक प्राणियों द्वारा) स्थापित किया जाता है। और सभी लोग (अर्थात अंग) औपचारिक तथा अनौपचारिक रुप से एक–दूसरे के साथ जुड़े होते है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रबंधक को एक व्यक्ति से व्यवहार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा किए गए व्यवहार से अन्य व्यक्ति (प्रणाली के अन्य अंग) भी प्रभावित हो सकते हैं।

(vii) **पारस्परिक हित** : OB के अंतर्गत पारस्परिक हित की धारणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रत्येक संगठन में दो पक्षधर होते हैं – एक कर्मचारी वर्ग तथा दूसरा संगठन स्वयं (अर्थात) दोनों का पारस्परिक हित होता है। एक ओर, संगठन के अभाव में कर्मचारी वर्ग अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता। दूसरी ओर, कर्मचारियों के अभाव में संगठन

द्वारा अपने उद्देश्यों को पूरा करना असंभव है। पारस्परिक हित धारणा टीम भावना की ओर इशारा करती है अर्थात जब दोनों पक्ष साथ मिलकर काम करते हैं। तभी दोनों के उद्देश्यों को सफलता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। यह स्थिति दोनों पक्षकारों को संतुष्टि प्रदान करने वाली होती है। अतः प्रबंधक को व्यवहार करते समय इस बात का ध्यान रखना होता है कि दोनों पक्षकारों को ही एक–दूसरे की जरुरत है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.5 निम्नलिखित को समझाएं। (i) समूह (ii) जॉब (iii) व्यक्ति (iv) वातावरण प्र.6 संगठनात्मक व्यवहार की किन्हीं दो मूल विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

11.6 व्यक्तित्व का अर्थ

संगठनात्मक व्यवहार में मुख्य रुप से मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुरुप ही व्यवहार करता है। प्रबंधकों के लिए आवश्यक है कि वे 'व्यक्तित्व' को समझें ताकि वे अपने अधीनस्थों के व्यवहार को नियंत्रित कर सकें।

व्यक्तित्व का अभिप्राय एक व्यक्ति के मानसिक तथा शरीरिक गुणों के मिश्रण से है। जिनके आधार पर वह वातावरण से विशेष समायोजन स्थापित करता है। व्यक्तित्व के आघार पर ही एक व्यक्ति अपने समूह के अन्य सदस्यों से भिन्न दिखाई देता है। व्यक्तित्व व्यक्ति के किसी एक गुण को ही नहीं कहा जाता है बल्कि यह व्यक्ति के सभी मानसिक व शारीरिक गुणों का योग है। इसीलिए व्यक्तित्व को संपूर्णता के रुप में माना जाता है। जिस प्रकार जब अनेक ईटों को सीमेंट के साथ जोड़ दिया जाता है तो मकान का निर्माण होता है। ठीक उसी प्रकार जब व्यक्ति के अनेक गुणों को जोड़ दिया जाता है तो व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

टूल बाक्स – 2
व्यक्तित्व व्यक्तित्व जन्मजात व अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।

11.7 व्यक्तित्व की परिभाशएं

विभिन्न विद्वानों ने व्यक्तित्व को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। इसकी मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :–

1- **आइजैक के अनुसार**, ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धिमत्ता और शारीरिक संरचना का लगभग स्थाई व स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।''

2- **ऑलपोर्ट** के अनुसार : ''व्यक्तित्व, व्यक्ति में उन मनो–वैज्ञानिक प्रणालियों का गतिशील संगठन है जो उसके वातावरण से उसके अद्वितीय समायोजन निर्धारित करती है।''

3- **वैलनटीन** के अनुसार, ''व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित स्वभाव का योग है।''

4- **चाईल्ड के** अनुसार, ''व्यक्तित्व से तात्पर्य कमोवेश स्थाई आंतरिक घटकों से है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाते हैं और समान परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार से भिन्न करते हैं।''

5- **वरगस** के अनुसार, ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के व्यवहार, विचारों तथा भावनाओं का अद्वितीय व अपेक्षाकृत स्थाई प्रारुप होता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं कें आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विभिन्न गुणों का ऐसा गतिशील संगठन होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को अद्वितीय (अर्थात अन्यों से भिन्न) बनाता है।

11.8 व्यक्तित्व की मुख्य वि□शताएँ

व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **मनो□ारीरिक तंत्रः** व्यक्ति एक ऐसा तंत्र है जिसमें दो प्रकार के गुण सम्मिलित होते हैंः जैसे–मानसिक गुण तथा शारीरिक गुण। मानसिक गुणों के अंतर्गत चरित्र, स्वभाव, बुद्धिमत्ता, आदि को सम्मिलित किया जाता है। दूसरी ओर, शारीरिक गुणों में व्यक्ति का रंग, कद, भार, स्वास्थ्य, आदि सम्मिलित होते हैं। व्यक्तित्व न तो पूर्ण रुप से मानसिक और न ही पूर्ण रुप सें शारीरिक गुणों पर आधारित है बल्कि यह दोनों का मिश्रण होता है।

(ii) **गतिशील संगठन** : व्यक्तित्व एक गतिशील संगठन है। संगठन का अभिप्राय विभिन्न मानसिक व शारीरिक गुणों के एकत्रण से है। अर्थात जब व्यक्ति के सभी गुणों को सामूहिक रुप में देखते हैं उसे संगठन कहते हैं। संगठन के विभिन्न गुणों को अलग नहीं किया जा सकता। गतिशील का अभिप्राय परिवर्तित होने से है। संगठन कें विभिन्न गुणों में समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है। इसीलिए व्यक्तित्व को एक गतिशील संगठन का नाम दिया गया है। उदाहरण के लिए, माना आज कोई व्यक्ति ईमानदार व समयनिष्ठ है। हो सकता है कल को वह ईमानदार व समयनिष्ठ न रहे।

(iii) **संगतता** : व्यक्तित्व की तीसरी मुख्य विशेषता संगतता है। इसका अभिप्राय व्यक्ति के व्यवहार का दो भिन्न अवसरों पर लगभग समान होता है। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति घर पर समयनिष्ठ है तो वह कार्यालय में भी समयनिष्ठ रहेगा।

(iv) **समायोजन योग्यता** : व्यक्तित्व व समायोजन योग्यता में गहरा संबंध है। व्यक्तित्व के आधार पर ही एक व्यक्ति वातावरण से समायोजन स्थापित करता है। यदि एक व्यक्ति वातावरण में स्वयं का समायोजन न कर सके तो कहा जाएगा कि व्यक्ति में व्यक्तित्व का अभाव है अन्य शब्दों में, व्यक्तित्व ऐसी शक्ति है जो हर तरह के वातावरण में व्यक्ति को समायोजित होने में मदद कराती है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न होता है। इसीलिए एक ही तरह के वातावरण में विभिन्न लोग भिन्न ढंग से समायोजन स्थापित करते हैं।

(v) **अद्वितीयता** : व्यक्तित्व में अद्वितीय होने की विशेषता होती है। कोई भी दो व्यक्ति चाहे कितने ही समान क्यों न हों, एक जैसे व्यक्तित्व वाले नहीं होते। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति अनेक विशेष/अद्वितीय गुणों का समूह होता है। फलस्वरुप, प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अद्वितीय होता है।

(vi) **संपूर्णता** : प्रत्येक व्यक्ति में अनेक मानसिक एवं शारीरिक गुण विद्यमान होते हैं। इन सभी गुणों को मिलाकर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अन्य शब्दों में, प्रत्येक गुण व्यक्तित्व का एक अंशमात्र होता है। सभी गुणों के कुल को ही व्यक्तित्व कहते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व एक संपूर्ण इकाई के रुप में होता है। इसके अंदर कें गुणों को अलग नहीं किया जा सकता। यदि ये गुण अलग हो जाएं तो व्यक्तित्व का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

(vii) **दृढ़ता** : दृढ़ता का होना व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यदि व्यक्तित्व में से दृढ़ता को घटा दिया जाए तो शेष असफलता बचती है। दृढ़ व्यक्तित्व वाले लोग ही हर प्रकार के वातावरण में समायोजन कर सकते हैं और सफल होते हैं। जिस व्यक्तित्व में दृढ़ता का अभाव हो उसे अच्छा व्यक्तित्व नहीं माना जा सकता।

(viii) **सामाजिकता** : व्यक्तित्व सामाजिक संपर्कों से प्रभावित होता है। जब एक व्यक्ति समाज के विभिन्न लोगों के संपर्क में आता है तो उसे कई प्रकार कें अनुभव प्राप्त होते हैं ये अनुभव व्यक्तित्व विकास में अहम भूमिका अदा करते हैं। व्यक्तित्व के समाज के संपर्क में आने से परिपक्वता आती है जिससे व्यक्तित्व में निखार आता है।

(ix) **आत्म–चेतना** : आत्म–चेतना का अर्थ 'स्वयं का ज्ञान' अथवा 'स्वयं के प्रति जागरुकता' से है। जब एक व्यक्ति में आत्म–चेतना आ जाती है तभी व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। अन्य शब्दों में, जब तक व्यक्ति स्वयं को नहीं जानता तब तक व्यक्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे– एक बच्चे में आत्म–चेतना का अभाव होने के कारण ही व्यक्तित्व का भी अभाव होता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है और स्वयं को जानने लगता है तभी उसका व्यक्तित्व दिखाई देने लगता है।

(x) **लक्ष्य निर्देशित** : व्यक्तित्व व लक्ष्य में गहरा संबंध है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व लक्ष्य द्वारा निर्देशित होता है। लक्ष्य ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को अच्छा या खराब बनाता है। यदि एक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य सकारात्मक है तो उसका व्यक्तित्व उच्च कोटि का होगा अन्यथा इसके विपरीत। अतः कहा जा सकता है कि लक्ष्य व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 क्या व्यक्तित्व जन्मजात प्रवृत्ति है?
प्र.8 ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व को कैसे परिभाषित किया है?
प्र.9 आतम चेतना से आप क्या समझते हैं?

11.9 व्यक्तित्व के निर्धारक घटक

- व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाल घटक

एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करने में अनेक घटकों का योगदान होता है। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कुछ घटक ऐसे होते हें जो बच्चे को अपने माता–पिता से प्राप्त होते

हैं। कुछ अन्य घटकों का संबंध वातावरण सक होता है। इसी प्रकार कुछ घटकों को मनोवैज्ञानिक घटकों की श्रेणी में रखा जाता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

a) जैविक अथवा वंशानुक्रम घटक

b) वातावरणीय घटक

c) मनोवैज्ञानिक घटक

A. जैविक अथवा वं□ानुक्रम घटक

इन घटकों का संबंध व्यक्ति के वंशानुक्रम पक्ष से होता है। ये घटक व्यक्ति में जन्म से ही उपस्थित होते हैं। ये सभी व्यक्तियों को अपने माता–पिता व अन्य पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। ये व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं इस श्रेणी में आने वाले मुख्य घटक निम्नलिखित हैं।'

1. **भारीरिक संरचना** : व्यक्तित्व निर्माण में शारीरिक संरचना में मुख्य रुप से रंग–रुप, कद, भार, शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक दोष आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि सभी गुण व्यक्तियों को अपने माता–पिता से प्राप्त होते हैं। यदि एक व्यक्ति में ये सभी गुण संतुलित मात्रा में उपलब्ध हों तो वह देखने में सुन्दर लगता है और सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। इससे उसका आत्म–विश्वास बढ़ता है। व्यक्ति में आत्म – विश्वास के बढ़ने का उसके व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता हे। इसके विपरीत, सुंदर शारीरिक संरचना के अभाव में आत्म–विश्वास की कमी रहती है जिसका व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

2. **बुद्धि** : शारीरिक संरचना की भांति ही बुद्धि को भी वंशानुक्रम घटक ही माना जाता है। बुद्धि व्यक्तित्व का सबसे अहम घटक होता है। यदि एक व्यक्ति की शारीरिक संरचना संतुलित है लेकिन उसमें बुद्धि का अभाव है तो उसका व्यक्तित्व उच्च श्रेणी का नहीं माना जाएगा। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति की शारीरिक संरचना असंतुलित है लेकिन उसमें बुद्धि है तो उसका व्यक्तित्व उच्च श्रेणी का माना जाएगा। बुद्धिमान व्यक्ति में स्वयं को हर तरह के वातावरण में समायोजित करने के क्षमता होती है। लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और समाज में उसकी एक विशेष पहचान होती है।

3. **लिंग** : यदि भारत के संदर्भ में देखा जाए तो उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालता है। भारत में प्रायः लड़कियों की ओर विशेष ध्यान नही दिया जाता है। उनकी पढ़ाई व अन्य भागीदारी पर प्रतिबंध लगाया जाता है। परिणामतः उनका विकास रुक जाता है। जिससे उनके व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, लड़कों को पढाई व अन्य गतिविधियों में भागीदारी की पूरी स्वतन्त्रता होती है। उन्हें विकास के पूर्ण अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। इसका उनके व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का उच्च कोटि का होना या न होना उसके लिंग पर घटक कराता है।

B- वातावरणीय घटक

वैलेनटीन के अनुसार, ''व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित स्वभाव का योग है।'' इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व निर्माण के कुछ घटक तो जन्मजात होते हैं तथा कुछ अर्जित किए जाते हैं अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति का वातावरण उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालता है। मुख्य वातावरणीय घटक निम्नलिखित हैं :

1. **सामाजिक वातावरण** : सामाजिक वातावरण का अभिप्राय उन लोगों (माता–पिता, शिक्षक, पड़ौसी, मित्र आदि) के समूह से है जिनके मध्य व्यक्ति रहता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे सामाजिक वातावरण में स्वीकृति प्राप्त हो। अर्थात लोग उसे पसंद न करें व उसकी प्रशंसा करें जिस व्यक्ति का सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है, उसमें आत्म – विश्वास, नेतृत्व गुण व श्रेष्ठता के भाव का विकास होता है। परिणामतः उसके व्यक्तित्व में निखार आता है। इसके विपरीत, जिस व्यक्ति को सामाजिक वातावरण में स्वीकृति प्राप्त नहीं होती उसमें हीनता की भावना पैदा होती है जिसका उसके व्यक्तित्व पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक वातावरण का व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
2. **सांस्कृतिक वातावरण** : व्यक्तित्व के विकास में सांस्कृतिक वातावरण का बहुत बड़ा योगदान होता है। संस्कृति का अर्थ समाज के रीति–रिवाज, रहन–सहन, धार्मिक विश्वास, परंपराओं व आदतों से है। प्रत्येक व्यक्ति समाज में रहता है और प्रत्येक समाज की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है। जिस संस्कृति से संबंधित व्यक्ति होता है उसी के अनुसार उसका

व्यक्तित्व बन जाता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि एक संस्कृति लोगों को नैतिकता का। पहली संस्कृति से संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनैतिकता की।

3. **भौगोलिक वातावरण** : व्यक्तित्व को ऊँचा अथवा नीचा बनाने में भौगोलिक वातावरण भी भागीदार होता है। भौगोलिक वातावरण का अभिप्राय एक स्थान की जलवायु से है। जिस स्थान की जलवायु गर्म होती है। वहां के लोग आलसी व काले होते हैं। इसके विपरीत, जिस स्थान की जलवायु ठंडी होती है वहां के लोग चुस्त व गोर होते हैं। लोगों की ये विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।
4. **पारिवारिक वातावरण** : एक व्यक्ति के पारिवारिक वातावरण में माता–पिता की योग्यताऐं।, परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व, परिवार की आर्थिक स्थिति, परिवार का आकार, आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सभी घटकों का व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, परिवार में बच्चों का सभी आवश्यकताएं पूरी हो जाने के कारण व्यक्तित्व का विकास तेजी से होता है।
5. **स्कूल का वातावरण** : स्कूल में बच्चे काफी समय व्यतीत करते हैं। अतः वहां के वातावरण का उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। स्कूल के वातावरण में मुख्य रुप से पढ़ाई का स्तर, मनोरंजन की सुविधाएं, खेल–कूद की सुविधाएं सांस्कृतिक गतिविधियां, पुस्तकालय की सुविधा आदि को सम्मिलित किया जाता है जो बच्चे ऐसे स्कूल में पढ़ते हैं जहां ये सभी सुविधाएं उपलब्ध हों, उनका व्यक्तित्व विकास तेजी से होता है। इसके विपरीत, जिन स्कूलों में इन सुविधओं का अभाव होता है वहां बच्चों का विकास धीमी गति से होता है।

- **मनोवैज्ञानिक घटक**

अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक घटक हैं जो व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। ये निम्नलिखित हैः–

(i) **बौद्धिक विकास** : व्यक्तित्व का विकास व्यक्ति की बौद्धिक विकास के अंतर्गत सीखने की क्षमता, ज्ञान अर्जित करने की क्षमता, समस्याऐं हल करने की क्षमता, निर्णय लेने की क्षमता, परिस्थितियों से ताल–मेल बैठाने की क्षमता, आदि को सम्मिलित किया जाता है। जिस व्यक्ति का बौद्धिक विकास अधिक होता है उसका व्यक्तित्व भी उच्च श्रेणी का होता है अन्यथा इसके विपरीत।

(ii) **दृष्टिकोण** : एक व्यक्ति का दृष्टिकोण उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण नकारातमक होता है तो वह गलत कार्यों में रुचि लेता है। ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व ऊँचे स्तर का होता है। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण नकारात्मक होता है तो वह गलत कार्यों में रुचि लेगा। ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में गिरावट आना निश्चित है।

(iii) **इच्छा भाक्ति** : इच्छा शक्ति व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाला मुख्य मनोवैज्ञानिक घटक है। जिस व्यक्ति में दृढ़ इच्छा शक्ति होती है वह कुछ भी करने की क्षमता रखता है। ऐसे लोगों का व्यक्तित्व ऊँचे स्तर का होता है। इसके विपरीत, जिन लोगों में इच्छा शक्ति का अभाव होता है। वे हर समय असमंजस की स्थिति में रहते हैं। इन लोगों में आत्म–विश्वास की कमी होती है। व्यक्ति में इच्छा शक्ति का न होना व्यक्तित्व में गिरावट का सूचक होता है।

(iv) **अभिप्रेरणा** : अभिप्रेरण व्यक्तित्व के विकास में सहायक है। जो व्यक्ति अभिप्रेरित होते हैं उनकी नज़र उपलब्धियों की ओर होती है। यह एक अच्छे व्यक्तित्व का संकेत है। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति में अभिप्रेरणा की कमी है तो वह आलसी बन जाएगा। परिणामतः उनके व्यक्तित्व में गिरावट नज़र आने लगेगी।

सारांश

संगठनात्मक तंत्र में व्यक्ति उसका मुख्य आधार होता है। संगठन के लिए प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग जगह होती है। किसी भी व्यक्ति की संरचना में उसकी शरीर रचना, उसका व्यक्तित्व तथा मूल भौतिक एवं सगुण महत्वपूर्ण होते है। इनमें कुछ बातें तो उसे विरासत में मिलती हैं तथा कुछ उसके वातावरण के साथ संपर्क द्वरा विकसित होती है। इस संदर्भ में संप्रेषण प्रक्रिया, दृष्टिकोण तंत्र तथा अभिप्रेरण प्रक्रिया अपनी भूमिका निभाती है। लोग अपने वातावरण की सूझबूझ प्राप्त करने हेतु विचारों, दृष्टिकोणों तथा सूचनाओं का आदान– प्रदान करते हैं। सामाजिक दृष्टि से लोगों के बीच परस्पर संपर्क उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य है। लोग वस्तु स्थिति के बारे में अलग–अलग तरीके से सोचते है। व्यक्तिगत व्यवहार में नजरिये की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अभिप्रेरणा की प्रक्रिया अंशतः स्वनिर्मित तथा अंशतः अनेक सकारात्मक तथा नकारात्मक अभिप्रेरकों के माध्यम से बाह्व परिवेश से प्रभावित होती है। जहां तक लोगों के जिन मूल्यों का प्रश्न

है उनका निर्धारण लोगों के सांस्कृतिक उतार – चढ़ाव से जाना जा सकता है। जीवन मूल्य अपेक्षाकृत चिरस्थायी रहते हैं तथा लोगों के जीवन, कार्य तथा परिवेश के प्रति उनके नजरिये को अपने तरीके से ढ़ालते हैं। व्यक्तिगत व्यवहार का अध्ययन मनोविज्ञान विषय पर विशेष प्रभाव डालता है तथा स्पष्टतः कराता है कि क्यों व्यक्ति परिस्थितियों के प्रत्युत्तर में कैसे व्यवहार करते हैं तथा नेतृत्व को व्यक्तियों के व्यवहार को समझने के लिए विकसित किया जा चुका है। साथ ही सामाजिक–मनोविज्ञान सिद्धान्त ने समझाने का प्रयास किया है कि रुझान, विश्वास, दृष्टिकोण तथा मूल्यों को उत्पन्न किया जाता है तथा वे कैसे व्यक्तिगत व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अतः व्यक्ति अलग–अलग तरीके से व्यवहार करते हैं जो उनके मूल्यों दृष्टिकोण, अभिप्रेरणा सीखने पर निर्भर करता है। जिनके व धनी हैं।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र⎕न

प्र.1 संगठन के व्यवहार को निर्धारित करने की पृष्ठभूमि क्या है?

प्र.2 संगठनात्मक व्यवहार की भूमिका बताइए।

प्र.3 व्यक्तिगत विकास के चरणों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्र⎕न

प्र.4 संगठनात्मक व्यवहार को विस्तार से समझाइए तथा प्रबन्ध से इसका सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

प्र.5 आज के युग में संगठनात्मक व्यवहार का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है? कथन को स्पष्ट कीजिए।

प्र.6 संगठनात्मक व्यवहार किस प्रकार बहुपक्षय अनुशासन है?

प्र.7 संगठनात्मक व्यवहार के विभिन्न मॉडलों को समझाइए।

प्र.8 अभिप्रेरण व्यक्तित्व के विकास में सहायक है। कथन को स्पष्ट कीजिए।

प्र.9 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों को तीन श्रेणियों में विभक्त कीजिए।

प्र.10 संगठनात्मक व्यवहार को समझना क्यों आवश्यक है?

प्र.11 संगठनात्मक व्यवहार विज्ञान है या कला?

प्र.12 संगठन में परिवर्तन क्यों आवश्यक हैं?

खण्ड – 4

इकाई – 2 नेतृत्व एवं परिवर्तन का प्रबंध

विशय सूची

अध्ययन के उद्देश्य

12.0 प्रस्तावना

12.1 नेतृत्व का अर्थ

12.2 नेतृत्व की परिभाषाएँ

12.3 नेतृत्व की विशेषताएँ

12.4 प्रबंध कला एवं नेतृत्व

12.5 नेतृत्व का महत्व

12.6 एक अच्छे नेता के गुण

12.7 नेतृत्व की शैलियाँ

12.8 परिवर्तन का प्रबंध

12.9 नियोजित परिवर्तन

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्दे□य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- नेतृत्व की विशेषताएँ।
- प्रबन्ध–कला एवं नेतृत्व में संबंध।
- नेतृत्व का महत्व।
- एक अच्छे नेता के गुण।
- नेतृत्व की विभिन्न शैलियाँ।
- परिवर्तन का प्रबंध

12.0 प्रस्तावना

एक अनुमान के अनुसार एक कर्मचारी अपनी लगभग 60 प्रतिशत क्षमता का प्रयोग करता है लेकिन उपक्रम को लाभदायक बनाने के लिए व पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त करने के लिए शेष 40 प्रतिशत क्षमता का प्रयोग किया जाना भी आवश्यक है। ऐसा तभी संभव है जब अधिनस्थों को उचित ढंग से प्रेरित करके उनमें कार्य करने के प्रति ऐसी लगन पैदा की जाए कि वे पूरे उत्साह के साथ कार्य करें। ऐसी प्रेरणा अथवा मार्ग–दर्शन वही अधिकारी दे सकता है जो एक कुशल प्रबन्धक होने के साथ–साथ एक अच्छा नेता भी हो।

12.1 नेतृत्व का अर्थ

नेता वह व्यक्ति होता है जो एक समूह के सभी व्यक्तियों पर अपना प्रभाव इस प्रकार रखता है कि वे सभी पूर्ण उत्साह तथा विश्वास के साथ पूरी क्षमता का प्रयोग करते हुए संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने में जुट जाते हैं। एक नेता की इस प्रकार की योग्यता अथवा गुण को ही नेतृत्व कहा जाता है।

टूल बाक्स – 1
नेतृत्व इसका अभिप्राय दूसरों को इस ढंग से प्रभावित करने का है ताकि वे वहीं करें जो नेता चाहे।

12.2 नेतृत्व की परिभाशाएँ

नेतृत्व का अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता रखते हैं।

नेतृत्व के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित विचार प्रस्तृत किए हैं:

(1) **कून्टज तथा ओ'डोनेल के अनुसार,** "किसी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सन्देशवाहन के माध्यम से व्यक्तियों को प्रभावित कर सकने की योग्यता नेतृत्व कहलाती है।

(2) **जार्ज.आर.टेरी.** के अनुसार, ''नेतृत्व व्यक्तियों को पारस्परिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वैच्छिक प्रयत्न करने के लिए प्रभावित करने की योग्यता है।''

निष्कर्ष के रुप में, नेतृत्व वह प्रक्रिया है जिससे समूह के लोगों को इस प्रकार प्रभावित किया जाता है कि वे सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं ही अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करने लग जाते हैं।

12.3 नेतृत्व की विशेषताएँ

नेतृत्व की परिभाषाओं का विश्लेषण करने के पश्चात् इसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ अथवा लक्षण स्पष्ट होते हैं:

(i) **प्रभावीकरण प्रक्रिया** : नेतृत्व एक प्रभावी करण प्रक्रिया के रुप में होता है। यहां प्रभावीकरण का अर्थ दूसरों को अपने प्रभाव में लेने से है। नेतृत्व के अंतर्गत नेता अपने अनुयायियों के साथ इस तरह का व्यवहार करते हैं कि वे स्वयं ही उसके प्रभाव में आ जाते है और जैसा वह चाहता है वे वैसा ही कार्य करने लगते हैं। ऐसा कहा जाता है कि प्रभावीकरण नेतृत्व का सार है।

(ii) **व्यवहार परिवर्तित करने वाली प्रक्रिया** : नेतृत्व में अनुयायियों का व्यवहार बदलने की शक्ति होती है। जिस प्रबन्धक में नेतृत्व योग्यता होती है उसके अधीनस्थों का कार्य निष्पादन अपेक्षाकृत बढ़िया होता है।

(iii) **नेता व अनुयायियों में आपसी संबंधः** नेतृत्व की मुख्य आवश्यकता अनुयायियों का होना है। बिना अनुयायियों के नेतृत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अनुयायियों के बिना नेता का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। नेतृत्व को सार्थक बनाने के लिए नेता के साथ कार्य करने वाले अनुयायीयों (अथवा कर्मचारियों) का होना आवश्यक है। अतः नेतृत्व नेता व अनुयायियों के संबंधो की ओर संकेत करता है।

(iv) **सामूहिक उद्देश्य प्राप्तिः** नेतृत्व की एक मुख्य विशेषता सामूहिक उद्देश्य प्राप्त करना है। इसका अर्थ है कि इससे केवल संगठन के ही उद्देश्य प्राप्त नहीं होते बल्कि व्यक्तिगत उद्देश्यों की भी प्राप्ति होती है।

(v) **सतत् प्रक्रिया** : एक प्रबन्धक को नेतृत्व योग्यता का लगातार प्रयोग करना होता है। अर्थात इसकी आवश्यकता किसी विशेष समय पर ही न होकर हर समय होती है।

12.4 प्रबन्ध कला एवं नेतृत्व

प्रायः प्रबन्ध–कला तथा नेतृत्व को समानार्थक शब्द माना जाता है। लेकिन ऐसी धारणा बिल्कुल गलत है।

एक प्रबन्धक वह व्यक्ति होता है जो प्रबन्धकीय कार्य सम्पन्न करता है। दूसरी ओर, नेता वह व्यक्ति होता है जो अपने अनुयायियों की आकांक्षाओं को पूरा करता है। अपने अनुयायियों की आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं को पूरा करने के कारण ही एक नेता उन पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होता है। (अर्थात जैसा नेता चाहता है अनुयायी वैसा ही करते हैं।)

सफलता प्राप्ति के लिए अधिनस्थों को अपने प्रभाव में लेना प्रबन्धक के लिए भी आवश्यक हैं। एक प्रबन्धक ऐसा तभी कर सकता है कि जब वह प्रबन्धक होने के साथ–साथ नेता की भूमिका भी अदा करे। ऐसा तभी संभव है जब वह अपने अधिनस्थों को अनुयायी बना ले। (अधिनस्थों) अनुयायी तभी बनेंगे जबकि उनकी आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं को महत्व दिया जाएगा। अतः यदि एक प्रबन्धक में नेतृत्व योग्यता भी है तो अधीनस्थ उसके प्रभाव में आ जाएंगे और जैसा वह चाहेगा वैसा ही काम करेंगे। इस बात को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

''**प्रबन्धक + नेता योग्यता (नेता) = सफलता**''

अतः कहा जा सकता है कि एक प्रबन्धक का नेता होना आवश्यक है।

दूसरी ओर, यह आवश्यक है कि नेता भी प्रबन्धक की भूमिका अदा करे। कोई व्यक्ति नेता स्वयं नही बनता बल्कि इसलिए बनता है कि कुछ लोग उसका अनुसरण करना चाहते हैं। नेता अपनी इस भूमिका में लोगों को संतुष्ट कर देता है। अतः उसके लिए जरुरी नहीं है कि प्रबन्धकीय कार्य करें। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि ''सभी प्रबन्धक नेता होते हैं लेकिन सभी नेता प्रबन्धक नहीं होते।''

प्रबन्ध कला एवं नेतृत्व के अंतर को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है:

- **प्रबन्ध कला एवं नेतृत्व में अंतर**

अंतर का आधार	प्रबन्ध कला	नेतृत्व
1—अस्तित्व का आधार	संगठित समूह अथवा औपचारिक संगठन	असंगठित समूह अनौपचारिक संगठन
2—मुख्य ध्येय	संगठनात्मक उदेश्यों की प्राप्ति	अनुयायियों की आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं को पूरा करना।
3— अधिकार	औपचारिक अधिकार	अनौपचारिक अधिकार अर्थात अनुयायी स्वतः ही नेता को आदेश देने एवं नेतृत्व करने के अधिकार प्रदान करते हैं।
4—कार्यक्षेत्र	विस्तृत (इसमें सभी प्रबन्धकीय कार्य सम्मिलित हैं)	संकुचित (यह प्रबन्ध का अंग मात्र है)

12.5 नेतृत्व का महत्व

किसी संगठन की सफलता में नेतृत्व की मुख्य भूमिका रहती है। प्रभावपूर्ण नेतृत्व के अथवा कोई भी संगठन कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। क्योंकि संगठन का निर्माण विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक मानव समूह के रुप में किया जाता है, अतः उनका नियंत्रण किया जाना आवश्यक है।

कून्टज तथा ओ'डोनेल ने नेतृत्व के महत्व को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया है:

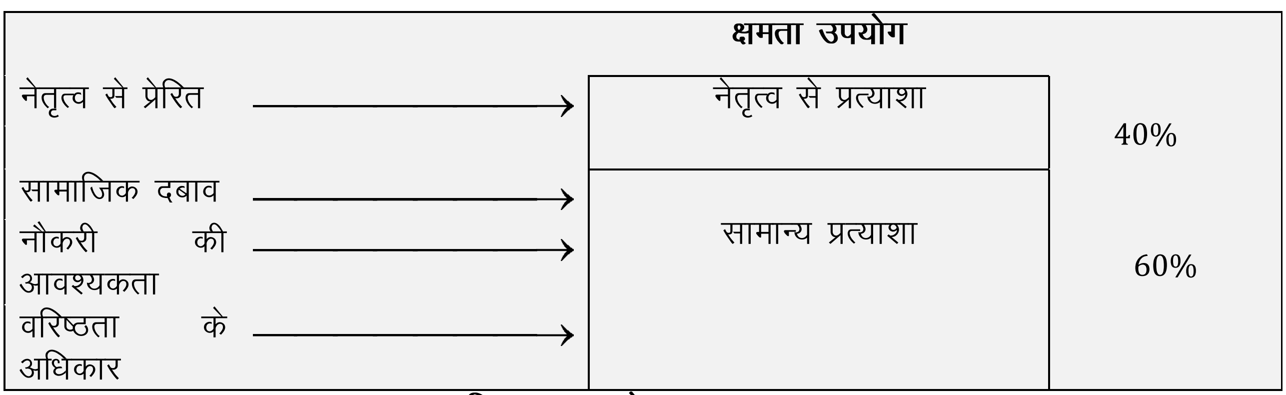

चित्र 12.1 : नेतृत्व का महत्व

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि कर्मचारी लगभग अपनी 60 प्रतिशत क्षमता का प्रयोग तो बिना किसी अतिरिक्त प्रयत्न के ही करते हैं। ऐसा चित्र के नीचे के हिस्से में दिखाया गया है। चित्र के उपर वाले हिस्से से स्पष्ट होता है कि यदि प्रबन्धक को अभिप्रेरित करे तो उनकी 40 प्रतिशत छुपी हुई क्षमता को भी काम में लाया जा सकता है। इस कथन के अनुसार नेतृत्व ही किसी व्यवसायिक संस्था की सफलता की कुंजी है।

नेतृत्व के महत्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता हैः

(i) **लोगों के व्यवहार को प्रभावित करने में सहायक** : एक प्रबन्धक अपनी नेतृत्व योग्यता से अधीनस्थों को प्रभावित करता है। वह उनको इस तरह प्रभाव में लेता है कि वे अपनी पूरी ताकत का प्रयोग संगठन के उद्देश्य प्राप्त करने में लगाते हैं। अच्छे नेता हमेशा अनुयायियों द्वारा बढ़िया परिणाम प्राप्त करते हैं।

(ii) **अनुयायियों की आवयकताओं को पूरा करने में सहायकः** एक नेता अपने अनुयायियों से व्यक्तिगत संबंध स्थापित करता है और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करता है। एक मानव समूह किसी विशेष व्यक्ति का अनुसरण क्यों करता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है –क्योंकि वह विशेष व्यक्ति उन्हे सुरक्षा प्रदान करता है, उन्हे धन कमाने के अवसर प्रदान करते हैं, उन्हे कार्य करने के अधिकार देता है तथा उनकी भावनाओं को समझने की कोशिश करता है। इसलिए लोग उसका अनुसरण करते हैं। जो व्यक्ति कर्मचारियों की उपरोक्त बातों पर ध्यान रखता है, उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। इसके परिणामस्वरुप वे पूरी निष्ठा व उत्साह से कार्य करते है।

(iii) **वांछित परिवर्तनों को लागू करने में सहायकः** आज व्यवसायिक वातावरण तेजी से बदल रहा है। बदलते वातावरण का सामना करने के लिए संगठन में अनेकों परिवर्तन करने पड़ते हैं। क्योंकि लोग पहले से ही नेता के प्रभाव में होते हैं। इसलिए वह परिवर्तन लागू करने के लिए उन्हें आसानी से प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार नेतृत्व योग्यता के बल पर परिवर्तन के संभावित विरोध को समाप्त कर दिया जाता है।

(iv) **झगड़ों को प्रभावी ढंग से हल करने में सहायक** : एक नेता अपने प्रभाव के कारण हर तरह के झगडों (कर्मचारी–कर्मचारी अथवा मालिक–मालिक) को प्रभावी ढंग से हल कर सकता है। नेता हमेशा अपने अनुयायियों को विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यही कारण है कि वह झगडों की वास्तविकता को सहजता से जान लेता है। इस प्रकार वह

झगड़ों का समय पर ही समाधान करके संभावित विपरीत परिणामों को न्यूनतम करने में सहायता करता है।

(v) **अधिनस्थों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायक** : एक नेता अपने अधिनस्थों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायक होता है। वह उन्हें काम करने की आधुनिक पद्धतियों की जानकारी प्रदान करता है। इतना ही नहीं उन्हें इस योग्य बनाता है कि भविष्य में वे भी अच्छे नेता बन सकें।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 नेतृत्व का क्या अर्थ है?
प्र.2 क्या नेतृत्व से अधिनस्थों के व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है?
प्र.3 क्या एक प्रबंधक को नेता होना आवश्यक है?
प्र.4 प्रबंध कला एवं नेतृत्व में क्या अंतर है?
प्र.5 नेतृत्व से अधिनस्थों को प्रशिक्षण कैसे मिलता है?
प्र.6 क्या अच्छे नेतृत्व से संगठन के लक्ष्य प्राप्त हो सकते हैं?

12.6 एक अच्छे नेता के गुण

सफल नेतृत्व के लिए किसी व्यक्ति में निम्न गुण होने चाहिए:

(i) **भारीरिक विशेषताएँ** : नेतृत्व योग्यता की प्रथम आवश्यकता नेता का शारीरिक, मानसिक रुप से स्वस्थ होना है। जैसा कि स्पष्ट है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ बुद्धि निवास करती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि नेता को शारीरिक रुप से स्वस्थ होना चाहिए, ताकि अनुयायियों पर अच्छा प्रभाव पड़े। मानसिक स्वस्थता से यह अभिप्राय है कि वह स्पष्ट विचारों वाला व्यक्ति हो अर्थात दूसरों की बात को शीघ्रता से समझें और अपनी बात सरलता से दूसरों को समझाए।

(ii) **ज्ञान** : एक नेता को अनेक नई–नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं से सफलतापूर्वक निपटने के लिए बुद्धि एवं पांण्डित्य की जरुरत होती है। बुद्धि एवं पांण्डित्य के बल पर नेता शीघ्र एवं निष्पक्ष निर्णय लेकर हर तरह की समस्या का सामना कर सकता है।

(iii) **सत्यनिश्ठा** : नेता का सत्यनिष्ठ होना अति आवश्यक है। सत्यनिष्ठा का अर्थ नेता की कार्य प्रणाली की सदभावना, सच्चाई, निष्ठा तथा नैतिकता पर आधारित होने से है। नेता, स्वामी व कर्मचारियों के मध्य की कड़ी है। अतः उसे दोनों के प्रति पूरी निष्ठा के साथ कार्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी सम्भावित हानि से स्वामी को पहले से ही अवगत करा देना चाहिए तथा कर्मचारियों के साथ झूठे वायदे नहीं करने चाहिए।

(iv) **पहल–क्षमताः** एक नेता में पहल–क्षमता का गुण होना चाहिए। एक नेता जिसमें यह गुण होता है वह अवसरों की इंतजार नहीं करता बल्कि उन्हे पैदा करता है।

(v) **संदे□वाहन कौ□लः** एक नेता का मुख्य कार्य कर्मचारियों व अन्य व्यक्तियों को विभिन्न सूचनाओं, आदेशों, विचारों आदि का संदेशवाहन करना होता है। यह कार्य सन्देश ग्रहण करने वाले व्यक्ति की योग्यता को ध्यान में रखते हुए सरल भाषा में किया जाना चाहिए, ताकि जिस भाव से बात कही जाये उसे उसी भाव से ग्रहण किया जा सके। जिस व्यक्ति में जितनी अधिक संदेशवाहन योग्यता होगी उसकी बातों का प्रभाव अनुयायियों पर उतना ही अधिक एवं शीघ्र होगा।

(vi) **अभिप्रेरण कौ□ल** : नेतृत्व का अर्थ है अनुयायियो को अपना अनुसरण करने के लिए प्रेरित करना। इससे स्पष्ट होता है कि नेतृत्व के अर्थ को सार्थक बनाने के लिए एक नेता में अभिप्रेरणा योग्यता का पाया जाना जरुरी है। नेता को अभिप्रेरण कर विभिन्न विधियों की जानकारी होनी चाहिए ताकि कर्मचारियों को उनके स्वभाव के अनुसार प्रेरित किया जा सके।

(vii) **आत्म वि□वास** : अपने अनुयायियों का पूर्ण विश्वास जीतने के लिए आत्म–विश्वास का होना आवश्यक है। इसके अभाव में निर्णयों को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, एक नेता किसी कार्य के बारे में निर्णय लेता है तथा इस निर्णय से वह स्वयं ही संतुष्ट नहीं है, अर्थात उसमें आत्म–विश्वास की कमी है तो निर्णय को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता। आत्म–विश्वास व्यक्ति में साहस की भावना का संचार भी करता है। अतः एक प्रबन्धक सफल नेतृत्व तभी कर सकता है यदि उसमें आत्म–विश्वास का गुण है।

(viii) **निर्णयकता** : नेता में निर्णय लेने व उसे लागू करने की क्षमता होनी चाहिए। नेता ने एक बार जो निर्णय ले लिया है उसमें उस निर्णय पर डटे रहने की निर्भीकता होनी चाहिए। एक साहसी नेता कभी भी सत्यता के पथ से विचलित नहीं होता और न ही अपने विरोधी लोगों

से की गई दुर्भावनाओं का शिकार होता है। निडर नेता के साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों पर भी इस गुण का प्रभाव पड़ता है और वे अपने कार्यों का निष्पादन शीघ्रता से करते हैं।

(ix) **सामाजिक कौशल** : एक नेता सामाजिक प्राणी होता है। उससे उम्मीद की जाती है कि वह मानवता का व्यवहार करे। इसका अर्थ है कि उसे कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे उसके अनुयायियों की भावनाओं को ठेस पहुंचे। इसके अतिरिक्त उसे केवल दूसरों को भाषण देने वाला ही नहीं होना चाहिए बल्कि दूसरों से अपेक्षित व्यवहार उसे स्वयं करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 एक अच्छे नेता का निर्णायक्ता से क्या संबंध है?
प्र.8 क्या एक सफल नेता होने के लिए समाजिक कौशल की आवश्यकता है?
प्र.9 सत्यनिष्ठा एक सफल नेता की विशेषता है। संक्षिप्त में समझाइए।

12.7 नेतृत्व की भैलियाँ

नेतृत्व के अंतर्गत अधिनस्थों का अभिप्रेरण इस ढंग से किया जाता है कि वे नेता के व्यवहार से प्रभावित होकर उसका अनुसरण करने लगते हैं और इस प्रकार अधिनस्थों के सहयोग से संस्था के उद्देश्यों को आसानी से पूरा कर लिया जाता है। एक प्रबंधक जिन पद्धतियों पर अपना प्रभाव स्थापित करता है, उन पद्धतियों अथवा विधियों को नेतृत्व कहा जाता है। विभिन्न प्रबंधकों की नेतृत्व शैलियाँ अलग–अलग हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रबंधक की कार्यशैली प्यार के साथ काम लेने की हो सकती है, तो दूसरे प्रबंधक की कार्यशाली डरा–धमका कर कार्य लेने की हो सकती है। वहीं कोई अन्य प्रबंधक मिश्रित रुख अपनाते हुए दूसरों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है।। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जिस प्रबंधक की कार्यशैली प्यार से कार्य करवाने की है वह सभी परिस्थितियों में इसी पर अडिग रहेगा, ऐसा नहीं है क्योंकि उसे तो एक समूह का नेतृत्व करना होता है और उस समूह में हर तरह के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। कभी–कभी कुछ व्यक्तियों से डरा धमका कर भी कार्य करवाना पड़ सकता है। लेकिन जिस पद्धति का वह अधिकतर उपयोग करता है, वह उसकी नेतृत्व–शैली कहलाएगी।

विभिन्न प्रबंधकों द्वारा अपनाई जाने वाली नेतृत्व शैलियों को निम्न रेखाचित्र में स्पष्ट किया गया है:

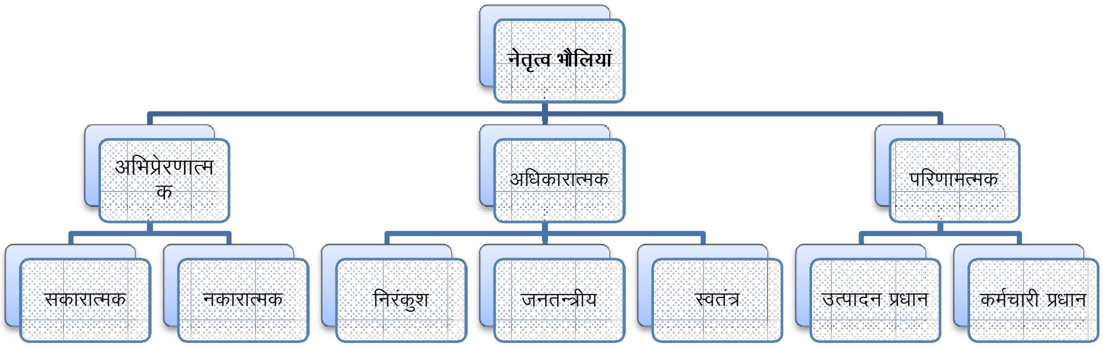

चित्र 12.2 नेतृत्व शैलियाँ

12.7.1 अभिप्रेरणात्मक नेतृत्व शैली

एक नेता द्वारा अपने अनुयायियों के व्यवहार को प्रभावित करने के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है, अभिप्रेरणात्मक शैली उनमें प्रमुख है। इस पद्धति के अंतर्गत कर्मचारियों की अधिकतम क्षमता का उपयोग करने हेतु उनको अनेक प्रकार से अभिप्रेरित किया जाता है। अभिप्रेरणात्मक नेतृत्व शैली मुख्यत: दो प्रकार की होती है:

(क) **सकारात्मक नेतृत्व शैली**

जब नेता अपने अनुयायियों को मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों तरह से संतृष्टि प्रदान करके, संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में उनका सहयोग प्राप्त करता है तो इसे सकारात्मक नेतृत्व शैली कहा जाता है। मौद्रिक प्रेरणा से अभिप्राय वेतन वृद्धि, लक्ष्यों में हिस्सा आदि देने से है, जबकि अमौद्रिक प्रेरणा के अंतर्गत उनकी भावनाओं का आदर करना, निर्णयों में भागीदारी आदि सम्मिलित किया जाता है। इस पद्धति से कर्मचारी पूर्णतः संतुष्ट हो जाते हैं और वे पूरी निष्ठा तथा लगन के साथ कार्य करने लगते हैं। क्योंकि इससे नेता तथा अनुयायियों में मधुर संबंध स्थापित हो जाते है। इसलिए औद्योगिक शांति में सहायता मिलती है।

यह पद्धति जहां एक ओर कर्मचारियों में संतुष्टि की भावना पैदा करती है, वहीं कुछ आलसी कर्मचारी इससे लापरवाह बन जाते हैं। वे लाभ प्राप्त करने के बाद भी काम नहीं करना

चाहते। अतः इस विधि का उपयोग नेता द्वारा यह देखते हुए सावधानी से करना चाहिए कि दिये गये लाभों के बदले पूरा काम भी हो रहा है या नहीं।

इस पद्धति के प्रयोग से कर्मचारियों को कुछ समय के लिए तो अभिप्रेरित किया जा सकता है लेकिन इसका लगातार प्रयोग करने से कर्मचारियों का मनोबल गिरने लगता है तथा संस्था के प्रति उनका लगाव धीरे–धीरे कम हो जाता है और अन्ततः औद्योगिक शांति में बाधा आती है।

(रव) **नकारात्मक नेतृत्व भैली**

इस पद्धति के अंतर्गत कर्मचारियों के मौद्रिक तथा अमौद्रिक ढंग से प्रेरित न करके एक विपरीत व्यवहार द्वारा कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है। विपरीत व्यवहार होने के कारण से इसे नकारात्मक शैली कहा जाता है। विपरीत व्यवहार के अंतर्गत अनुयायियों को दंड व भय दिखाकर डराना, कार्य से हटाना, वेतन मे कटौती करना, निश्चित समय से अधिक समय तक काम लेना, वार्षिक वेतन वृद्धि रोकना आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस पद्धति में प्रबंधक कर्मचारियों से सख्ती के साथ काम लेता है। लापरवाह कर्मचारियों पर विशेष निगाहें रखी जाती है। कार्य में त्रुटि मिलने पर सज़ा दी जाती है।

इस पद्धति के प्रयोग से कर्मचारियों को कुछ समय के लिए तो अभिप्रेरित किया जा सकता है लेकिन इसका लगातार प्रयोग करने से कर्मचारियों का मनोबल गिरने लगता है तथा संस्था के प्रति उनका लगाव धीरे–धीरे कम हो जाता है और अंततः औद्योगिक शांति में बाधा आती है।

उपयुक्त भैली

ऊपर वर्णित सकारात्मक तथा नकारात्मक पद्धतियों में से किस पद्धति का चयन उपयोगी रहेगा, ऐसा निर्धारित करना बहुत कठिन है। दोनों के ही अपने–अपने गुण व दोष है। जहां एक ओर प्रथम पद्धति से मनोबल में वृद्धि होती है, वहीं कुछ कर्मचारी लापरवाह भी हो सकते हैं। इसी प्रकार द्वितीय पद्धति में जहां लापरवाह कर्मचारियों से काम लिया जा सकता है, वहीं इससे लगन में कमी आती है। परिस्थितियों को मद्दे नज़र रखते हुए किसी भी पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः नेताओं द्वारा दोनों पद्धतियों का मिश्रित स्वरुप ही अपनाया जाता है।

12.7.2 **अधिकारात्मक नेतृत्व शैली**

जैसाकि इस शैली के नाम से ही स्पष्ट है कि नेता द्वारा इस पद्धति में अपनी सत्ता अथवा अधिकार का प्रयोग किया जाता है। सत्ता के प्रयोग का अर्थ यह नहीं है कि नेता अपने अनुयायियों पर हमेशा कोई अनावश्यक दबाव रखता है बल्कि इस श्रेणी में जितनी भी नेतृत्व शैलियाँ आती हैं उनका संबंध नेता के अधिकारों से होता है। कहीं पर नेता अपने अधिकारों का प्रयोग करता है, कहीं पर कुछ अधिकारों का पूरा प्रयोग करता है और कहीं पर अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं करता। नेतृत्व की यह शैली निम्नलिखित रुपों में विख्यात हैः

(क) **निरंकुश नेतृत्व शैली**

इस पद्धति को नेता–केन्द्रित शैली भी कहते हैं। इसके अंतर्गत प्रबंधक सारे अधिकार अपने हाथों में केन्द्रित रखता है तथा कर्मचारियों को बिना किसी परिवर्तन के उसके आदेशों का पालन करते हुए कार्य निष्पादन करना पड़ता है। यदि कोई कर्मचारी कार्य निष्पादन में लापरवाही करता है तो उसे सज़ा दी जाती है। नेता अपना महत्व कम होने के डर के कारण अधिकारों का विकेन्द्रियकरण नहीं करता, परिणामस्वरुप प्रबंध की सफलता का उत्तरदायित्व नेता का ही रहता है। नेता अपने अनुयायियों को लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए दण्ड और भय का वातावरण बनाकर अभिप्रेरित करता है। कर्मचारियों की नौकरी व तरक्की सभी कुछ निरंकुश नेता की इच्छा पर निर्भर करता है। कर्मचारी वर्ग को किसी भी निर्णय के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करने का लेशमात्र भी अधिकार नहीं होता।

निरंकुश नेतृत्व पद्धति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः

(i) **औपचारिक संबंधः** यह पद्धति नेता तथा अनुयायियों के मध्य औपचारिक संबंधों का निर्माण करते है। औपचारिक संबंधों से अभिप्राय संगठनात्मक ढांचे के अनुसार व्यक्तियों के संबंधों से है। संगठनात्मक ढांचे में बंधे रहकर ही एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बातचीत कर सकता है।

(ii) **केन्द्रित सत्ताः** इस पद्धति में प्रबंधक को जो अधिकार एवं दायित्व प्राप्त होते हैं वह उन्हें किसी के साथ बांटने के लिए तैयार नहीं होता। परिणामस्वरुप सभी के अधिकार एक ही व्यक्ति के पास बंध कर रह जाते हैं।

(iii) **एक व्यक्ति के निर्णयः** नेतृत्व की इस शैली में प्रबंधक सारे निर्णय स्वयं अपनी इच्छा से ही लेता है। वह यह मानकर चलता है कि उसे किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता ही नहीं है।

अतः प्रबंधक आवश्यकता से अधिक विश्वास में रहकर कर्मचारियों का अभिप्रेरण करने का प्रयास करता है।

(iv) **नकारात्मक अभिप्रेरणा**' नेता अपना महत्व इस बात में समझता है कि जो कुछ वह चाहे, वही काम, उसी तरीके से होना चाहिए। वह अपनी संतुष्टि के लिए डर व धमकी का माहौल बनाकर रखता है। ऐसे माहौल से कर्मचारियों का नकारात्मक अभिप्रेरण होता है, परिणामतः उनके मनोबल में गिरावट आती है।

(v) **कर्मचारियों के बारे में गलत धारणा**: प्रबंधक इस धारणा का शिकार हो जाता है कि कर्मचारी प्यार से काम नहीं करते और उनके लिए कठोर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इसी धारणा के वशीभूत होकर वह केन्द्रिय नेतृत्व पद्धति का सहारा लेता है।

(vi) **कर्मचारियों का व्यवहार**: इस शैली में कर्मचारियों का व्यवहार अपने नेता के प्रति आज्ञाकारिता का होता है। वे वही करते हैं जो करने के लिए उन्हें कहा जाता है तथा अपनी ओर से कुछ भी ज्यादा करने की नहीं सोचते।

(vii) **संदेशवाहन केवल नीचे की ओरः** इस पद्धति में कर्मचारियों के विचार व सुझाव महत्वहीन होते है। इसलिए केवल नीचे की ओर संदेशवाहन होता है। नीचे की ओर संदेशवाहन का अर्थ है कि प्रबंधक अधिनस्थों को अपनी बात तो कहते हैं लेकिन उनकी नहीं सुनते।

(viii) **सख्त तथा नज़दीकी पर्यवेक्षक व नियंत्रणः** संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता है। वास्तविक प्रगति, निर्धारित प्रगति से कम होने पर संबंधित कर्मचारियों को कठोर सज़ा दी जाती है, यहां तक कि उनको नौकरी से भी हटा दिया जा सकता है।

- **लाभ**

निरंकुश नेतृत्व शैली के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) **शीघ्र व स्पश्ट निर्णय** : सत्ता का केन्द्रियकरण होने के कारण सारे निर्णय एक ही व्यक्ति द्वारा लिए जाते हैं। एक व्यक्ति द्वारा लिए गए निर्णयों में अनावश्यक देरी नहीं होती और वे अपेक्षाकृत स्पष्ट भी होते हैं।

(ii) **सन्तुश्टिपूर्ण कार्य** : क्योंकि इस नेतृत्व में कर्मचारियों द्वारा कार्य निष्पादन कड़े नियंत्रण में किया जाता है इसलिए कार्य की मात्रा तथा किस्म दोनों तरह से कार्य सन्तुष्टिपूर्ण होता है।

(iii) **कम शिक्षित कर्मचारियों के लिए आवश्यक**: यह पद्धति अशिक्षित तथा कम समझ वाले लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। क्योंकि शिक्षा की कमी के कारण उनमें निर्णय लेने की क्षमता शून्य होती है। इस श्रेणी के कर्मचारी केवल कार्य कर सकते हैं, निर्णय नहीं ले सकते हैं।

(iv) **प्रबंधकों के लिए अभिप्रेरणा का स्रोत**: इस पद्धति से प्रबंधकों को अपने काम से ज्यादा सन्तुष्टि मिलती है क्योंकि वे कर्मचारी अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकते हैं। दूसरी ओर, कर्मचारी भी कार्य को अपना कर्तव्य समझ कर करते हैं। इस प्रकार सन्तुष्टि से प्रबंधक अपने को एक सफल प्रबंधक मानने लगते हैं। और इसी बात से अभिप्रेरित होकर भविष्य में वे और अच्छा कार्य करने का प्रयास करते हैं।

- **दोश**

इस पद्धति के निम्नलिखित दोष हैं :

(i) **अभिप्रेरणा की कमी**: इस पद्धति में प्रबंधकों का अभिप्रेरण तो होता ही है लेकिन कर्मचारी वर्ग के मनोबल में गिरावट आती है। ऐसा स्वाभाविक भी है। क्योंकि हर समय डर व भय के वातावरण में काम करने से मनोबल गिरेगा और नेतृत्व के मुख्य उद्देश्य 'अभिप्रेरण' को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(ii) **कम उत्पादकता** : जब कर्मचारियों के मनोबल में गिरावट आयेगी तो उसका सीधा प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है। कर्मचारियों को जो कार्य सौंपा जाता है वे उतना ही करते हैं। अधिक क्षमता के होते हुए भी वे उसका उपयोग नहीं करना चाहते।

(iii) **कर्मचारियों के द्वारा विरोध** : निर्णय में भागीदारी न देकर कर्मचारियों को एक मशीन की भांति बना दिया जाता है। जिस तरह मशीन से जो कार्य चाहे वही करवा सकते हैं, मशीन अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता, इसी प्रकार प्रबंधक, कर्मचारियों से जो चाहे करवा सकते हैं, वे भी अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते। कर्मचारी इस तरह की नेतृत्व प्रणाली को नीरस मानते है और इसका विरोध करते हैं।

(iv) **पक्षपात की सम्भावना** : सारे अधिकार एक ही व्यक्ति के पास केन्द्रित होने के कारण वह अपनी इच्छा से अपने कुछ चाहने वाले तथा चापलूस लोगों को कम मेहनत का कार्य सौंपकर उन्हें खुश करने की कोशिश करता है। इस तरह के पक्षपात से कर्मचारियों में रोष उत्पन्न होता है। अपने रोष को कर्मचारी कई बार हड़ताल आदि से व्यक्त करते हैं जिससे औद्योगिक शांति को खतरा पैदा हो सकता है।

उपरोक्त लाभ तथा दोषों के आधार पर कहा जा सकता हे कि यह प्रणाली व्यवहारिक नहीं है। नेतृत्व का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों को अभिप्रेरित करते हुए अनुसरण करवाना होता है। यह उद्देश्य यहां पर पूरा नहीं होता। अतः नेतृत्व शैली अधिक उपयोगी नहीं कही जा सकती।

(ख) जनतन्त्रीय नेतृत्व शैली

इस पद्धति को समूह–केन्द्रित नेतृत्व शैली भी कहा जाता है। आधुनिक समय में नेतृत्व की यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। इसके अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं से संबंधित निर्णय अकेले प्रबंधक के स्थान पर कर्मचारियों के विचार–विमर्श द्वारा लिए जाते हैं। प्रबंधक अपने अधिनस्थों में पूरी आस्था रखता है और उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझावों में ही थोड़ा–बहुत परिवर्तन करके स्वीकार कर लेता है। नेतृत्व की यह पद्धति अधिकारों के विकेन्द्रियकरण पर आधारित होती है जिसके परिणामस्वरुप कर्मचारियों को अपनी पहल–क्षमता, सृजनशीलता, योग्यता तथा संस्था के प्रति अपना लगाव दिखाने का पूरा मौका मिलता है। इसके अंतर्गत प्रबंधक अपने अधिनस्थों के सुझावों का आदर करने के साथ–साथ उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने का भी प्रयत्न करता है। इस प्रकार कर्मचारी यह अनुभव करने लगते हैं कि वे भी संस्था के एक अंग हैं तथा उनका कुछ महत्व है। इस प्रणाली का उपयोग किये जाने से अच्छे औद्योगिक संबंधों का निर्माण होता है।

- **विशेषताएँ**

जनतन्त्रीय नेतृत्व पद्धति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **सहयोगपूर्ण संबंधः** इस पद्धति की मुख्य विशेषताएँ प्रबंधकों तथा कर्मचारियों के मध्य सहयोगपूर्ण संबंधों का पता पाया जाना है। निर्णयों में कर्मचारियों की भागीदारी से उनमें स्वाभिमान उत्पन्न होता है, परिणामस्वरुप कर्मचारी हर तरह से सहयोग के लिए तत्पर रहते हैं।

(ii) **धनात्मक अभिप्रेरणः** इस पद्धति में कर्मचारियों को आर्थिक तथा अनार्थिक दोनों साधनों द्वारा अभिप्रेरित किया जाता है। आर्थिक अभिप्रेरण वेतन वृद्धि द्वारा किया जाता है जबकि अनार्थिक अभिप्रेरण अधिक स्वतन्त्रता व अधिकार, अधिक मान व सम्मान आदि से किया जाता है।

(iii) **कर्मचारियों मे आस्था** : प्रबंधक यह मानकर चलते हैं कि कर्मचारी स्वभाव से काम करना चाहते हैं, वे अपना काम रुचि से करते हैं, अपनी जिम्मेवारी स्वीकार करते हैं तथा सौंपे गए

काम को अच्छे से अच्छे ढंग से करने का प्रयत्न करते है। प्रबंधकों का इस तरह का विश्वास का कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करता है।

(iv) **खुला सन्देशवाहन** : इस प्रणाली में प्रबंधकों तथा कर्मचारियों के मध्य खुला सन्देशवाहन होता है। खुले सन्देशवाहन से अभिप्राय दोहर सन्देशवाहन से है अर्थात प्रबंधक अपनी बात भी कहते हैं और कर्मचारियों के सुझावों को भी सहर्ष स्वीकार करते हैं।

(v) **सामूहिक निर्णयन** : प्रबंधकों द्वारा सभी निर्णय अधिनस्थों के सहयोग से लिए जाते हैं।

(vi) **कर्मचारियों में सहयोग का वातावरण** : प्रबंधकों के मित्रतापूर्ण या मित्रपूर्ण व्यवहार के कारण सभी कर्मचारी उत्साह के साथ काम करते हैं। जब सभी में उत्साह होगा तो वे आपस में भी एक–दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार करने लगते हैं।

(vii) **कठोर नियंत्रण की आवश्यकता नहीं** : इस नेतृत्व पद्धति में प्रबंधक अपने अधिनस्थों को स्वयं उत्तरदायित्व स्वीकार करना सिखलाते हैं। उनमें उत्तरदायित्व की भावना पैदा होने से वे स्वयं ही लक्ष्य का निर्धारण करके संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार जब कर्मचारी अपनी इच्छा से काम करने के लिए तैयार हों तो उन पर अधिक नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती।

- **लाभ**

जनतन्त्रीय नेतृत्व शैली के निम्नलिखित लाभ हैं :

(i) **उच्च मनोबल** : इस पद्धति के अंतर्गत प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों का उत्साह ऊँचाइयों को छूने लगता है। दोनों एक–दूसरे को अपना हितैषी समझने लगते हैं। परिणामस्वरुप शिकायतों एवं मन–मुटाव का दौर समाप्त हो जाता है। सबको अपने–अपने कार्य से अधिकतम सन्तुष्टि मिलने लगती है तथा कर्मचारियों की संस्था छोड़ने की दर में कमी आती है।

(ii) **अधिक कुशलता तथा उत्पादकता का निर्माण** : निर्णयों में भागीदार होने के कारण कर्मचारी उनको लागू करने में पूरा सहयोग देते है। इस प्रकार उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। कर्मचारी उत्पादन के नये–नये तरीके खोजने में पहल करते हैं जिससे उसी काम को कम समय में तथा अच्छे ढंग से किया जा सके, परिणामस्वरुप उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(iii) **भांतिपूर्ण औद्योगिक संबंध**: यह पद्धति औद्योगिक संबंधों को शांतिपूर्ण बनाने में बहुत उपयोगी है। कर्मचारी अपनी ओर से पूरी जिम्मवारी के साथ अधिक–से–अधिक काम करना चाहते हैं।

ऐसे वातावरण में जबकि एक पक्ष काम करवाना चाहता है तथा दूसरा पक्ष स्वयं ही उसे करने के लिए तैयार है, संघर्ष के अवसर समाप्त हो जाते हैं। यदि कभी कोई ऐसा मौका आ भी जाए तो आपसी विचार–विमर्श द्वारा उस समस्या का हल निकाल लिया जाता है।

(iv) **परिवर्तनों की भीघ्र स्वीकृतिः** जनतान्त्रिक नेतृत्व के अभाव में कर्मचारी समय–समय पर होने वाले तकनीकी परिवर्तनों को लागू किये जाने का विरोध करते हैं, क्योंकि जिन तरीकों से वे पहले कार्य कर रहे होते हैं उनके वे विशेषज्ञ हो जाते हैं और नई पद्धतियों को बोझ समझने लगते हैं। दूसरी ओर, इस नेतृत्व शैली के अंतर्गत सहयोग भावना होने के कारण परिवर्तनों को सहर्ष स्वीकार कर लिया जाता है।

(v) **रचनात्मक कार्यों के लिए पर्याप्त समय उपलब्धः** इस नेतृत्व शैली में प्रबन्धकों का कार्यभार कम हो जाता है। इस प्रकार बचे हुए समय को वे अन्य रचनात्मक कार्यों मे लगाकर संस्था के विकास तथा विस्तार को संभव बनाते हैं।

- **दोश**

जनतान्त्रिक नेतृत्व के निम्नलिखित दोष हैंः

(i) **िक्षित अधिनस्थों की आवयकता** : इस नेतृत्व पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत अधिनस्थों को निर्णयों में भागीदार बनाया जाता है। तथा कुछ छोटे–छोटे कार्यों को तो पूरी तरह उनके भरोसे छोड़ दिया जाता है। ऐसे सहयोग की आशा केवल शिक्षित कर्मचारियों से ही की जा सकती है। अतः यह पद्धति केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही उपयोगी है।

(ii) **निर्णयों में देरी** : जैसाकि स्पष्ट है कि इस पद्धति में निर्णय लेते समय अधिनस्थों से विचार –विमर्श अवश्य किया जाता है। ऐसा करने से यह लम्बी प्रक्रिया बन जाती है, क्योंकि जरुरी नही है कि सभी कर्मचारी एकमत होकर निर्णय दे दें, उनमें मतभेद भी हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में शीघ्र किए जाने वाले कार्यों मे अनावश्यक देरी होने लगती है।

(iii) **प्रबन्धकों में उत्तरदायित्व की कमीः** कभी–कभी प्रबन्धक अधिनस्थों को कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों में भागीदार बनाकर, अपने उत्तरदायित्व से यह कहकर बचने की कोशिश करते हैं कि ये निर्णय तो अधिनस्थों ने लिये थे और इनके लिए वे ही जिम्मेवार हैं। प्रबन्धकों का यह व्यवहार कर्मचारियों की भावनाओं को ठेस पहुंचाता है।

(iv) **भिन्न–भिन्न प्रकार के कर्मचारीः** एक प्रबन्धक के साथ कार्य करने वाले सभी अधीनस्थ एक स्तर के नहीं होते। कुछ अधीनस्थ चाहते हैं कि उन्हें सारे आदेश स्पष्ट रुप से दिये जाएं तथा उन पर कुछ न छोड़ा जाए ताकि वे अपनी जिम्मेवारी से बच सकें। कुछ अन्य लोग स्पष्ट आदेशों के अभाव में भी कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार इस पद्धति द्वारा एक मिश्रित मानव समूह का नेतृत्व करना संभव नही है।

जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली के लाभ तथा दोषों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि यह प्रणाली ही वास्तव में व्यावहारिक नेतृत्व शैली है। यदि सभी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर इस प्रणाली से भली प्रकार अवगत करा दिया जाये तो इसे और भी उपयोगी बनाया जा सकता है।

(ग) **स्वतंत्र नेतृत्व भौली**

नेतृत्व की इस शैली को निर्बाध स्वरुप या व्यक्ति केन्द्रित प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रणाली में प्रबन्धक अथवा नेता प्रबन्धकीय कार्यों में कम रुचि लेते हैं। तथा अधिनस्थों को उनके स्वयं के भरोसे छोड़ दिया जाता है। इस विचारधारा को अपनाने के पीछे यह धारणा निहित है कि यदि अनुयायियों को अपनी इच्छानुसार निर्बाध रुप से कार्य करने दिया जाए तो वे अधिक परिश्रम से कार्य करते हुए अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करते हैं। इसके अंतर्गत प्रबन्धक केवल व्यापक उद्देश्यों की व्याख्या करके, अधिनस्थों को अपने–अपने लक्ष्यों को स्वयं निर्धारित करने में सहायता प्रदान करते है, इसके अतिरिक्त कार्य निष्पादन के लिए साधन प्रदान करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर कर्मचारियों को सलाह भी देते है। यह पद्धति निरंकुश नेतृत्व शैली के बिल्कुल विपरीत है।

- **वि◻ोश्षताएँः**

स्वतन्त्र नेतृत्व शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **अधिनस्थों में पूर्ण आस्थाः** इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत प्रबंधक अपने अधिनस्थों को योग्य, सक्रिय, उत्साही तथा जिम्म्मेदार व्यक्ति के रुप में देखता है और उनमें पूरा विश्वास रखते हैं।

(ii) **स्वतंत्र निर्णय पद्धतिः** इस प्रणाली में प्रबंध से संबंधित निर्णय प्रबंधकों के स्थान पर अधिनस्थों द्वारा लिये जाते हैं। वे प्रबंधकों से विचार–विमर्श कर सकते हैं।

(iii) **अधिकारों का विकेन्द्रियकरणः** यह पद्धति विकेन्द्रियकरण के सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात प्रबंधक अधिनस्थों में अधिकारों का व्यापक वितरण कर देते है, जिससे हर व्यक्ति अपने लक्ष्य चुनने, उनसे संबंधित योजना बनाने में पूर्णतयः सक्षम हो सके। प्रबंधक केवल समन्वय, निर्देशन तथा सामान्य नियन्त्रण का कार्य ही करते हैं।

(iv) **सहयोगपूर्ण संबंधः** इस पद्धति में प्रबंधक अपने अधिनस्थों में पूरा विश्वास रखते हैं तथा उनको बराबर का सांझेदार समझते हैं। उन्हे कार्य संबंधी पूर्ण अधिकार तथा दायित्व सौंपे जाते है। परिणामस्वरुप दोनों में सहयोग की भावना जागृत होती है।

(v) **अधिकारों द्वारा अभिप्रेरणाः** अधिनस्थों को अपने कार्य करने के लिए ज्यादा अधिकार देकर प्रोत्साहित किया जाता है। अधिकार प्राप्ति से उनमें स्वाभिमान की भावना उत्पन्न होती है जो उन्हें अभिप्रेरित करती है।

(vi) **दोहरा सन्दे□वाहनः** इस पद्धति में सभी कर्मचारी अपने–अपने कार्यों का निष्पादन करने के लिए आपस में विचार–विनिमय करते है तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रबंधकों की सेवाएं भी उपलब्ध रहती हैं।

(vii) **स्वय संचालन, पर्यवेक्षण व नियंत्रणः** एक बार उद्देश्यों की व्याख्या कर देने के बाद प्रबंधक का कार्य तो केवल विपरीत परिस्थितियों में हस्ताक्षेप करने का ही रह जाता है। कर्मचारियों का पर्यावेक्षण तथा नियंन्त्रण स्वयं उनके द्वारा ही किया जाता है।

(viii) **कर्मचारियों में दायित्व की भावनाः** इस पद्धति के अंतर्गत कार्य करने वाला हर व्यक्ति अपनी जिम्मेवारी को अच्छी तरह समझता है और उसको पूरा करने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है।

- **लाभ**

स्वतन्त्र नेतृत्व शैली के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) **अधिनस्थों में आत्मवि□वास का विकासः** जब कार्य के सभी अधिकार कर्मचारियों को सौंप दिये जाते है तो वे स्वयं निर्णय लेने के अभ्यस्त हो जाते है जिससे उनमें आत्म–विश्वास जागृत होता है। भविष्य में वे विभिन्न क्रियाओं का निष्पादन और भी कुशलता से करने लगते हैं।

(ii) **उच्च्व स्तरीय अभिप्रेरणः** जब प्रबंधक द्वारा अधिनस्थों में विश्वास व्यक्त करते हुए सब कुछ उन्हें सौंप दिया जाता है तो वे स्वयं को संस्था का एक महत्वपूर्ण अंग समझने लगते हैं इस

प्रकार उन्हें महसूस होने लगता है कि वे संस्था के कर्मचारी नहीं बल्कि स्वंय संस्था है इस विचार के उत्पन्न होने के कारण उनकी अभिप्रेरणा में कोई कमी नहीं रह जाती।

(iii) **संस्था के विकास एवं विस्तार में सहायकः** जिस संस्था में नेतृत्व की इस पद्धति का उपयोग किया जाता है उसका विकास व विस्तार चरम सीमा पर होता है। इसका मुख्य कारण है प्रबंधकों के पास संस्था के विकास व विस्तार की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए पर्याप्त समय होना।

- **दोश**

नेतृत्व की इस शैली में निम्नलिखित दोष भी हैंः

(i) **समन्वय में कठिनाईः** प्रबंधकों द्वारा नज़दीकी पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण न किये जाने के कारण सभी कर्मचारी अपनी इच्छा से कार्य करते हैं। कुछ विपरीत दृष्टिकोण वाले कर्मचारी दूसरे व्यक्तियों के लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बन जाते है। ऐसे व्यक्ति न तो स्वयं काम करते हैं और न ही दूसरों को काम करते हुए देख सकते हैं। इस प्रकार के आपसी व्यवहार में समन्वय स्थापित करना प्रबंधक के लिए कठिन होता जाता है।

(ii) **प्रबंधकीय पद महत्वहीन होनाः** इस नेतृत्व प्रणाली में प्रबंधक का पद महत्वहीन हो जाता है क्योंकि न तो वह कोई योजना बनाता है, न ही कोई निर्णय लेता है और न ही निन्त्रण रखता है।

(iii) **केवल अधिक िक्षित लोगों के लिए उपयुक्तः** यह प्रणाली केवल उसी स्थिति में उपयोगी है जबकि प्रत्येक कर्मचारी पूर्णतयः शिक्षित हो, ताकि उसको कार्यभार पूरे विश्वास के साथ सौंपा जा सके। अशिक्षित तथा कम शिक्षित लोगों को नेतृत्व करने के लिए यह पद्धति सर्वथा ठीक नहीं है।

यह पद्धति जहां एक ओर कर्मचारियों में सहयोग तथा स्वाभिमान की भावना को जन्म देती है वहीं, दूसरी ओर सभी परिस्थितियों में इसे लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह प्रणाली केवल वहीं उपयोगी है जहां शिक्षित लोगों का नेतृत्व किया जाना हो। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके प्रयोग से नेता अथवा प्रबंधक का पद महत्वहीन हो जाता है। अतः निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में यह नेतृत्व पद्धति व्यवहारिक नहीं है।

- **उपयुक्त भैली**

अधिकारात्मक नेतृत्व शैली में वर्णित की गई तीनों पद्धतियों में से किस पद्धति का उपयोग किये जायें, यह प्रत्येक प्रबंधक के अपने ज्ञान, व्यवहार तथा परिस्थितियों की मांग पर निर्भर करता है। किसी एक परिस्थिति में कोई एक शैली उपयोगी हो सकती है तो किसी अन्य परिस्थिति में कोई दूसरी। प्रायः मानव स्वभाव न तो अधिक कठोर नियंत्रण में कार्य करने का होता है और न ही बिना नियंत्रण के। उसे तो बीच का रास्ता चाहिए जो जनतान्त्रिक नेतृत्व प्रणाली द्वारा ही सम्भव है। अतः इस निष्कर्ष के रुप में कह सकते हैं कि आधुनिक युग में जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली ही अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

- **निरंकुश, जनतान्त्रिक तथा स्वतन्त्र नेतृत्व भैलियों में अन्तर**

नेतृत्व की तीनों ही शैलियों की अलग–अलग विशेषताएँ हैं तथा इनके पक्ष व विपक्ष में भी भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। इनके अन्तर को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है।

नेतृत्व भैलियों में अन्तर

अन्तर का आधार	निरंकुश नेतृत्व	जनतान्त्रिक नेतृत्व	स्वतन्त्र नेतृत्व
1. अधिकारों का बंटवारा	कार्य निष्पादन से संबंधित सभी अधिकार प्रबंधक के पास केन्द्रित रहते हैं।	आवश्यकतानुसार कुछ अधिकारों को अनुयायियों में हस्तांतरित कर दिया जाता है।	अधिकांश अधिकारों को अनुयायियों में हस्तांतरित कर दिया जाता है।
2. नीतियों का निर्धारण	नितियों का निर्धारण पूर्णतः प्रबंधक अथवा नेता द्वारा किया जाता है।	कर्मचारियों से विचार–विमश के बाद ही नीतियां निर्धारित की जाती हैं।	नीति निर्धारण का कार्य अनुयायियों को सौंप दिया जाता है तथा नेता का हस्तक्षेप न्यनूतम होता है।
3. व्यक्तिगत कार्य निर्धारण	अनुयायियों के कार्य का निर्धारण नेता स्वयं करता है।	अनुयायी चाहे तो नेता की मदद ले सकते हैं अन्यथा वे स्वतन्त्र होते हैं।	अनुयायियों के कार्य निर्धारण में नेता का हस्तक्षेप शून्य होता है।
4. नियंन्त्रण की सीमा	कठोर नियन्त्रण।	आवश्यकतानुसार हल्के नियन्त्रण का प्रयोग।	स्वतः नियंत्रित प्रणाली होने के कारण नेता का नियंत्रण नहीं के

			बराबर।
5. सन्देशवाहन का प्रकार	सन्देशवाहन केवल ऊपर से नीचे की ओर चलता है।	सन्देशवाहन ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर, दोनों तरफ चलता है।	स्वतन्त्र संदेशवाहन।
6. अभिप्रेरण	ऋणात्मक अभिप्रेरण	धनात्मक अभिप्रेरण।	उच्च स्तरीय अभिप्रेरण।
7. लोकप्रियता	यह शैली प्राचीन प्रबंध व्यवस्था में लोकप्रिय थी।	यह शैली आधुनिक प्रबंध व्यवस्था में सर्वाधिक लोकप्रिय।	यह आधुनिक प्रबंध व्यवस्था में कम लोकप्रिय है।

12.7.4 परिणामत्मक नेतृत्व भैली

नेतृत्व की इस पद्धति में नेता अथवा प्रबंधक द्वारा क्रियाओं के परिणामों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इस पद्धति के अंतर्गत संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दो तर्क दिये गये है। प्रथम, तर्क के अनुसार, अनुयायियों के उत्थान पर ध्यान केन्द्रित करते हुए यह मान लिया जाता है कि ऐसा करने से लक्ष्य स्वयं ही प्राप्त होंगे। दूसरे तर्क के अनुसार, अनुयायियों की ओर अधिक ध्यान न देकर उत्पादन की नई–नई तकनीकों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इस प्रकार परिणात्मक नेतृत्व शैलियाँ दो प्रकार की होती हैं, जिसका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित हैः

(I) कर्मचारी प्रधान नेतृत्व भैली

इसके अंतर्गत नेता द्वारा अपने अनुयायियों को सर्वोपरि माना जाता है। यह शैली इस धारणा पर आधारित है कि यदि कर्मचारियों के साथ मानवता पूर्ण व्यवहार करते हुए उनकी भावनाओं का आदर किया जाये, कार्य की दशाओं में सुधार किया जाये तो वांछित परिणाम स्वतः ही प्राप्त हो जायेंगे। इस तरह का व्यवहार अथवा सोच कर्मचारियों को एक जुट होकर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है।

क्योंकि इस पद्धति में कर्मचारियों की भावनाओं को समझने पर अधिक जोर दिया गया है, इसलिए नेता का मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञ होना आवश्यक है। यदि नेता इस क्षेत्र को पूरी जानकारी रखता है तो वह समय से ही अनुयायियों की इच्छाओं को जान लेगा और सफल नेता सिद्ध होगा। दूसरी ओर, यह प्रणाली वहां उपयोगी नहीं है जहां मानव समूह के अधिक लोग लापरवाह तथा गैर जिम्मेवार हैं।

क्योंकि इस प्रद्धति में कर्मचारियों की भावनाओं को समझाने पर अधिक जोर किदया गया है, इसलिए नेता का मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञ होना आवश्यक है। यदि नेता उस क्षेत्र का पूरा **ज्ञान** रखता है तों वह समय से ही अनुयायियों की इच्छाओं को जान लेगा और सफल नेता सिद्ध होगा। दूसरी ओर, यह प्रणाली वहां उपयोगी नहीं है जहां मानव समूह के अधिक लोग लापरवाह तथा गैर जिम्मेवार हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 नेतृत्व शैली से क्या अभिप्राय है?
प्र.11 रिक्त स्थान भरिए :
(i) नेता द्वारा अपने अनुयायियों को सर्वोपरि मानना .... नेतृत्व शैली है ।
(ii) जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली को ....शैली भी कहते हैं।

12.8 परिवर्तन का प्रबन्ध

परिवर्तन संसार का नियम है। जन्म, बचपन, जवानी, बुढापा/धूप–छांव/ऋतु–परिवर्तन आदि कुछ ऐसे सत्य हैं जिन्हें कोई टाल नहीं सकता। अर्थात संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है। परिवर्तनशलता को जानना इतना महतवपूर्ण नहीं है जितना कि अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवर्तनों के साथ समझौता करना। यह तो हमने परिवर्तन के संबंध में संसारिक बात की। यहां हमारा उद्देश्य परिवर्तन शब्द का अध्ययन संगठन के संदर्भ में करना है। प्रायः हम देखते हैं कि एक व्यवसाय के जीवन में भी अनेक परिवर्तन आते रहते हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादन की नई विधियां विकसित होना, सरकारी नीतियों में परिवर्तन, मंदीकाल, तेजीकाल, कर्मचारियों कर पदोन्नति व स्थानान्तरण, बाजार में प्रतियोगियों का प्रवेश, बिक्री में कमी, लाभों में कमी आदि। संस्था तथा संस्था में काम करने वाले व्यक्तियों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है। अतः संस्था व कर्मचारियों दोनों के अस्तित्व का बचाए रखने के लिए इन परिवर्तनों से समझौता किया जाना जरुरी होता है।

12.8.1 परिवर्तन का अर्थ

''जब हमारी पूर्व–स्थिति में किसी भी प्रकार की भिन्नता आती है तो इसे परिवर्तन कहते हैं।'' उदाहरण के लिए–एक कारखाने में पहले जो काम साधारण मशीनों से किया जाता था वही काम अब इलेक्ट्रानिक मशीनों से किया जाने लगा है। इससे कारखाने में काम करने वाले लोगों की पूर्व –स्थिति में परिवर्तन आ जाएगा। अतः जब विद्यमान संगठन संरचनाः संगठन के उद्धेश्यों/

नीतियों/कार्य–विधियां, उत्पादन विधिः कर्मचारियों के पद के स्तर आदि में भिन्नता लाई जाती है तो परिवर्तन होता है।

- **परिवर्तन का विरोध**

  संगठन के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवर्तन करना आवश्यक होता है लेकिन कई बार इस तरह के परिवर्तन का कुछ लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। परिणामतः वे इसे पसंद नहीं करते और इसका विरोध करते हैं। विरोध की आशंका उस समय अधिक होती है जब परिवर्तन से कर्मचारियों का कार्यभार बढ़ता हो, वेतन में कमी आती हो अथवा नौकरी से हटाए जाने की संभावना हो।

- **परिवर्तन के प्रबंध का अर्थ**

  जब संगठन में कोई परिवर्तन किया जाता है तो उसका कोई कारण अवश्य होता है। परिवर्तन के कारण आंतरिक व बाहरी दोनों हो सकते हैं। (इन कारणों का वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है) संक्षेप में कहा जा सकता है कि कारण कुछ भी हों परिवर्तन तो करना ही होता है। यहां मुख्य प्रश्न यह है कि परिवर्तन के विरोध से कैसे बचा जाए? यह काम प्रबंध द्वारा किया जा सकता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि, ''प्रस्तावित परिवर्तन को निर्विरोघ लागू करने की एक निश्चित प्रक्रिया को परिवर्तन का प्रबंध कहते हैं।'' **डा. पी. सामभैया** के अनुसार, ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को लागू किया जाता है परिवर्तन का प्रबंध कहलाता है।''

टूल बाक्स – 2
परिवर्तन का प्रबन्ध इसका अभिप्राय परिवर्तनों को निर्विरोध लागू करने की प्रक्रिया से है

12.8.2 परिवर्तन की प्रकृति

परिवर्तन की प्रकृति को निम्नलिखित विवरण से समझा जा सकता हैः

(i) **परिवर्तन प्रकृति का नियम हैः** प्रकृति ने इस संसार को जो कुछ भी दिया है सब कुछ परिवर्तनशील है। मनुष्य को परिवर्तित परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार अपने–आप को समायोजित करना पड़ता है। ऐसा न करने की स्थिति में उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। जिस प्रकार एक मुनष्य को परिवर्तन का सामना करना पड़ता है, ठीक

उसी प्रकार एक व्यवसायिक इकाई को भी अनेक आंतरिक व बाहरी शक्तियां परिवर्तन के लिए मजबूर करती हैं। अतः परिवर्तन अचानक ही नहीं हो जाते बल्कि यह तो एक नियम है जिसके अनुसार इन्हें होनी ही होता है।

(ii) **परिवर्तन का मनुश्य द्वारा विरोध होता है:** परिवर्तन अवश्यमेव होते हैं और यह भी सत्य है कि प्रायः लोग उनका विरोध करते हैं। परिवर्तन से एक कम्पनी के कर्मचारियों के कार्य–स्थान, पद, बॉस, कार्य–विधि, मित्रों का समूह, पारिश्रामिक आदि में बदलाव आ सकता है। अर्थात उन्हें एक नए वातावरण में काम करने पर मजबूर होना पड़ता है। लेकिन मानव स्वभाव ऐसा होता है कि वह पुराने वातावरण में रहना चाहता है। परिवर्तन का विरोध श्रमिकों, निम्नस्तरीय प्रबंधकों, मध्यस्तरीय प्रबंधकों, व उच्चस्तरीय प्रबंधकों सभी द्वारा किया जा सकता है।

(iii) **परिवर्तन विकास की ओर ले जाता है:** परिवर्तन की प्रकृति विकास की ओर ले जाने की होती है। इसका अर्थ यह है कि जब भी कोई परिवर्तन होता है वह नयापन लोगों के लिए होता है। यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि जब परिवर्तन से विकास होता है तो फिर लोग उसका विरोध क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि जरुरी नहीं कि परिवर्तन से सभी को लाभ हो। हो सकता है, परिवर्तन से कुछ लोगों को बहुत लाभ हो, कुछ को कम और कुछ को हानि। इस प्रकार जिनको हानि होगी वे तो परिवर्तन का विरोध करेंगे ही।

(iv) **परिवर्तन एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है:** परिवर्तन एक प्रक्रिया है क्योंकि जब भी परिवर्तन किया जाता है तो विभिन्न चरणों से गुजरने पर ही परिवर्तन का काम पूरा होता है। प्रक्रिया होने के साथ–साथ यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया भी है। एक व्यवसायिक इकाई गतिशील वातावरण में जन्म लेती है और विकसित होती है। अतः जैसे ही एक परिवर्तन को लागू करने का काम पूरा होता है तभी कोई दूसरी समस्या आ जाती है और पुनः कोई और परिवर्तन करना पड़ता है।

(v) **परिवर्तन में अनिश्चितता का तत्व होता है:** परिवर्तन भविष्य के लिए किया जाता है और भविष्य अनिश्चित होता है। परिणामस्वरुप परिवर्तन के परिणाम भी अनिश्चित होते हैं। उनके बारे में पूरी गारंटी के साथ पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः परिवर्तन में अनिश्चितता का तत्व निहित होता है।

(vi) **परिवर्तन के लिए परिवर्तन एजेंट की जरुरत होती है:** परिवर्तन कार्यक्रम कोई स्वचालित प्रक्रिया नहीं है। इसे लागू करने के लिए अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। इसीलिए यह प्रक्रिया

पूरी करने के लिए एक विशेष व्यक्ति की जरुरत होती है जिसे एजेंट कहते हैं। छोटे परिवर्तनों के लिए संबंधित प्रबंधक ही परिवर्तन एजेंट का काम करता है जबकि बड़े परिवर्तनों के लिए उच्च प्रबंधकों अथवा बाहरी पेशेवर सलाहकारों की मदद ली जाती है।

(vii) **परिवर्तन दो भक्तियों के कारण होता है:** परिवर्तन की प्रकृति दो शक्तियों से प्रभावित होने की है– आंतरिक एवं बाहरी। उदाहरण के लिए, यदि कम्पनी अपने दो विभागों को मिलाकर एक नया विभाग बना देती है तो यह आंतरिक परिवर्तन है। इसके विपरीत यदि प्रतियोगी कम्पनी के बाजार में प्रवेश करने के कारण पुरानी कम्पनी को अपनी मूल्य नीति में परिवर्तन करना पड़ता है तो वह बाहरी परिवर्तन है।

(viii) **परिवर्तन के दो प्रकार हैं:** कारण कुछ भी हो परिवर्तन दो स्वरुपों में किया जा सकता है। कार्य संबंधी अथवा संगठन संबंधी। आधुनिक मशीनों की स्थापना एक कार्य संबंधी परिवर्तन है जबकि विभागों की संख्या कम या अधिक करना एक संगठन संबंधी परिवर्तन है।

12.8.3 परिवर्तन के कारण

प्रत्येक संगठन में अनेक प्रकार के परिवर्तन करने पड़ते हैं। परिवर्तनों के अनेक कारण हो सकते हैं। सुविधा की दृष्टि से इन्हें निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

आंतरिक तत्व:

निम्नलिखित आंतरिक कारणों से संगठन में परिवर्तन हो सकते हैं:

(i) **प्रबंधकीय** : संगठन में परिवर्तन का प्रथम आंतरिक कारण प्रबंधकों से संबंधित है। इसका अर्थ यह है कि जैसे ही प्रबंधक की स्थिति में किसी प्रकार की भिन्नता आती है उससे संगठन में भी परिवर्तन करना पड़ता है। प्रबंधकों की स्थिति में परिवर्तन के उदाहरण इस प्रकार हैं: – पदोन्नति, स्थानान्तरण, अवकाश ग्रहण करना, छंटनी आदि। प्रत्येक प्रबंधक की कार्यशैली अलग होती है। जैसे ही किसी विभाग के प्रबंधक की स्थिति में भिन्नता आती है वहां परिवर्तन महसूस होने लगता है।

(ii) **विकास संबंधी:** किसी भी संगठन में विकास के लिए उसमें गतिशीलता को बनाए रखना जरुरी है: समझदार प्रबंधक संगठन में किसी न किसी रुप में परिवर्तन करते रहते हैं। इससे संगठन में काम करने वाले लोग परिवर्तन के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसका लाभ यह होता है कि जब भी किसी बड़े परिवर्तन की आवश्यकता पड़े तो कर्मचारी उसका विरोध नही करते।

विकास संबंधी कारणों में उत्पादन विधि में परिवर्तन से बाजारों की खोज, प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(iii) **संगठनात्मकः** कभी–कभी वर्तमान संगठन व्यवस्था निष्क्रिय हो जाती है। ऐसी स्थिति में वांछित परिणम प्राप्त नहीं होते। संगठन व्यवस्था में कमजोरी के कारण इस प्रकार हैं

- प्रबंधकीय स्तरों का आवश्यकता से कम या अधिक होना
- प्रबंध का विस्तार बहुत कम या बहुत अधिक होना
- विभागों की संख्या आवश्यकता से कम या अधिक होना
- प्रभावी संदेशवाहन प्रणाली न होना
- विभिन्न विभागों में परस्पर अच्छे संबंध का न होना
- प्रभावी निर्णयन प्रक्रिया का न होना
- रेखा एवं स्टॉक अधिकारियों में लगातार संघर्ष रहना आदि।

इन संगठनात्मक कारणों से संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(ख) **बाह्य तत्व**

अनेक बाह्य तत्व ऐसे हैं जो संगठन को मजबूर करते हैं कि वे संगठन अपने उद्देश्यों, नीतियों, संरचना आदि में परिवर्तन करे। ये तत्व निम्नलिखित हैंः–

(i) **आर्थिक** ः आर्थिक तत्वों का संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरुप संगठन में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं। मुख्य आर्थिक तत्वों के उदाहरण इस प्रकार हैंः

(क) **मंदीकाल व तेजीकरणः** मंदीकाल व तेजीकरण किसी भी अर्थव्यवस्था की दो महत्वपूर्ण अवस्थाएं होती हैं। मंदीकाल में मांग में कमी तथा इसके विपरीत तेजीकाल में मांग में वृद्धि को ध्यान में रखकर संगठन में अनेक परिवर्तन किए जाते हैं।

(ख) **राष्ट्रीय आय में परिवर्तनः** राष्ट्रीय आय में परिवर्तन से लोगों के जीवन–स्तर में परिवर्तन होता हैः जिसका प्रभाव वस्तुओं की मांग पर पड़ता है। विभिन्न प्रकार की मांग को पूरा करने के लिए अनेक नए उत्पाद तैयार करने होते हैं। तथा नई उत्पाद विधियों का प्रयोग करना होता है। इससे निश्चित रुप में संगठन में परिवर्तन करने होते हैं।

(ग) **भहरीकरणः** शहरीकरण का सीधा प्रभाव उद्योगों पर पड़ता है। गांव से शहरों की ओर आने वाले लोगों की रुचियों के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करना होता है।

(ii) **सरकारीः** सरकारी तत्व के अंतर्गत निम्न परिवर्तनों का सम्मिलित किया जाता है– राष्ट्रीय अथवा राज्य स्तर पर सरकार में परिवर्तन, सरकार की आर्थिक नीतियों में परिवर्तन, सरकार की आयात–निर्यात नीति में परिवर्तन, कर–नीति में परिवर्तन, सरकार की लाईसेंस नीति में परिवर्तन, आदि। इन सभी सरकारी तत्वों का संगठन पर प्रभाव पड़ता है और निश्चित रुप से संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(iii) **तकनीकीः** किसी भी देश में हो रहे तकनीकी विकास में संगठन दो तरीके से प्रभावित होता है। प्रथम, उत्पादन की नई विधियां एवं नई–नई मशीनों की खोज की जाती है। इससे श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगता है। अनपढ़ श्रमिकों का स्थान शिक्षित श्रमिक लेने लगते हैं। द्वितीय– तकनीकी विकास के कारण श्रमिकों की छंटनी की संभावना से श्रम –समस्या विराट रुप धारण करने लगती है। अतः एक ओर श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन तथा दूसरी ओर छंटनी के डर से उत्पन्न समस्या के कारण संगठन में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(iv) **सामाजिक** : रीति–रिवाज में परिवर्तन, लोगों की बढ़ती क्रय–शक्ति, उपयोग व्यवहार में परिवर्तन, आदि ऐसे सामाजिक परिवर्तन हैं जिनका संगठन पर प्रभाव पड़ता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.12 एक संगठन में विशिष्टीकरण का क्या अर्थ है?
प्र.13 क्या परिवर्तनों को रोका जा सकता है?
प्र.14 परिवर्तन के मूल कारण क्या हैं?

12.8.4 परिवर्तन के प्रकार

हमने देखा कि संगठन में परिवर्तन किए जाने के अनेक आंतरिक व बाह्य कारण हो सकते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इन आंतरिक व बाह्य तत्वों से प्रभावित होकर संगठन में कितने प्रकार के परिवर्तन किए जा सकते हैं। संगठन में किए जाने वाले परिवर्तनों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(क) कार्य संबंधी परिवर्तन

कार्य संबंधी परिवर्तन मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के होते हैंः

(i) **कार्य–विधि में परिवर्तनः** दिन–प्रतिदिन होने वाले अनुसंधानों के कारण उत्पादन व अन्य कार्य करने की नई–नई विधियों का विकास हो रहा है। संस्था के विकास के लिए व आधुनिकीकरण का लाभ उठाने के लिए इन विधियों को लागू किया जाता है। इस प्रकार संगठन में यह पहली प्रकार का कार्य संबंधी परिवर्तन होता है।

(ii) **जॉब में परिवर्तनः** कभी–कभी एक बड़ी जॉब अथवा क्रिया को अनेक छोटी–छोटी क्रियाओं में विभक्त करने की आवश्यकता महसूस होती है तो कभी इसके विपरीत। इससे कार्य संबंधी परिवर्तन होता है।

(iii) **मशीनों में परिवर्तनः** आज निरंतर हो रहे तकनीकी परिवर्तनों के कारण हस्तचलित मशीनों का स्थान स्वचालित मशीनों ले रही हैं। ऐसा परिवर्तन करने से जहां एक ओर अनेक लाभ हैं वहीं इसकी एक बहुत बड़ी हानि भी है। वह है छंटनी के डर से कर्मचारियों द्वारा किया जाने वाला विरोध।

(iv) **उत्पादों में परिवर्तनः** बढ़ते जीवन स्तर, शहरीकरण आदि के कारण आज नये–नये उत्पादों की मांग की जा रही है। प्रबंधक को इस मांग के बारे में सचेत रहना पड़ता है और आवश्यकता पड़ने पर अपने पुराने उत्पादों को या तो बदलना पड़ता है अथवा उत्पाद सूची में ही कुछ नये उत्पाद जोड़ने पड़ते हैं।

(v) **प्रशिक्षण पद्धति में परिवर्तनः** आवश्यकता पड़ने पर प्रशिक्षण पद्धति में परिवर्तन किया जा सकता है। नई कार्य–विधि एवं नई–नई मशीनें आ जाने के कारण प्रशिक्षण आधुनिक पद्धतियों द्वारा दिया जाना आवश्यक हो गया है।

(ख) संगठन संबधी परिवर्तनः

संगठन संबंधी परिवर्तन मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :

(i) **संगठन संरचना में परिवर्तनः** संगठन संरचना का अर्थ संगठन में विभिन्न स्तरों पर स्थापित पदों से है। कम्पनी के आकार के अनुसार इन पदों की संख्या कम अथवा अधिक की जा सकती है। उदाहरण के लिए, एक कम्पनी में क्रय विभाग, विक्रय विभाग, विज्ञापन विभाग, उत्पादन विभाग, कर्मचारी विभाग एवं वित्त विभाग, कुल छः विभाग हैं। गहन अध्ययन के बाद

ऐसा महसूस किया गया कि विज्ञापन विभाग की अलग जरुरत नहीं है बल्कि इसे विक्रय विभाग के साथ मिलाया जा सकता है। इस प्रकार संगठन संरचना में अंतर आ जाएगा।

(ii) **कर्मचारियों की स्थिति में परिवर्तनः** आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न पदों पर काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या, पद व स्तर में परिवर्तन किया जा सकता है ऐसा पदोन्नति, स्थानान्तरण, छंटनी आदि द्वारा किया जाता है।

(iii) **अधिकारों की मात्रा में परिवर्तनः** काम को कुशलतापूर्वक ढंग से करवाने के लिए उच्च अधिकारी अपने अधिनस्थों को अधिकार सौपते हैं जिसे अधिकारों का भारार्पण कहते हैं। जब अधिकारियों के भारार्पण की मात्रा को बढ़ा दिया जाता है तो वह विकेन्द्रियकरण का रुप ले लेता है।

(iv) **उद्दे[illegible]यों मे ंपरिवर्तनः** आंतरिक व बाहरी वातावरण से प्रभावित होकर कभी–कभी संस्था को अपने उद्देश्यों में परिवर्तन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नीतियों में भी परिवर्तन किया जाता है।

(v) **संदे[illegible]वाहन श्रृंखला में परिवर्तनः** संदेशवाहन श्रृंखला औपचारिक एवं अनौपचारिक दो प्रकार की होती है। औपचारिक संदेशवाहन के साथ–साथ अनौपचारिक संदेशवाहन भी जरुरी होता है। आवश्यकतानुसार किसी एक या दोनों पर अधिक जोर दिया जा सकता है। इसके साथ ही संदेशवाहन के माध्यमों (लिखित, मौखिक व सांकेतिक) में भी परिवर्तन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पहले मौखिक संदेशवाहन का अधिक प्रयोग किया जाता था लेकिन अब लिखित संदेशवाहन को अधिक प्रचलन में लाया जाता है।

(vi) **प्रोत्साहन पद्धति में परिवर्तनः** प्रोत्साहन की मौद्रिक व अमौद्रिक दो पद्धतियां होती हैं। माना कि एक कम्पनी में पहले दोनों पद्धतियों को प्रयोग में लाया जा रहा था लेकिन कम्पनी ने यह निर्णय लिया है कि केवल मौद्रिक प्रोत्साहन पद्धति का ही प्रयोग किया जाएगा। इस प्रकार संगठन में परिवर्तन आ जाएगा।

12.9 नियोजित परिवर्तन की प्रकिया

जैसा कि स्पष्ट है कि अनेक आंतरिक एवं बाहरी तत्व ऐसे हैं जो किसी न किसी रुप में संगठन को प्रभावित करते रहते है। इसी प्रभाव के कारण संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं। वैसे भी बदलते वातावरण के साथ बदलाव लाने में ही समझदारी है। दूसरी ओर, परिवर्तन

के विरोध की आशंका से भी इंकार नहीं किया जा सकता। परिवर्तन का उद्देश्य किसी समस्या को हल करना होता है न कि विरोध के रुप में एक नई समस्या को जन्म देना। अब प्रश्न यह उठता है कि विरोध से बचते हुए परिवर्तन को कैसे लागू किया जाए। इस समस्या से बचा जा सकता है, यदि परिवर्तन को ठीक प्रकार प्रबंध कर लिया जाए। अन्य शब्दों में, यदि परिवर्तन को नियोजित ढंग से लागू किया जाए तो विरोध को समाप्त नही ंतो न्यूनतम अवश्य किया जा सकता है। अब पुनः प्रश्न यह उठता है कि यह नियोजित ढंग क्या है। परिवर्तन का नियोजित ढंग है ''नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया''। यदि इस प्रक्रिया का पालन करके परिवर्तन लागू किया जाए तो सफलता की पूरी संभावना रहती है। नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को आगे चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

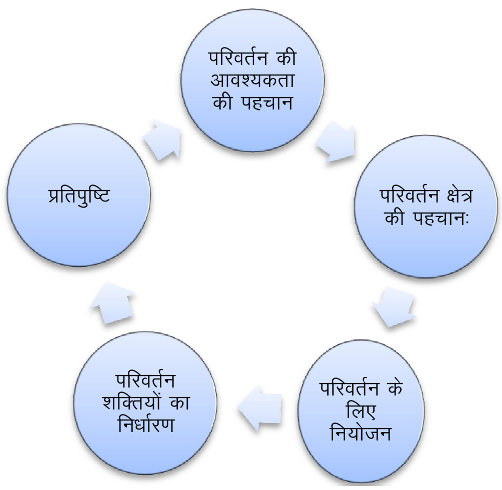

चित्र – 12.3 नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया

(i) **परिवर्तन की आव□यकता की पहचानः** नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया में सर्व प्रथम यह देखा जाता है कि परिवर्तन की आवश्यकता क्या है? आखिर परिवर्तन का विचार मस्तिष्क में क्यों आया? परिवर्तन की आवश्यकता का संबंध संगठन को प्रभावित करने वाले तत्वों से है। संगठन को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हो सकते हैं। यहां पर यह देखने की आवश्यकता है कि कोई विशेष तत्व संगठन को किस प्रकार प्रभावित करता है। यह जानकारी मिलते ही आवश्यकता का पता लग जाता है। उदाहरण के लिए, अनेक प्रतियोगी कम्पनियों का बाजार में प्रवेश, एक ऐसा बाहरी तत्व है जिससे पहले से स्थापित कम्पनी प्रभावित होती है। गहन अध्ययन करने पर पता चला कि इस बाहरी तत्व के क्रियाशील होने

के कारण कम्पनी की बिक्री में कमी आ गई है। कम्पनी के सामने बिक्री में भारी गिरावट एक समस्या है। इसे दूर करने के लिए कम्पनी को अपने संगठन में कुछ परिवर्तन करना होगा। इस समस्या के संदर्भ में यह पता लगाया जाएगा कि बिक्री की वर्तमान मात्रा कितनी है और वास्तविक मात्रा कितनी होनी चाहिए? दोनों के अंतर को समाप्त करना अथवा बिक्री मे गिरावट को रोकना, परिवर्तन की आवश्यकता है।

इसी प्रकार परिवर्तन की आवश्यकता के और भी अनके कारण हो सकते है, जैसे– कर्मचारी परिवर्तन दर में वृद्धि, संस्था के विस्तार की आवश्यकता, श्रम–प्रबंध में कटुता, उत्पादन लागत में लगातार वृद्धि, सरकार की आयात–निर्यात नीति में परिवर्तन।

(ii) **परिवर्तन क्षेत्र की पहचानः** नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के दूसरे चरण पर परिवर्तन क्षेत्र की पहचान की जाती है। यह निश्चित किया जाता है कि परिवर्तन कार्य संबंधी होगा अथवा संगठन संबंधी अथवा दोनों। प्रथम चरण पर परिवर्तन की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त होने से एक इशारा मिल जाता है कि परिवर्तन किस प्रकार का होगा। उदाहरण के लिए, बिक्री में गिरावट के अनेक प्रकार हो सकते है – माल की घटिया क्वालिटी, विज्ञापन में कमी, घटिया ग्राहक सेवाएं, उधार सुविधा न देना, आदि। माना कि प्रस्तुत उदाहरण में बाजार सर्वेक्षण के बाद यह पता चलता है कि माल की घटिया किस्म बिक्री में गिरावट का कारण है। पुनः अध्ययन करने पर पता चला कि माल की किस्म को आधुनिक मशीनों द्वारा ही सुधारा जा सकता है। अतः स्पष्ट हुआ कि यहां आधुनिक मशीनों की स्थापना करना परिवर्तन क्षेत्र है।

आधुनिक मशीनों की स्थापना करना एक कार्य संबंधी परिवर्तन है। प्रस्तुत समस्या के हल के लिए कार्य संबंधी परिवर्तन के साथ–साथ संगठन संबंधी परिवर्तन भी करना पड़ सकता है। जैसे– उत्पादन विभाग में किसी अनुभवी प्रबंधक का स्थानान्तरण करना तथा विभागीय प्रबंधक के साथ–साथ उप–विभागीय प्रबंधक का एक नया पद स्थापित करना।

(iii) **परिवर्तन के लिए नियोजनः** जैसे ही यह स्पष्ट हो जाए कि परिवर्तन किस क्षेत्र में किया जाना है परिवर्तन के लिए नियोजन की कार्यवाही शुरु की जाता है। परिवर्तन के लिए नियोजन में निम्नलिखित तीन प्रश्नों के बारे में निर्णय लिया जाता हैः

→ परिवर्तन कौन करेगा?

→ परिवर्तन कब किया जाएगा?

→ परिवर्तन कैसे किया जाएगा?

→ **परिवर्तन कौन करेगाः** परिवर्तन के लिए नियोजन करते समय सर्वप्रथम यह निर्णय लिया जाता है कि परिवर्तन को कौन व्यक्ति लागू करेगा? जो व्यक्ति परिवर्तन लागू करता है उसे परिवर्तन एजेंट कहते हैं परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैः छोटा परिवर्तन तथा बड़ा परिवर्तन।

छोटे परिवर्तन के लिए परिवर्तन एजेंट का काम संबंधित प्रबंधक कराता है। बड़े परिवर्तन के लिए परिवर्तन की जिम्मेवारी संस्था के ही किसी वरिष्ठ व अनुभवी प्रबंधक को दी जाती है अथवा किसी बाहरी पेशेवर व्यक्ति को यह काम सौंपा जाता है।

→ **परिवर्तन कब किया जाएगा?** यह प्रश्न समय से संबंधित है। परिवर्तन के लिए उचित समय का निर्धारण करते समय ध्यान रखे जाने वाली मुख्य बातों इस प्रकार हैंः

a) विदेशी शक्तियों की संख्या का निर्धारण
b) विदेशी शक्तियों को समझने में लगने वाले समय
c) नये साधनों को जुटाने में लगने वाला समय
d) कर्मचारियों के प्रशिक्षण में लगने वाला समय

→ **परिवर्तन कैसे किया जाएगा?** इसके अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि पूरे परिवर्तन को एकदम लागू किया जाएगा अथवा धीरे–धीरे। यदि परिवर्तन को धीरे–धीरे लागू किया जाना है तो विभिन्न चरणों का समय निश्चित किया जाता है।

(iv) **परिवर्तन भाक्तियों का निर्धारणः** परिवर्तन नियोजन करने के बाद परिवर्तन को प्रभावित करने वाली शक्तियों का निर्धारण किया जाता है। परिवर्तन में एक व्यक्ति, एक समूह अथवा पूरा संगठन प्रभावित हो सकता है। पहले परिवर्तन से प्रभावित होने वाली कुल शक्तियों का निर्धारण किया जाता है। इसके बाद यह देखा जाता है कि उनमें से कितनी शक्तियां परिवर्तन के पक्ष में हैं और कितनी विरोध में। उदाहरण के लिए, आधुनिक मशीनों की स्थापना के कुछ व्यक्ति पक्ष में होंगे तथा कुछ विरोध में। जो व्यक्ति यह सोचते हैं कि आधुनिक मशीनों से काम आसान हो जाएगा व कुछ नया सीखने को मिलेगा, वे परिवर्तन के पक्ष में होंगे। इसके विपरीत, जो व्यक्ति यह सोचते हैं कि नई मशीनों पर काम करने के लिए प्रशिक्षण लेना पड़ेगा व छंटनी भी की जा सकती है, वे परिवर्तन का विरोध करेंगे।

परिवर्तन एजेंट को परिवर्तन के पक्ष में व विरोध में रहने वाली शक्तियों की तुलना करके परिवर्तन को लागू करने का निर्णय लेना होता है। यदि परिवर्तन के पक्ष में अधिक लोग हैं तो उसे लागू कर देना चाहिए। यदि विरोध में अधिक लोग है तो परिवर्तन को उचित समय की इंतज़ार में स्थगित कर देना चाहिए। यदि दोनों शक्तियां बराबर है तो कोई भी निर्णय लिया जा सकता है। ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि पक्ष मजबूत हो जाए और विपक्ष कमजोर।

(v) **प्रतिपुष्टिः** नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के अंतिम चरण के रुप में यह देखा जाता है कि क्या परिवर्तन कार्यक्रम सही दिशा की ओर जा रहा है अथवा नहीं। यह जानकारी प्राप्त करना प्रतिपुष्टि है। परिवर्तन कार्यक्रम लागू करने से पहले पूरा विश्लेषण करने के बाद भी कुछ विरोधी शक्तियां बाधा उत्पन्न कर सकती हैं या कोई अन्य कठिनाई आड़े आ सकती है। यही कारण है कि परिवर्तन कार्यक्रम पर लगातार निगरानी रखनी होती है। किसी भी समस्या के तुरन्त समाधान से परिवर्तन कार्यक्रम की सफलता सुनिश्चित होती है।

प्रत्येक संगठन गतिशील वातावरण में जन्म लेता है और विकसित होता है। इसलि संगठन गतिशील होता है अर्थात इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि जैसे ही एक परिवर्तन को लागू करने का काम पूरा होता है तो कोई दूसरी समस्या आड़े आ सकती है, परिणामस्वरुप, इस नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया को फिर से दोहराना पड़ता है और यह क्रम लगातार चलता रहता है।

12.9.1 परिवर्तन एजेंट

परिवर्तन एजेंट का अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जो परिवर्तन कार्यक्रम को संगठन में लागू करते हैं। विस्तार के आधार पर परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है–

→ छोटा परिवर्तन, तथा

→ बड़ा परिवर्तन

जहां तक छोटे परिवर्तन का प्रश्न है यह काम संबंधित विभागीय प्रबंधकों द्वारा पूरा कर लिया जाता है। इसके लिए विशेषज्ञों की जरुरत नहीं होती, लेकिन बड़े परिवर्तनों को लागू करने के लिए जिन परिवर्तन एजेंटों की जरुरत होती है वे निम्नलिखित हैं :

(ख) आंतरिक परिवर्तन एजेंट

आंतरिक परिवर्तन एजेंट दो प्रकार के होते हैं:

(i) **मुख्य प्रबंधकः** बड़े परिवर्तन को लागू करने हेतु मुख्य प्रबंधक एजेंट के रुप में काम कर सकता है। सारा परिवर्तन कार्यक्रम मुख्य प्रबंधक की देख–रेख में तैयार किया जाता है। जैसे ही परिवर्तन लागू होता है तो मुख्य प्रबंधक अपने–आप को कार्यक्रम से अलग कर लेता है और आगे की जिम्मेदारी संबंधित विभागीय प्रबंधक संभालते हैं। अन्य शब्दों में परिवर्तन की प्रारंभिक अवस्था में मुख्य प्रबंधक और बाद में संबंधित विभागीय प्रबंधक परिवर्तन एजेंट के रुप में काम करते हैं। संक्षेप में मुख्य प्रबंधक की भूमिका प्रभावपूर्ण परिवर्तन के लिए नेतृत्व प्रदान करता है।

(ii) **परिवर्तन सलाहकारः** कम्पनी के किसी भी स्तर के कर्मचारी की नियुक्ति परिवर्तन सलाहकार के रुप में की जा सकती है। प्रायः ये वह कर्मचारी होतें हैं जो समय–समय पर परिवर्तन एजेंट का प्रशिक्षण पेशेवर सलाहकारों से लेते रहते हैं। इन परिवर्तन एजेंटों को एक विशेष परिवर्तन को लागू करने की जिम्मेवारी सौंपी जाती है। एक विशेष समय तक ये लगातार परिवर्तन से काम को करते हैं। जैसे ही परिवर्तन कार्यक्रम को लागू करने का कार्य पूरा हो जाता है ये पुनः अपने पैतृक विभाग में आ जाते है। ये परिवर्तन एजेंट कम्पनी के ही कर्मचारी होते हैं और सभी अन्य कमचारियों से परिचित होते हैं। इनका मुख्य काम विरोध कर सकने वाले लोगों से संपर्क स्थापित करके ऐसा वातावरण तैयार करना होता है ताकि परिवर्तन को सभी सहर्ष स्वीकार कर लें। संक्षेप में, परिवर्तन सलाहकार की भूमिका परिवर्तन संबंधी शिक्षा प्रदान करने की होती है।

(ख) बाहरी परिवर्तन एजेंट

बाहरी परिवर्तन एजेंटों की श्रेणी में मुख्यतः पेशेवर सलाहकारों को सम्मिलित किया जाता है:

पे□वर सलाहकारः कई बार परिवर्तन की गंभीरता को समझते हुए पेशेवर सलाहकारों को परिवर्तन एजेंट के रुप में नियुक्त किया जाता है। पेशेवर सलाहकार अपने–अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं। जैसे–प्रबंध विशेषज्ञ, वित्त विशेषज्ञ, विपणन विशेषज्ञ, लागत नियंत्रण विशेषज्ञ, श्रम संबंधी विशेषज्ञ आदि। इनकी नियुक्ति उच्च प्रबंध द्वारा की जाती है। परिवर्तन विशेषज्ञ अपनी सेवाओं के बदले पारिश्रामिक लेते हैं। प्रायः ये विशेषज्ञ परिवर्तन कार्यक्रम को आंतरिक प्रबन्धकों को समझाते हैं परिवर्तन कार्यक्रम को वास्तविक रुप में लागू करने का

काम आंतरिक प्रबन्धक ही करते हैं। संक्षेप में, पेशेवर सलाहकार की भूमिका कार्यक्रम सलाहकार की होती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.15 पविर्तन कौन करता है?
प्र.16 कार्य संबंधी एंव संगठन संबंधी परिवर्तन में क्या अंतर है?
प्र.17 क्या परिवर्तन नियोजित हो सकता हैं?
प्र.18 परिवर्तन एजेंट कौन हो सकता है?

12.9.2 परिवर्तन के विरोध के कारण

एक व्यावसायिक इकाई के जीवित रहने एवं विकास के लिए परिवर्तन आवश्यक हैः प्रत्येक व्यावसायिक इकाई लगातार बदलते वातावरण में ही जन्म लेती है और विकसित होती है। अतः बदलते वातावरण के अनुसार ही संगठन में परिवर्तन करना जरुरी होता है। जैसे – यदि फैशन बदल रहा है तो उसके अनुरुप नये उत्पाद बाजार में लाने ही होंगे। इसी प्रकार यदि टाईप मशीन की जगह कम्प्यूटर से काम होने लगता है तो यह परिवर्तन करना ही होगा।

परिवर्तन का दूसरा पहलू है विरोधः मनुष्य स्वभाव से ही कुछ ऐसा है कि किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करता है। एक कर्मचारी को ही लें। यदि बैंक में कम्प्यूटर स्थापित करवा दिया जाए तो वह कर्मचारी जिसको कम्प्यूटर का ज्ञान नहीं है निश्चित रुप में इस परिवर्तन का विरोध करेगा। उसके द्वारा प्रकट किया जाने वाले विरोध के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे– कम्प्यूटर चलाना न सीख पाने के कारण नौकरी से हटाए जाने का डर, उससे इस परिवर्तन के बारे में सलाह न लिए जाने की नाराज़गी, कम्प्यूटर लगाने का सुझाव किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना जिसे वह पसंद नहीं करता, आदि आदि। परिवर्तन एवं इसके विरोध के संबंध में **मायो** ने कहा है कि, ''मनुष्य हमेशा अनजान से डरता है और परिवर्तन अनजान को ही प्रस्तुत करता है।''

परिवर्तन के प्रबंधः का अर्थ है प्रस्तावित परिवर्तन को निर्विरोध लागू करना। हम देख चुके हैं कि परिवर्तन का विरोध होने की पूरी संभावना रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि समस्या का समाधान क्या है? इस प्रश्न का हल ढूंढने के लिए पहले यह जानना होगा कि परिवर्तन के विरोध के क्या कारण हैं। इसके बाद परिवर्तन के विरोध को कम करने का बात की जाएगी। यहां यह जान

लेना जरुरी है कि परिवर्तन का विरोध केवल किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा ही नहीं किया जाता है बल्कि संगठन द्वारा भी किया जा सकता है।

I. **व्यक्तिगत तत्व**

व्यक्तियों द्वारा परिवर्तन का विरोध किए जाने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(क) आर्थिक कारण :

परिवर्तन के विरोध के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **बेरोजगारी का डरः** प्रायः देखा जाता है कि तकनीकी परिवर्तन के कारण विकसित हुई नई मशीनों पर पुराने कर्मचारी काम करने में असमर्थ रहते हैं ऐसी स्थिति में उसकी छंटनी की संभावना बढ़ जाती है। छंटनी का परिणाम बेरोजगारी होता है। अतः बेरोजगरी के डर से विरोध उत्पन्न होता है। इस तरह का विरोध व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। कर्मचारियों का एक समूह स्वचाालित अथवा आधुनिक मशीनों का विरोध कर सकता है।

(ii) **पदावनति का डरः** वांछित कुशलता प्राप्त न कर सकने की स्थिति में पदावनति का डर बना रहता है। अतः कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते है।

(iii) **अधिक कार्यभार का डरः** तकनीकी परिवर्तनों के कारण हो सकता है कर्मचारियों का कार्यभार बढ़ जाए जबकि उनका पारिश्रमिक पूर्व–स्तर ही रहे। ऐसी स्थिति में भी कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(ख) व्यक्तिगत कारण

परिवर्तन के विरोध के मुख्य व्यक्तिगत कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **परिवर्तन में भागीदारी नहीं**: कुछ कर्मचारी इस बात से नाराज़ रहते हैं कि परिवर्तन कार्यक्रम तैयार करते समय उनको भागीदार क्यो नहीं बनाया गया। इसी कारण वे परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(ii) **प्रशिक्षण का बोझः** तकनीकी परिवर्तनों के कारण कर्मचारियों को प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। लेकिन प्रायः देखा जाता है कि कर्मचारी प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर जाने से परहेज करते हैं। ऐसे कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(iii) **नीरसता का डरः** कुछ कर्मचारी यह समझते हैं कि तकनीकी परिवर्तनों से विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। और विशिष्टीकरण से काम में नीरसता आ जाती है। इसी डर से वे परिवर्तन को विरोध करते हैं।

(iv) **अहम् असन्तुश्टि का डरः** अह्म के शिकार लोग हमेशा परिवर्तन का विरोध करते है। जब भी किसी परिवर्तन से उनके अह्म को ठेस पहुंचती है तो वे परिवर्तन का विरोध करने से नही चूकते।

(v) **अनिश्चितता से हानि का डरः** ऐसा भी हो सकता हे कि कोई कर्मचारी परिवर्तन का विरोध तो नहीं करना चाहता है, लेकिन परिवर्तन से प्राप्त होने वाले लाभ के बारे में चिंतित रहता है। परिवर्तन का प्रभाव भविष्य में होता है और भविष्य अनिश्चित होता है। अतः वह भावी सफलता की अनिश्चितता से परेशान होकर परिवर्तन का विरोध करने लगता है।

(ग) सामाजिक कारण

परिवर्तन के विरोध के मुख्य सामाजिक कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **नए सामाजिक समायोजनः** परिवर्तन के लागू होने से कर्मचारियों के विभाग, स्थान, समूह, बॉस आदि में बदलाव आ सकता है। इस प्रकार कर्मचारी को एक नए वातावरण में काम करना पड़ता है। लेकिन सभी कर्मचारी ऐसे वातावरण के साथ समायोजन करने के लिए तैयार नहीं होते। कुछ कर्मचारी तो सामाजिक समायोजन के डर से पदोनति तक नहीं लेते। अतः ऐसे कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(ii) **समूह परंपराएंः** कुछ कर्मचारी अपने समूह की परंपराओं से बंधे होते हैं। जैसा समूह के सब लोग करते हैं वे भी वैसा ही करते हैं। ऐसे कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं चाहे उन्हें व्यक्तिगत रुप से लाभ ही क्यों न होता हो।

(iii) **एक तरफा लाभः** कुछ कर्मचारी ऐसा सोचते हैं कि परिवर्तन से लाभ केवल कम्पनी को ही होगा न कि कर्मचारियों को। ऐसी स्थिति में वे परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(II) संगठनात्मक तत्व

परिवर्तन के विरोध में मुख्य संगठनात्मक कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **भक्ति एवं प्रभाव का डरः** यदि उच्च प्रबंधकों को लगे कि परिवर्तन से उनके शक्ति एवं प्रभाव को ठेस पहुंचेगी तो वे निश्चित रुप से इसका विरोध करेंगे। उदाहरण के लिए, कम्पनी का विस्तार हो जाने के कारण अधिकारों के विकेन्द्रियकरण को परिवर्तन के रुप में लागू किए जाने की आवश्यकता होती है। लेकिन ऐसा करने से उच्च प्रबंधकों की शक्ति एवं प्रभाव में कमी आती है। उच्च प्रबंधक ऐसे परिवर्तनों का विरोध कर सकते हैं।

(ii) **साधनों की कमी का डरः** प्रत्येक संस्था में उपलब्ध साधन प्रायः सीमित मात्रा में होते हैं। दूसरी ओर, कोई परिवर्तन तो आवश्यक होता है लेकिन सीमित साधन उसे लागू करने में बाधा बन जाते हैं। अतः साधनों की कमी के कारण के भय से उच्च प्रबंधक ऐसे परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(iii) **भारी परिवर्तन लागतः** कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको लागू करने पर पुरानी संपत्तियों व पुराने लोगों सभी को बदलना पड़ सकता है। ऐसा परिवर्तन भारी लागत वाला होता है। कुछ कम्पनियों इसे सहन नहीं कर सकतीं। परिणामतः वे इस परिवर्तन का विराध करती हैं।

12.9.3 परिवर्तन में विरोध को कम करने के उपाय

परिवर्तन को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए संभावित विरोध को पहले ही न्यूनतम करने का प्रयास करना चाहिए। अब प्रश्न यह है कि विरोध से कैसे बचा जाए। विरोध के उपाय ढूंढने से पहले प्रबंध को यह समझ लेना चाहिए कि परिवर्तन का विरोध करना मानव स्वभाव है और इस स्वभाव को किसी दबाव से नहीं बदला जा सकता, बल्कि दबाव की स्थिति तो विरोध को और बढ़ा सकती है। अतः विरोध को मानवीय ढंग से ही न्यूनतम करने का प्रयास किया जाना चाहिए। विरोध का कारण व्यक्तिगत हो अथवा संगठनात्मक, यह दो तरह से क्रियाशील होता है – या तो एक व्यक्ति अकेला विरोध करता है अथवा समूह में। जिस प्रकार कर्मचारी कभी अकेले परिवर्तन का विरोध करते हैं और कभी समूह में, ठीक उसी प्रकार संगठन स्तर पर भी प्रबंधक कभी अकेले तों कभी समूह में परिवर्तन का विरोध करते हैं। इसलिए परिवर्तन के विरोध के उपाय व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों स्तरों पर किए जाने चाहिए। इसी आधार पर परिवर्तन के विरोध को कम करने के उपायों को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। तथा कुछ अन्य उपाय भी सुझाए जा सकते हैंः

(क) **व्यक्तिगत स्तर पर**

व्यक्तिगत स्तर पर परिवर्तन के विरोध को रोकने के निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैंः

(i) **भागीदारी**ः व्यक्तिगत स्तर पर कर्मचारियों की यह शिकायत रहती है कि परिवर्तन का निर्णय लेते समय उनकी सलाह नहीं ली गई। इसीलिए वे परिवर्तन का विरोध करते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए परिवर्तन एजेंट को चाहिए कि परिवर्तन में प्रभावित होने वाले व्यक्तियों से सलाह कर ली जाए। अर्थात परिवर्तन के निर्णयों में उनको भागीदार बना लेना

चाहिए। इस संदर्भ में कहा जाता है कि भागीदार में बचनबद्धता बढ़ती है। कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे परिवर्तन का विरोध नहीं करता जो उनकी सलाह से किया गया हो।

(ii) **शिक्षण एवं प्रशिक्षणः** कर्मचारी परिवर्तन का विरोध इसलिए भी करते हैं क्योंकि उन्हें इसके गुण–दोषों की जानकारी नहीं होती। अतः समय–समय पर उन्हें परिवर्तन धारणा की जानकारी देते रहना चाहिए। ऐसा करने से वे मनोवैज्ञानिक रुप से परिवर्तन के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें नई विधियों तथा आधुनिक मशीनों को चलाने में समक्ष बनाने के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए। ऐसी स्थिति में नीरस समझे जाने वाले काम में भी उन्हें आनन्द आने लगेगा।

(iii) **संदेशवाहनः** कभी–कभी परिवर्तन का विरोध इसलिए भी किया जाता है क्योंकि संबंधित व्यक्तियों को यह जानकारी ही नहीं होती कि परिवर्तन क्यों किया जा रहा है और उसके क्या प्रभाव होंगे। इस समस्या को दूर करने के लिए प्रभावपूर्ण संदेशवाहन प्रणाली को लागू किया जाना जरुरी है।

(iv) **नेतृत्वः** कभी–कभी यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि लोग परिवर्तन एजेंट को पसंद नहीं करते और केवल इसी कारण वे परिवर्तन का विरोध करते हैं। अतः परिवर्तन एजेंट उसी व्यक्ति को बनाया जाना चाहिए जिसमें अच्छे नेता के गुण हों। एक कुशल नेता में उसके अनुयायियों का पूर्ण विश्वास होता है। इसी विश्वास के कारण वे उसकी हर बात को सहर्ष स्वीकार करते हैं और विरोध का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

(v) **दबावः** वैसे तो परिवर्तन के विरोध को मानवीय ढंग से ही हल करना चाहिए, लेकिन यदि परिवर्तन को तुरन्त आवश्यकता हो और कोई विशेष कर्मचारी अकारण ही इसके विरोध पर अड़ जाए तो दबाव का सहारा भी लिया जा सकता है। ऐसे कर्मचारी को नौकरी से हटाने, हस्तांतरण करने तथा पदोनति पर रोक लगाने की धमकी दी जा सकती है।

(vi) **आर्थिक सुरक्षाः** कर्मचारियों को यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि परिवर्तन से उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक हानि नहीं होगा। आर्थिक हानि की दशा में उन्हें पूरी क्षतिपूर्ती का भरोसा दिलाया जाना चाहिए। इस प्रकार परिवर्तन का सामना करने के लिए वे मानसिक रुप से तैयार हो जाएंगे।

(ख) समूह स्तर पर

कभी–कभी कर्मचारियों का एक विशेष समूह परिवर्तन का विरोध करता है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाए जा सकते हैंः

(i) **सौदेबाजी** : इस उपाय का प्रयोग उस समय किया जाता है जब परिवर्तन से किसी विशेष समूह को हानि होती है। ऐसी स्थिति में लाभ एवं लागत में संतुलन स्थापित किया जाना जरुरी होता है। इसका अर्थ है कि जिस पक्ष को परिवर्तन से जितनी हानि होती हो उसे किसी अन्य रुप में उतना ही लाभ भी होना चाहिए। तभी परिवर्तन को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। ऐसे सौदे प्रायः श्रम संगठनों के साथ किए जाते है।

(ii) **समूह से संपर्कः** परिवर्तन के विरोध की संभावना को समाप्त करने के लिए समूह के साथ विचार–विमर्श किया जा सकता है। विचार–विमर्श के दौरान उन्हें समझाया जा सकता है कि परिवर्तन किन कारणों से आवश्यक है तथा विभिन्न पक्षकारों पर उसके क्या प्रभाव पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त, समूह के प्रतिनिधियों अथवा कुछ वरिष्ठ सदस्यों को परिवर्तन का निर्णय लेते समय भगीदार बनाया जा सकता है। यदि निर्णय समूह की सहमति से लिया जाता है तो विरोध की संभावना शून्य हो जाती है।

(iii) **समूह से संपर्क के दौरान** : प्रबंधकों को इस बात के लिए मानसिक तौर पर तैयार किया जाना चाहिए कि परिवर्तन से कम्पनी को लाभ होता हो तो उन्हें अपने प्रभाव एवं शक्तियों की परवाह नही करनी चाहिए। ऐसे मौके पर उन्हें संस्था के प्रति प्रबंधकों के सामाजिक उत्तरदायित्व को याद दिलाना चाहिए।

(ग) अन्य उपाय

परिवर्तन के विरोध को कम करने के कुछ उपाय निम्नलिखित हैंः

(i) **साधनों की व्यवस्थाः** साधनों की कमी का डर उच्च परिवर्तन का विरोध करने के लिए मजबूर करता है। प्रबंधकों को चाहिए कि पर्याप्त साधन जुटाने के बाद ही परिवर्तन के बारे में सोचें।

(ii) **परिवर्तन लागतों का प्रबंधः** परिवर्तन के कारण स्थायी संपत्तियों एवं मानव–शक्ति के अयोग्य हो जाने से भारी हानि का सामना करना पड़ता है। उच्च प्रबंधकों को देखना चाहिए कि स्थायी कंपनियों को बदलने से होने वाली हानि को परिवर्तन कार्यक्रम को लागू करके पूरा कर लिया जाए अन्यथा परिवर्तन का विचार त्याग देना चाहिए। इसी प्रकार मानव शक्ति को शिक्षण एवं प्रशिक्षण देकर योग्य बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि उनका अस्तित्व खतरे मे न पड़े। और संस्था में भी नये कर्मचारियों पर अधिक खर्च करने से बचा जा सके।

(iii) **परिवर्तन का सही समयः** परिवर्तन लागू करने के समय का परिवर्तन के विरोध पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि कम्पनी को कम लाभ हो रहे हैं और कर्मचारियों को बोनस आदि न मिल रहा है तो ऐसे मौके पर परिवर्तन की बात सोचना मूर्खता होगी। इसके विपरीत, जब कम्पनी को अच्छे लाभ हो रहे हों तथा कर्मचारियों को अच्छा वेतन व अन्य सुविधाएं दी गई हों तो मौके का लाभ उठाते हुए तुरन्त परिवर्तन कार्यक्रम लागू कर देना चाहिए।

(iv) **धीमा प्रवेशः** जब कभी परिवर्तन कार्यक्रम को जल्दबाजी में लागू किया जाता है तो उसका विरोध होता है। कर्मचारी समझ नहीं पाते कि क्या तथा क्यों किया जा रहा है। अतः प्रकृत परिवर्तन को धीरे–धीरे अनेक चरणों में लागू करना चाहिए। ऐसा करने से कर्मचारी मानसिक रुप से तैयार हो जाते है और विरोध में कमी आती है।

सारांश

अतः स्पष्ट है कि संगठनात्मक ढांचा कितना ही अच्छा क्यों न हो, कितने ही शिक्षित अधिकारी नियुक्त किए गए हों, लेकिन यदि उनमें नेतृत्व योग्यता का अभाव है तो संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। नेता वह व्यक्ति होता है जो एक समूह के सभी व्यक्तियों पर अपना प्रभाव इस प्रकार रखता है कि वे सभी पूर्ण उत्साह तथा विश्वास के साथ पूरी क्षमता का प्रयोग करते हुए संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने में जुट जाते हैं। एक नेता की इस प्रकार की योग्यता अथवा गुण को ही नेतृत्व कहा जाता है। नेतृत्व के अंतर्गत अधिनस्थों का अभिप्रेरण इस ढंग से किया जाता है कि वे नेता के व्यवहार से प्रभावित होकर उसका अनुसरण करने लगते हैं और इस प्रकार अधिनस्थों के सहयोग से संस्था के उद्देश्यों को आसानी से पूरा कर लिया जाता है। एक प्रबंधक जिन पद्धतियों पर अपना प्रभाव स्थापित करता है, उन पद्धतियों अथवा विधियों को नेतृत्व कहा जाता है। विभिन्न प्रबंधकों की नेतृत्व शैलियाँ अलग–अलग हो सकती हैं। जब विद्यमान संगठन संरचनाः संगठन के उद्धेश्यों/ नीतियों/कार्य–विधियां, उत्पादन विधिः कर्मचारियों के पद के स्तर आदि में भिन्नता लाई जाती है तो परिवर्तन होता है। संगठन के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवर्तन करना आवश्यक होता है लेकिन कई बार इस तरह के परिवर्तन का कुछ लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। परिणामतः वे इसे पसंद नहीं करते और इसका विरोध करते हैं। परिवर्तन को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए संभावित विरोध को पहले ही न्यूनतम करने का प्रयास करना चाहिए।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र□न

प्र.1 नेताओं तथा प्रबंधकों में अंतर भेद कीजिए।

प्र.2 नेतृत्व एवं प्रबंध में अंतर भेद कीजिए।

प्र.3 नेतृत्व शब्द की व्याख्या करें।

प्र.4 एक अच्छे नेता की विशेषताओं का वर्णन करें।

प्र.5 नेतृत्व का अर्थ एवं विशेषताएँ बताइये।

प्र.6 नेतृत्व प्रबन्ध को निर्देशन कार्य को एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। इस कथन के संबंध में नेतृत्व के महत्व का वर्णन कीजिए।

प्र.7 नेतृत्व की आवश्यकता केवल कम कुशल अधिनस्थों के लिए होती है। क्या आप सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई चार कारण दीजिए।

प्र.8 सभी प्रबन्धक नेता होते हैं लेकिन सभी नेता प्रबनधक नहीं होते। इस कथन के संदर्भ में प्रबन्ध तथा नायकत्य में अंतर भेद कीजिए।

प्र.9 नेतृत्व प्रबंध के निर्देश कार्य का एक आवश्यक तत्व है। ऐसे चार कारणों का उल्लेख कीजिए जो यह स्पष्ट करे कि वह क्यों आवश्यक हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्र□न

प्र.1 ''परिवर्तन प्रकृति का नियम है।'' इस कथन के आधार पर संगठनात्मक परिवर्तनों के प्रकार समझाइए।

प्र.2 ''परिवर्तना का विरोध मानव प्रकृति में है।'' क्या आप इस कथन से सहमत हें। कर्मचारी संगठनात्मक परिवर्तन का विरोध क्यों करते हैं?

प्र.3 नियोजित परिवर्तन से आप क्या समझते हैं।'' इसके मुख्य तत्व क्या हैं?

प्र.4 एक प्रबंधक संगठन में परिवर्तन के विरोध को किस प्रकार नियोजित करता है? उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए।

प्र.5 संगठन में परिवर्तन से क्या अभिप्राय है?

प्र.6 नियोजत परिवर्तनप क्या होता है?

प्र.7 परिवर्तन एजेंट एव परिवर्तन सलाहकार में क्या अंतर है?

खण्ड – 4

इकाई – 3 संघर्श का प्रबंध एव कार्य दबाव

विशय सूची

13.0 प्रस्तावना

13.1 संघर्ष का अर्थ एवं परिणाम

13.2 संघर्ष की प्रकृति

13.3 संघर्ष के प्रकार

13.4 संघर्ष के समाधान की विधियाँ

13.5 कार्य दबाव का अर्थ

13.6 कार्य दबाव के प्रकार

13.7 कार्य दबाव के कारण

13.8 कार्य दबाव का प्रबन्ध

सारांश

अभ्यास

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पाएंगे :–

- संघर्ष का अर्थ व प्रकृति
- संघर्ष के प्रकार
- संघर्ष प्रबन्धन
- कार्य दबाव का अर्थ व प्रकार
- दबाव के कारण
- कार्य दबाव का प्रबन्ध

13.0 प्रस्तावना

व्यक्तियों के बीच, एक समूह में विभिन्न सदस्यों के बीच तथा विभिन्न समूहों के बीच विभिन्न स्तरों पर विवाद उभरते रहते हैं। उनका कार्यों पर तथा सन्निहित व्यक्तियों तथा ग्रुपों की प्रभावोत्पादकता पर महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है। विवादों की प्रकृति तथ गहनता हर व्यक्ति तथा हर ग्रुप में अलग–अलग होती है तथा यह किसी भी प्रबन्धक को मुसीबत में डाल सकती है। कोई भी प्रबन्धक सबसे अधिक कठिनाई तब अनुभव करता है जब उसको काम पर लोगों या समूहों के बीच का अन्तरों या विवादों से निपटना पड़ता है। विवादों की विद्यमानता अनेक तरीकों से उसके काम को जटिल बना देती है। अतः यह बहुत महत्वपूर्ण होता है कि प्रबन्धक द्वारा विवादों को भली प्रकार समझा जाए तथा उनको प्रभावी तौर पर संभालने का प्रयसा किया जाए।

13.1 संघर्ष का अर्थ

संघर्ष दो पक्षधरों के मध्य विचारों का परिणाम होते हैं। जहां दो या अधिक व्यक्ति काम करते हों वहां विचारों का मतभेद होना स्वाभाविक है। प्रत्येक संगठन व्यक्तियों का समूह होता है। अतः प्रत्येक सगठन में संघर्षों की उपस्थिति लगभग निश्चित है। अन्य शब्दों में, संघर्ष प्रत्येक संगठन के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। कुछ समय पूर्व प्रबंध विशेषज्ञ संबंधों को नकारात्मक दृष्टि से देखते थे और इन्हें किसी भी तरह दबाने की बात कहते थे। लेकिन आज इन्हें सकारात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा है और सिफारिश की जा रही है कि इनका रचनात्मक उपयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, दो राजनैतिक दलों में से एक सत्ता पक्ष की भूमिका में तथा दूसरा विपक्ष की भूमिका में है। प्रायः देखा जाता है, कि सत्ता पक्ष जो भी फैसला लेता है विपक्ष उसका अपना विपरीत विचार प्रस्तुत करता है। यह एक संघर्ष की स्थिति है। सत्ता पक्ष इस स्थिति को दो तरह से देख सकता है। प्रथम, विपक्ष के साथ दुश्मन जैसा व्यवहार करते हुए उसके मत को दबाने की कोशिश करना (अर्थात संघर्ष के प्रति नकरात्मक दृष्टिकोण रखना)। द्वितीय, विपक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों पर कुछ सीख कर बेहतर सीख कर बेहतर प्रदर्शन करना (अर्थात संघर्ष के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना)।

टूल बाक्स – 1

संघर्ष

एक संगठन में दो या दो से अधिक लोगों अथवा
समूहों के मध्य विचारों में भिन्नता को संघर्ष कहते हैं।

13.1.1 संघर्ष की परिभाषाएं

संघर्ष का अभिप्राय एक ऐसी विवादित स्थिति से है जो दो पक्षकारों के विचारों एवं हितों में मतभेद के कारण उत्पन्न होती हैं।

संघर्ष की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

एस.पी.रॉबिन्स के अनुसार, " संघर्ष से आशय सभी प्रकार के विरोध व्यवहारों से है।"

जोसेफ रिट्ज़ के अनुसार, "एक संगठन में संघर्ष को सामान्य क्रियाओं में रुकावट अथवा व्यवधान के रुप में वर्णित किया जाता है जिसके परिणामस्वरुप व्यक्तियों अथवा समूहों को सामूहिक रुप से काम करने में असुविधा महसूस होती है।"

13.2 संघर्ष की प्रकृति

संघर्ष की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) **अनुभूति आवश्यक** : संघर्ष की स्थिति की जानकारी दोनों पक्षकारों को होनी जरुरी है। जिस विरोध की दूसरे पक्षकार को जानकारी न हो वह संघर्ष नहीं कहलाता। एक व्यक्ति के अंदर चलने वाला संघर्ष इसका अपवाद है।

(ii) **गतिशील प्रक्रिया** : संघर्ष एक गतिशील प्रक्रिया है। यह अचानक ही पैदा नहीं होता बल्कि इसे वास्तविक रुप तक पहुंचने के लिए एक के बाद एक अनेक सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं।

(iii) **मुद्दों पर आधारित** : कोई भी संघर्ष मुद्दा रहित नहीं होता। इसका किसी न किसी मुद्दे से संबंध अवश्य होता है। मुद्दा तथ्य, लक्ष्य, मूल्य, विधियों आदि के रुप में हो सकता है।

(iv) **बुराई होना आव□यक नहीं**: यह आवश्यक नहीं कि संघर्ष एक बुराई ही हो। संघर्ष के नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रभाव हो सकते हैं। इसको केवल एक बुराई मानना एक पुरानी विचारधारा और एक भूल है।

(v) **संगठन का अनिवार्य घटक**: एक संगठन में विभिन्न विशेषताओं वाले अनेक लोग काम करते हैं। उनके विचारों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। इसे रोकना लगभग असंभव हैं। हां, इसे नियंत्रित अवश्य किया जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि संघर्ष संगठन का एक अनिवार्य घटक है।

(vi) **प्रबंधकीय गलतियों का परिणाम**: संघर्ष का मुख्य कारण प्रबंधकीय कमजोरी होता है। प्रबंध से संगठित ढांचे में कहीं न कहीं कमी रह जाती है तभी संघर्ष उत्पन्न होते हैं। संगठन ढांचे में कमियों के उदाहरण इस प्रकार हैं: कार्य–विभाजन में कमी, संसाधनों के बंटवारे में पक्षपात, भारापर्ण की कमी, प्रबंध के स्तरों का आवश्यकता से कम या अधिक होना, आदि।

(vii) **न्यूनतम स्तर तक संघर्श आव□यक** : आधुनिक विचारकों का मत है कि एक न्यूनतम स्तर तक संघर्षों का होना जरुरी है। इनके अभाव में संगठन में ठहराव–सा आ जाता है और उसका विकास रुक जाता है।

(viii) **समाधान आव□यक** : संघर्षों का समय रहते समाधान ढूंढ लेना चाहिए, अन्यथा इनके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं।

(ix) **अनेक प्रकार**: संघर्ष अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे – व्यक्तिपरक संघर्ष, अंतः वैयक्तिक संघर्ष, समूहपरक संघर्ष, अंतर्समूह संघर्ष, संगठनात्मक संघर्ष, संगठनात्मक संघर्ष, आदि।

(x) **दो पक्षकारों का होना आव□यक नहीं**: संघर्ष के लिए जरुरी नहीं कि दो पक्षकार हों। एक ही व्यक्ति के अंदर विभिन्न विकल्पों के चयन को लेकर चल रही समस्या भी संघर्ष की श्रेणी में आते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.1 रिक्त स्थान भरो :

(i) ....दृष्टि में संघर्ष नहीं होना चाहिए।

(ii) ....दृष्टिकोण में संघर्ष आवश्यक है।

(iii) संघर्ष संगठन का...............घटक है।

13.3 संघर्ष के प्रकार

एक संगठन में अनेक लोग काम करते हैं। संगठन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सभी लोग एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं। अथवा एक दूसरे से व्यवहार करते हैं। वे कभी व्यक्तिगत रुप में काम करते हैं तो कभी सामूहिक रुप में काम करते हैं। कभी एक व्यक्ति किसी एक समूह के साथ व्यवहार करता है तो कभी एक समूह का दूसरे समूह से व्यवहार होता है। इसी प्रकार व्यक्ति एक ही संगठन के विभिन्न स्तरों व विभागों में काम करते हुए एक–दूसरे से व्यवहार करते हैं। एक व्यक्ति जितने ढंगों से दूसरे व्यक्तियों से संपर्क में आता है उतने ही प्रकार के संघर्ष हो सकते हैं। संघर्ष के प्रकार निम्नलिखित होते हैं:

(i) व्यक्तिगत संघर्ष

(ii) अंतर्वैयक्तिक संघर्ष

(iii) समूहपरक संघर्ष

(iv) अंतर्समूह संघर्ष

(v) संगठनात्मक संघर्ष

I व्यक्तिगत संघर्ष

यद्यपि संघर्ष के लिए दो पक्षकारों का होना आवश्यक है लेकिन इसकी उत्पत्ति एक ही व्यक्ति के अंदर हो सकती है। यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जबकि एक व्यक्ति या तो अपने लक्ष्य अथवा अपनी भूमिका को लेकर किसी तरह की उलझन में होता है। यह एक ऐसी स्थिति है जब व्यक्ति यह नही समझ पाता कि क्या करे और क्या न करे।

टूल बाक्स – 2
व्यक्तिपरक संघर्ष इसका अभिप्राय उस संघर्ष से है जो संगठन के एक व्यक्तिगत सदस्य के अंदर पैदा होता है।

व्यक्तिपरक संघर्ष निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं:

(क) लक्ष्य संघर्ष

(ख) भूमिका संघर्ष

(क) **लक्ष्य संघर्ष** : लक्ष्य संघर्ष का अभिप्राय ऐसे संघर्ष से है जो उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति के समक्ष दो अथवा दो से अधिक लक्ष्यों में से किसी एक के चयन की समस्या हो। ये लक्ष्य विरोधी प्रकृति के, लेकिन लगभग समान परिणाम देने वाले होते हैं। व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि वह किस लक्ष्य को स्वीकार करे। उसे कभी पहला तो कभी दूसरा विकल्प बेहतर दिखाई देने लगता है। उसके मस्तिष्क में चल रही इस तरह की उथल–पुथल लक्ष्य संघर्ष को जन्म देती है। ये संघर्ष निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं:

(i) सादृश्य–सादृश्य संघर्ष

(ii) सादृश्य–परिवर्तन संघर्ष

(iii) परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष

टूल बाक्स – 3
लक्ष्य संघर्ष ऐसा संघर्ष जो उस समय उत्पन्न होता है जबकि एक व्यक्ति अनेक विकल्पों में से एक के चयन की समस्या में फंसा हो।

(i) **सादृ□य–सादृ□य संघर्ष**: इस प्रकार के संघर्ष का जन्म उस समय होता है जब व्यक्ति के समक्ष दो अथवा दो से अधिक सकारात्मक लक्ष्य होते हैं। उसे उनमें से किसी एक का चयन करना होता है। यहां लक्ष्यों के सकारात्मक होने का अर्थ यह है कि व्यक्ति के लिए सभी लक्ष्य लगभग एक समान महत्व के होते हैं। उसके सामने समस्या यह होती है कि वह किसे स्वीकार करे और किसे अस्वीकार। उदाहरण के लिए, क्रय कर्मचारी को दो से किसी एक 'मार्किट एरिया' अथवा बाजार का चयन करना हे। वह दोनों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। लेकिन एक समय पर दोनों में से किसी एक को स्वीकार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, उसकी परेशानी का कारण यह है कि उसे एक लक्ष्य (बाजार) को स्वीकार करने पर अन्य लक्ष्यों (बाजार) का परित्याग करना पड़ता है। व्यक्ति की इस तरह की उलझन ही सादृश्य–सादृश्य संघर्ष कहलाती है।

(ii) **सादृ□य–परिवर्तन संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब व्यक्ति के समक्ष लक्ष्य तो एक ही होता है लेकिन वह सकारात्मक व नकारात्मक दोनों तरह की विशेषताओं वाला होता है। ऐसी स्थिति में, व्यक्ति यह निर्णय नहीं ले पाता कि वह सकारात्मक पहलू को

अधिक महत्व दे अथवा नकारात्मक पहलू को। व्यक्ति के मस्तिष्क में चल रहा इस तरह का सोच–विचार सादृश्य–परिवर्तन को जन्म देता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की पदोन्नति की जा रही है। लेकिन यदि वह इसे स्वीकार करता है तो उसे कम्पनी के उस कार्यालय में जाना होगा जो उसके घर से बहुत दूर स्थित है। इस उदाहरण में 'पदोन्नति' सकारात्मक पहलू है जबकि 'घर से दूर' नकारात्मक। व्यक्ति के सामने प्रश्न यह है कि दोनों में से किस पहलू को अधिक महत्व दे। व्यक्ति के मस्तिष्क की यही उलझन सादृश्य – परिवर्तन संघर्ष है।

(iii) **परिवर्तन–परिवर्तन सादृ⃞य** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब व्यक्ति के पास दो नकारात्मक परिणाम देने वाले विकल्प उपलब्ध हों और उसे उनमें से किसी एक का चयन करना हो। ऐसी स्थिति में, दोनों विकल्पों के साथ नकारात्मक परिणाम जुड़े रहते हैं। जब व्यक्ति पहले विकल्प के नकारात्मक परिणाम से बचना चाहता है तो उसे दूसरे विकल्प का नकारात्मक परिणाम सहन करना पड़ता है तथा इसके विपरीत। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की कम्पनी घाटे में जा रही है। कर्मचारी को विकल्प दिया जाता है ि कवह चाहे तो इसी कार्यालय मे कम वेतन पर कार्यरत रहे अथवा कम्पनी के किसी दूर के कार्यालय में बराबर के वेतन पर स्वेच्छा से चला जाए। दोनों ही विकल्पों में कर्मचारी को आर्थिक हानि होगी। व्यक्ति के मस्तिष्क में यह सोच–विचार चल रहा है कि किस नकारात्मक पहलू को अधिक महत्व दे। यही परिवर्तन–परिवर्तन सादृश्य संघर्ष है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित करने के लिए लक्ष्य संघर्ष का अध्ययन महत्वपूर्ण है। जहां तक सादृश्य–सादृश्य संघर्ष का प्रश्न है इस आसानी से हल किया जाता है और इसका संगठन पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत, सादृश्य–परिवर्तन संघर्ष व परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। अतः प्रबंधकों द्वारा इनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और इसके हल करने में व्यक्ति की मदद करनी चाहिए।

(ख) **भूमिका संघर्ष** : संगठन में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक विशेष भूमिका अदा करनी होती है। प्रत्येक भूमिका से लोगों की कुछ अपेक्षाएं जुड़ी होती हैं। अन्य शब्दों में, अन्य लोग उससे कुछ विशेष व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं। जब कोई व्यक्ति एक विशेष भूमिका अदा

करते हुए, अन्य लोगों की अपेक्षाओं के अनुरुप, वयवहार नहीं कर पाता तो भूमिका संघर्ष का जन्म होता है।

भूमिका संघर्ष निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं :

(i) इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष (Inter-Sender Role Conflict)

(ii) इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष (Inter-Sender Role Conflict)

(iii) पर्सन भूमिका संघर्ष (Personal Role Conflict)

(iv) इंटर भूमिका संघर्ष (Inter Role Conflict)

टूल बाक्स – 4
भूमिका संघर्ष
इसका अभिप्राय उस संघर्ष से हे जिसके अंतर्गत व्यक्ति अपनी भूमिका में अन्य लोगों की अपेक्षाओं के अनुरुप व्यवहार नहीं कर पाता।

(i) **इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति को ऐसा काम करने के लिए कहा जाए, जो उसकी पहुंच से बाहर हो, अथवा ऐसी सीमाएं निर्धारित करना जिनके रहते काम को पूरा करना असंभव हो, अथवा काम को पूरा करने के लिए पर्याप्त समय व संसाधन उपलब्ध न हों। उदाहरण के लिए, बिक्री प्रबन्धक द्वारा बिक्रीकर्ता को कहा गया कि बिक्री को दुगना करना हैं और साथ ही यह भी कहा गया कि न तो माल उधार बेचोगे, न ही किसी तरह की छूट दोगे और न ही विज्ञापन पर अधिक खर्चा करोगे। ऐसी स्थिति में बिक्रीकर्ता बिक्री प्रबन्धक की अपेक्षाओं के अनुरुप व्यवहार नहीं कर सकता। यही इंटरा–सेंडर भूमिका संघर्ष है। (नोट– यहां सेंडर का अर्थ अपेक्षा रखने वाले व्यक्ति से है जो संख्या में एक ही होता है)।

(ii) **इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति की भूमिका से संबंधित दो या दो से अधिक लोग उससे विरोधी अपेक्षाऐं रखते हों। उदाहरण के लिए एक पर्यवेक्षक, प्रबन्धकों व श्रमिकों के बीच की कड़ी होता है। वह दोनों की विरोधी अपेक्षाओं में फंसा रहता है। अर्थात वह न तो प्रबन्धकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है और न ही श्रमिकों की। माना एक ओर, प्रबन्धक चाहते हैं कि श्रमिकों से सख्ती से व्यवहार किया जाए जबकि दूसरी ओर, श्रमिक चाहते हैं कि उनके साथ नरमी से व्यवहार किया जाये।

ऐसी स्थिति, इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष को जन्म देती है। (नोट–यहां सेंडर अर्थात अपेक्षा रखने वाले लोग दो या दो से अधिक होते हैं।)

(iii) **पर्सन भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति को ऐसा काम करने के लिए कहा जाए जो उसके स्वयं के मूल्यों के विरुद्ध हो। उदाहरण के लिए, कंपनी का मुख्य कार्यकारी अधिकारी अपने वित्त प्रबन्धक को एक ऐसा काम सौंपता है जिसे किसी सरकारी अधिकारी को रिश्वत देकर करवाया जाना है। रिश्वत देना वित्त प्रबन्धक के मूल्यों के विरुद्ध है। ऐसी स्थिति में उसके मस्तिष्क में एक संघर्ष उत्पन्न होगा जिसे पर्सन भूमिका संघर्ष कहते हैं। यहां संघर्ष की उत्पत्ति का कारण यह है कि वित्त प्रबन्धक न तो अपने बॉस को काम से इंकार कर सकता है और न ही उसके मूल्य उसे वह काम करने की इजाज़त देते हैं।

(iv) **इंटर भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब किसी व्यक्ति को अनेक विरोधी भूमिकाऐं अदा करनी हों। उदाहरण के लिए, महिला किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारी भी है वे एक माँ भी है। यदि कार्यालय में अधिक काम होने पर वह ज्यादा समय लगाती है तो माँ होने के नाते अपने बच्चों को समय नहीं दे पाती। यह स्थिति इंटर भूमिका संघर्ष को जन्म देने वाली है।

- **भूमिका संघर्ष के लिए उत्तरदायी घटक** :

  (i) एक विशेष भूमिका से लोगों की अपेक्षाओं में अस्पष्टता।

  (ii) एक विशेष भूमिका से लोगों की विरोधी अपेक्षाएं।

  (iii) व्यक्ति को अपनी भूमिका की स्पष्ट जानकारी न होना।

  (iv) व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुरुप जॉब न मिलना।

  (v) व्यक्ति का स्वयं का व्यक्तित्व।

  (vi) असंतुष्ट कार्य–विभाजन।

  (vii) पक्षपातपूर्ण अधिकार–वितरण।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भूमिका संघर्ष से तनाव पैदा होता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रबन्धक स्पष्ट व दो–तरफा संदेशवाहन करके भूमिका संघर्ष की स्थिति को टाल सकते हैं।

II अंतर्वैयक्तिक संघर्ष

प्रत्येक संगठन में अनेक लोग काम करते हैं। उन्हें अपनी–अपनी क्रियाएं पूरी करने के लिए एक–दूसरे से व्यवहार करना होता है। आपसी व्यवहार के दौरान विभिन्न मुद्दों को लेकर विचारों में मतभेद होना स्वाभाविक है। जैसे–एक व्यक्ति किसी एक विकल्प के पक्ष में हो सकता है तथा दूसरा किसी दूसरे विकल्प के। इस तरह के मतभेदों के फलस्वरुप होने वाले संघर्ष को ही अंतर्वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। संक्षेप में, दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य होने वाले व्यवहार के फलस्वरुप होने वाले संघर्ष को अंतर्वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। उदाहरण के लिए, गुणवत्ता नियंत्रक की जॉब दूसरों के काम में कमी निकालना है। अपने काम में कमी निकाली जाए, यह बात किसी भी कर्मचारी को शायद ही हजम हो। ऐसी स्थिति में, सभी कर्मचारी गुणवत्ता नियंत्रक के प्रति गलत धारणा बना लेंगे और फलतः संघर्ष का जन्म होगा। ये संघर्ष प्रायः बॉस व अधीनस्थ के मध्य, विभिन्न प्रबन्धकीय स्तरों पर काम करने वाले लोगों के मध्य, व विभिन्न प्रबन्धकों के मध्य हो सकते हैं। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि यह संघर्ष अनेक रुपों में हो सकता है। इसके मुख्य रुप निम्नलिखित हैं।

टूल बाक्स – 5
अंतर्वैयक्तिक संघर्ष इसका अभिप्राय ऐसे संघर्ष से है जो एक संगठन के दो या अधिक लोगों में चयन सम्बन्धी मतभेदों के कारण उत्पन्न होता है।

(i) लम्बवत् संघर्ष

(ii) समतालीय संघर्ष

(iii) विकर्णीय संघर्ष

(i) **लम्बवत् संघर्षः** वरिष्ठ व अधीनस्थ के मध्य होने वाले संघर्ष को लम्बवत् संघर्ष कहते हैं। क्योंकि वरिष्ठ व अधीनस्थ के मध्य लम्बवत् संबंध होता है इसलिए इनके होने वाले संघर्ष को लम्बवत् संघर्ष कहते हैं। यह संघर्ष प्रायः उस समय उत्पन्न होते हैं जब वरिष्ठ अधीनस्थ के व्यवहार को नियंत्रित करना चाहता है और अधीनस्थ उसका विरोध करता है।

(ii) **समतालीय संघर्षः** यह संघर्ष संगठन में एक ही स्तर पर काम करने वाले विभिन्न लोगों के मध्य होता है इसका मुख्य कारण संसाधनों का बंटवारा है। जब मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा विभिन्न विभागों में संसाधनों (जैसे– मानव–शक्ति, धन व अन्य सुविधाएं) का बंटवारा

किया जाता है तो सभी विभागाध्यक्ष चाहते हैं कि सबसे अधिक संसाधन उन्हें प्राप्त हो जाएं। यह स्थिति उनमें संघर्ष पैदा करती है।

(iii) **विकर्णीय संघर्ष:** यह संघर्ष उन लोगों के मध्य होता है जिसका संगठन से कोई प्रत्यक्ष संबंध न हो। जैसे– एक विभाग व दूसरे विभाग के पर्यवेक्षक के मध्य कोई संबंध नहीं होता है। यदि दोनों में किसी बात को लेकर मतभेद हो जाए तो इस स्थिति से उत्पन्न संघर्ष विकर्णीय संघर्ष कहलाएगा। यह संघर्ष प्रायः विभिन्न लोगों के स्वभाव में भिन्नता के कारण पैदा होता है।

- **अंतर्वैयक्तिक संघर्ष के लिए उत्तरदायी घटक**

  (i) संगठन में संसाधनों का सीमित मात्रा में होना।

  (ii) संगठन में विभिन्न लोगों के मूल्यों में अंतर होना।

  (iii) विभिन्न लोगों के पास एक ही मुद्दे से संबंधित भिन्न सूचनाएं होना।

  (iv) उचित संदेशवाहन पद्धति का न होना।

  (v) लोगों का बड़े–छोटे पदों पर आसीन होना।

  (vi) लोगों का अलग धर्म, जाति क्षेत्र व लिंग से संबंधित होना।

  (vii) एक–दूसरे की व्यक्गित भावनाओं को ठेस पहुंचाना।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र..2 भूमिका संघर्ष से आप क्या समझते हैं?
प्र.3 परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष का कोई उदाहरण दीजिए।
प्र.4 अंतवैयक्तिक संघर्ष के क्या उच्चस्तरीय घटक हैं?

III समूहपरक संघर्ष :

प्रत्येक समूह अनेक लोगों की एक इकाई होती है। समूह का प्रत्येक सदस्य एक विशेष पद पर काम करता है। समूह की क्रियाओं को सुचारु रुप से चलाने के लिए समूह के मूल्य व परंपराएं निश्चित किए जाते हैं। जब समूह का कोई सदस्य उसके मूल्य अथवा परंपराओं की अवहेलना करता है तो अवहेलना करने वाले व अन्य सदस्यों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। यह समूहपरक संघर्ष कहलाता है। उदाहरण के लिए, माना कि एक समूह ने निर्धारित किया कि उसके सभी सदस्य पूरी ईमानदारी से काम करेंगे। समूह के एक सदस्य को छोड़कर शेष सभी इसका पालन करते हैं। ऐसी

स्थिति में, उस एक सदस्य का समूह के अन्य सदस्यों के साथ मतभेद पैदा हो जाएगा जो अंत में समूहपरक संघर्ष का रुप धारण कर लेगा।

कई बार समूहपरक संघर्ष तथा अंतर्वैयक्तिक संघर्ष एक जैसे लगते हैं। यह बिलकुल ठीक है क्योंकि दोनों ही व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के साथ संघर्ष होता है। लेकिन दोनों में भिन्नता यह है कि समूहपरक संघर्षों मे ंदोनों पक्षकारों का एक विशेष समूह का सदस्य होना जरुरी है। जबकि अंतर्वैयक्तिक संघर्ष किन्ही भी दो लोगों के मध्य हो सकता है। अर्थात अंतर्वैयक्तिक संघर्ष का एक विशेष समूह का सदस्य होना जरुरी नहीं है।

कई बार देखा जाता है कि समूह के सभी सदस्य किसी विशेष मुद्दे पर दो भागों में बंट जाते है। इस प्रकार अब एक समूह के स्थान पर दो समूह बन जाते है और संघर्ष व्यक्तियों के स्थान पर दो समूहों के मध्य होने लगता है। अब इसे समूहपरक संघर्ष नहीं बलिक 'समूहों के बीच संघर्ष' कहा जाएगा।

(IV) अंतर्समूह संघर्ष

प्रत्येक संगठन में अनेक समूह होते हैं। संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सभी समूह एक –दूसरे के संपर्क में आते हैं। संपर्क के दौरान विभिन्न मुद्दों पर मतभेद होना संभव है। दो समूहों में किसी मुद्दे पर हुए मतभेद के फलस्वरुप उत्पन्न संघर्ष को अंतर्समूह संघर्ष कहते हैं। उदाहरण के लिए, विपणन व उत्पादन टीम के मध्य संघर्ष अंतर्समूह संघर्ष कहलाएगा।

- **अंतर्समूह संघर्ष के लिए उत्तरादायी घटक**

  (i) विभिन्न समूहों के लक्ष्यों में भिन्नता।

  (ii) विभिन्न समूहों में संसाधनों के बंटवारे में पक्षपात।

  (iii) जॉब से संबंधित उत्तरदेयता की जानकारी न होना।

  (iv) पारितोषिक पद्धति में अविश्वास का संबंध होना।

  (v) विभिन्न मुद्दों की क्रियाओं का एक दूसरे पर निर्भर होना।

V संगठनात्मक संघर्ष

संगठनात्मक संघर्ष का अभिप्राय ऐसे संघर्षों से है जो संगठन स्तर पर होता है। यह संघर्ष निम्न दो प्रकार का होता हैः

(क) संगठनात्मक संघर्ष

(ख) अंतर्सगंठन संघर्ष

(क) **संगठनात्मक संघर्ष** : एक संगठन के अंदर होने वाले संघर्ष संगठनात्मक संघर्ष की श्रेणी में आते हैं। ये व्यक्तिगत संघर्ष, अंतर्वैयक्तिक संघर्ष व अंतर्समूह संघर्ष हो सकते हैं। यहां इन्हीं संघर्षो को संगठन ढांचे के संदर्भ में देखा जाता है। संगठन ढांचे पर आधारित संघर्ष निम्नलिखित चार प्रकार के हो सकते हैं:

(i) कार्यात्मक संघर्ष

(ii) पदनाक्रम संघर्ष

(iii) औपचारिक–अनौपचारिक संघर्षं

(iv) रेखा–स्टॉफ संघर्ष

(i) **कार्यात्मक संघर्षः** प्रत्येक संगठन में अनेक कार्य किए जाते हैं, जैसे – वित्त, क्रय, विक्रय, उत्पादन, सेविवर्गीय, आदि। इन कार्यों के आधार पर ही विभाग बनाए जाते हैं। इन विभागों के मध्य, होने वाले संघर्षों को कार्यात्मक संघर्ष कहते हैं।

(ii) **पदानुक्रम संघर्षः** ऐसे संघर्ष संगठन के विभिन्न स्तरों के मध्य पाए जाते हैं। इनके मुख्य उदाहरण इस प्रकार हैं : संचालक मंडल व मुख्य कार्यकारी अधिकारी के मध्य संघर्ष, मुख्य कार्यकारी अधिकारी व विभागाध्यक्षों के मध्य संघर्ष, विभागाध्यक्ष व पर्यवेक्षकों के मध्य संघर्ष।

(iii) **औपचारिक–अनौपचारिक संघर्ष** : प्रत्येक संगठन में दो प्रकार के समूह पाए जाते हैं– औपचारिक व अनौपचारिक। इन समूहों में लक्ष्यों, मूल्यों, व परंपराओं को लेकर संघर्ष चलते रहते हैं ये औपचारिक–अनौपचारिक संघर्ष कहलाते हैं।

(iv) **रेखा–स्टॉफ संघर्षः** 'रेखा–स्टॉफ' संगठन संरचना का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। इसके अंतर्गत रेखा अधिकारियों के साथ स्टॉफ सदस्य (अर्थात विशेषज्ञ) भी काम करते हैं। इनमें प्रायः प्रतिष्ठा, अधिकार, कार्य अस्पष्टता, उत्तरदेयता अस्पष्टता, आदि को लेकर संघर्ष होते हैं।

(ख) **अंतर्सगठन संघर्षः** समाज में अनेक संगठन काम करते हैं। संगठन अनेक कारणों से एक – दूसरे के संपर्क में आते रहते हैं। जैसे – दो कम्पनियों जिनके उत्पाद एक जैसे हैं, लगातार एक–दूसरे पर नज़र रखेंगी। कभी वे एक दूसरे से बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे, कभी एक दूसरे से बेहतर तकनीक का प्रयोग करेंगे तथा कभी वे एक–दूसरे के अच्छे कर्मचारियों को अपनी ओर आकर्षित करेंगे। उनके मध्य चल रही इस तरह की होड़ कुछ और नही बल्कि अंतर्सगठन संघर्ष है। साधारण शब्दों में इस तरह के संघर्ष को प्रतियोगिता कहा जाता है। इससे वे समाज को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं: जैसे –नये–नये उत्पादों का बाजार में

आना, अच्छी व सस्ती वस्तुएं उपलब्ध होना, मानव–शक्ति के बाजार मूल्य में वृद्धि होना, लोगों के जीवन–स्तर में सुधार होना, आदि।

अंतर्समूह संघर्ष प्रायः एक जैसा उद्देश्य रखने वाले दो संगठनों के मध्य उत्पन्न होते हैं लेकिन यह संघर्ष एक संगठन व सरकारी एजेंसी के मध्य भी उत्पन्न हो सकते हैं। अंतर्समूह संघर्ष चाहे किसी भी तरह का हो, उसे सामाजिक परंपराओं व सरकारी अधिनियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र..5 रिक्त स्थान भरो :
(i) 'रेखा स्टॉफ' ....संघर्ष को जन्म दे सकता है।
(ii) एक संगठन में दो से अधिक व्यक्तियों में मतभेद को ....संघर्ष कहते हैं

13.4 संघर्श समाधान की विधियां

जैसा कि स्पष्ट है कि प्रत्येक संगठन में संघर्षों का होना स्वाभाविक है। यह भी निश्चित है कि यदि इनको नियंत्रित न किया जाए तो इनके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं। अतः समय रहते इनका समाधान खोज लेने में ही भलाई है। संघर्ष समाधान की मुख्य विधियां निम्नलिखित हैंः–

(i) **टालनाः** इस विधि के अंतर्गत, प्रबन्धक संघर्ष की ओर से आंख बंद कर लेता है। उसकी यह मान्यता रहती है कि यदि संघर्ष को ज्यादा महत्व न दिया जाए तो वह स्वयं ही समाप्त हो जाता है। उसकी ऐसी सोच उस समय होती है जबकि कर्मचारी मुद्दों को लेकर उलझे रहते हैं और धर्म, जाति, राजनीति, आदि से प्रेरित होते हैं। ध्यान रहे कि यह विधि संगठनात्मक संबंधों के लिए उपयोगी नहीं है।

(ii) **समूहों का पुनर्गठन** : इस विधि के अंतर्गत, प्रबन्धक समूहों में सदस्यों की अदली–बदली करता है। उसकी यह मान्यता रहती है कि एक समूह में एक जैसी विशेषताओं वाले सदस्य होने चाहिए। समान हित, उद्देश्य एवं आदतों के कारण संबंधों में कमी आती है। उनका सभी समस्याओं के प्रति दृष्टिकोंण रहता है। इस विधि द्वारा समूहों के मध्य होने वाले संबंधों को आसानी से सुलझाया जा सकता है।

(iii) **समूहों की आपसी–निर्भरता को कम करना**: इस विधि के अंतर्गत, दो परस्पर निर्भर समूहों को स्वतन्त्रता प्रदान करके संघर्ष समाप्ति का प्रयास किया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि जब दो समूह एक–दूसरे पर निर्भर हों तो उनमें संघर्ष होने लगते हैं। प्रबंधक को ऐसा प्रयास करना चाहिए कि उनकी निर्भरता कम हो जाए, जिससे उनमें आपसी व्यवहार कम होंगे। परिणामतः संघर्ष भी कम हो जाएंगे।

(iv) **मतभेदों को दबाना**: इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकारों पर एक विशेष समाधान स्वीकार करने का दबाव डाला जाता है। इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब अतिशीघ्र कोई निर्णय लेना हो और लोग एकमत न हो रहे हों। यह विधि अल्पकाल में तो सही परिणाम देती है लेकिन दीर्घकालीन में इसके विपरीत परिणाम हो सकते हैं। जिन लोगों को आज दबाया जाता है उनमें बदले की भावना जन्म ले लेती है, और वे अपना गुस्सा निकालने के मौके की तलाश में रहते हैं।

(v) **स्थानान्तरण**: इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष समाप्त करने के लिए कर्मचारियों को एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्त्रित कर दिया जाता है। इससे संघर्ष के पक्षकारों में दूरी बढ़ जाती है। फलस्वरुप, पुराने सहकर्मियों में द्वेष समाप्त हो जाता है।

(vi) **भान्त करना**: इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकारों के समक्ष सामूहिक हित के मुद्दे को प्रकाश में लाया जाता है और मतभेद के मुद्दों को दबाने का प्रयास किया जाता है। ऐसा करने से संघर्ष के पक्षकारों को लगने लगता है कि उनमें इतना मतभेद नहीं है जितना वे समझ रहे हैं। परिणामतः संघर्ष की तीव्रता में ढील आ जाती है।

(vii) **मूल्यवान लक्ष्यों को उभारना**: मूल्यवान लक्ष्य का अभिप्रायः ऐसे लक्ष्य से है जो सर्वोत्तम हो और जिसे प्राप्त करने के लिए सभी लोगों का सहयोग वांछित हो। कोई एक व्यक्ति अथवा समूह इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे–संगठन के अस्तित्व को बनाए रखना एक मूल्यवान लक्ष्य है। इस विधि के अंतर्गत, जब लोगों में संघर्ष होता है तो उन्हें मूल्य लक्ष्य याद करवाया जाता है। इससे उन्हें लगता है कि यदि वे संघर्ष करेंगे तो मूल्यवान लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। संगठन का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। इस डर से वे संघर्ष में ढील दे देते हैं और सहयोग करने लगते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जब संगठन के अस्तित्व का खतरा नज़र आने लगता है तो हड़ताल, तालाबंदी, आदि को वापिस ले लिया

जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसी स्थिति में कर्मचारी कम मजदूरों पर अधिक घंटों तक तथा अधिक कुशलता से काम करने को भी तैयार हो जाते हैं।

(viii) **समझौता** : इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकार या तो स्वयं समझौता कर लेते हैं अथवा उनका बाहरी हस्तक्षेप की मदद से समझौता करवा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, समझौता करवाने के लिए पंचनिर्णय व सौदेबाजी विधियों को भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस विधि में संघर्ष के पक्षकारों को कुछ न कुछ अवश्य त्यागना पड़ता है। इसमें बिना हार–जीत के ही संघर्ष का समाधान निकाला जाता है। प्रबंध व श्रमिकों के मध्य बोनस आदि को लेकर होने वाले संघर्ष प्रायः इसी विधि से हल किए जाते हैं।

(ix) **अंतर्संबंधों का पुनर्गठनः** इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकारों के मध्य होने वाले प्रत्यक्ष व्यवहारों में कमी लाई जाती है। उनके बीच में व्यवहार के लिए एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है। जब भी दोनों पक्षकारों को आपस में कोई व्यवहार करना है तो वे मघ्यस्थ के माध्यम से करते हैं। जब अनेक प्रयासों के बाद भी समाधान न हो तो कुछ समय के लिए इस विधि का प्रयोग लाभकारी रहता है। मध्यस्थ ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो सभी के लिए आदरणीय हो।

(x) **मतभेदों में तेजी लानाः** इस विधि के अंतर्गत, जब प्रबंधक देखता है कि संघर्ष के पक्षकार मानने को तैयार नहीं है तो वो उन्हें ऐसा मौक्का उपलब्ध करवाता है जहां वे खुलकर एक –दूसरे के सामने आ जाएं। संघर्ष के पक्षकार जीत प्राप्त करने के लिए अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। वाद–विवाद के दौरान झगड़े के कारण व समाधान के उपाय दोनों सामने आ जाते हैं। प्रबंधक को इस विधि का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि यदि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाए तो संघर्ष बढ़ भी सकता है।

(xi) **समस्या समाधानः** इस विधि के अंतर्गत, प्रबंधक मतभेदों के फलस्वरुप उत्पन्न हुई ऊर्जा का प्रयोग विनाशकारी क्रियाओं के स्थान पर रचनात्मक क्रियाओं के लिए करने का प्रयास करता है। संघर्ष के कारणों को गहराई से समझने का प्रयास किया जाता है। संघर्ष के सभी पक्षकारों का पूरा आदर किया जाता है। बातचीत का उचित रास्ता तैयार करके सभी पक्षकारों को संतुष्ट करना इस विधि की मुख्य विशेषता है। इस विधि को लागू करने के लिए बाहरी विशेषज्ञ की मदद ली जाती है। वह सभी पक्षकारों को अपने विश्वास में लेकर

बातचीत के लिए आधार तैयार करता है। बातचीत के दौरान मुख्य समस्या की जानकारी प्राप्त करके उसका हल निकालने में उनकी मदद करता है।

(xii) **संगठन का पुनर्गठनः** इस विधि के अंतर्गत संगठन ढांचे के एक बिंदु में सुधार किया जाता है जो संघर्ष का मूल कारण हो। संगठन ढांचे में अनेक बिंदु होते हैं जहां संघर्ष की संभावना हो सकती है, जैसे– कार्य–विभाजन, भारर्पण, प्रबंध के स्तर, आदि। इनमें से जिस बिंदु पर संघर्ष हो, उसी में उचित परिवर्तन करके संघर्ष को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

(xiii) **संसाधनों में वृद्धिः** इस विधि के अंतर्गत, सीमित संसाधनों का उचित प्रबंध करके संघर्ष का समाधान किया जाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि सीमित संसाधनों की प्राप्ति के लिए विभिन्न विभाग संघर्ष की चपेट में आ जाते हैं। ऐसी दशा में संसाघनों का विस्तार करके संघर्ष को दूर किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.6 क्या स्थानान्तरण से संघर्ष में कमी लाई जा सकती है?
प्र.7 मूल्यवान लक्ष्यों से संघर्ष कैसे कम हो सकता है?
प्र.8 संघर्ष टालना किन परिस्थितियों में सफल हैं?
प्र.9 'मतभेदों में तेजी लाना' क्या इससे संघर्ष खत्म हो सकता है?

13.5 कार्य दबाव का अर्थ

आज के प्रतियोगितावादी व तेज गति से चलते युग में प्रत्येक व्यक्ति दबाव में है। दबाव का अर्थ उस शारीरिक तनाव से है जो एक व्यक्ति वातावरणीय घटकों के संपर्क में आने के फलस्वरुप महसूस करता है। हम जिस वातावरण में रहते हैं उसमें अनेक ऐसे घटक हैं जो हमें प्रभावित करते हैं। जैसे –परीक्षा नज़दीक आती देख विद्यार्थी दबाव में आ जाते हैं, क्योंकि अब उन्हें अधिक पढ़ना होगा। इसी प्रकार तकनीकी परिवर्तनों से कर्मचारियों पर कुछ नया सीखने का दबाव आ जाता है। एक अन्य उदाहरण के अनुसार, जब–जब हमारी आवश्यकताओं हमारे पास उपलब्ध संसाधनों से अधिक होती है तब–तब हम दबाव महसूस करते हैं।

दबाव के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जरुरी नही कि यह हानिकारक ही हो। इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव होते हैं। उदाहरण के लिए, परीक्षा के समय व़िद्यार्थी

दबाव में आने के कारण ही अधिक मेहनत करते हैं और अच्छे अंकों से पास होते हैं। यह दबाव का सकारात्मक प्रभाव है। दूसरी ओर, यदि कम्पनी की ट्रांस्फर नीति के अंतर्गत किसी कर्मचारी को घर से दूर भेज दिया जाता है तो वह दबाव में आ जाएगा और इससे उसे भारी मानसिक पीड़ा होगी। यह दबाव का नकारात्मक प्रभाव है।

टूल बाक्स – 6
दबाव शारीरिक तनाव जो एक व्यक्ति वातावरणीय घटकों के संपर्क में आने के फलस्वरुप महसूस करता है।

आज अनेक शोधकर्ताओं से सिद्ध हो चुका है कि दबाव की स्थिति में कर्मचारियों की कार्यक्षमता में भारी कमी आ जाती है। यही कारण है कि कोई भी कंपनी कर्मचारियों को दबाव की स्थिति में सहन नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में कंपनी की लागतें बढ़ती हैं। अतः हर हाल में कंपनी कर्मचारियों को दबाव की स्थिति से बाहर निकालना चाहती है। और ऐसा दबाव प्रबंध से संभव है।

13.5.1 दबाव की वि□शताएं

दबाव की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) **यह वातावरणीय घटकों का परिणाम है:** दबाव वातावरणीय घटकों का परिणाम होता है। वातावरण का अर्थ उन घटकों के योग से है जो हमारे चारों ओर होते हैं और हमें प्रभावित करते हैं। जैसे –जॉब, आर्थिक स्थिति, तकनीकी परिवर्तन, सामाजिक सहायता, संगठनात्मक नीतियां, आदि। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण पद पर काम कर रहा है तो हमेशा दबाव में रहेगा। इसी प्रकार एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो वह भी हमेशा दबाव में रहेगा।

(ii) **यह सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता है:** दबाव का प्रभाव सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। सकरारत्मक प्रभाव के रुप में दबाव हमें कुछ करने के लिए मजबूर करता हैं इसके फलस्वरुप हमारी कार्यकुशलता बढ़ जाती है और हम

तरक्की करते हैं। दूसरी ओर, इसके नकारात्मक प्रभाव के रुप में, इसके फलस्वरुप उदासी, गुस्सा, अविश्वास आदि की संभावना पनपती है।

(iii) **यह अस्थाई अथवा दीर्घकालीन हो सकता है** : दबाव की प्रकृति अस्थाई अथवा दीर्घकालीन होने की है। जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियां आती हैं जबकि दबाव से थोड़े ही समय में छुटकारा मिल जाता है। इसके विपरीत, कुछ परिस्थितियों में यह लम्बे समय तक चलता है और अनेक बीमारियां पैदा करता है।

(iv) **यह संगठनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण लागत के रुप में होता है**ः दबाव और कार्यकुशलता में विपरीत संबंध है। अर्थात यदि कर्मचारी दबाव में होंगे तो उनकी कार्यकुशलता कम होगी और इसके विपरीत भी। अतः दबाव से कार्यकुशलता कम होती है, फलस्वरुप लागतें बढ़ती हैं। दबाव किसी संगठन की लागतों का एक मुख्य अंग होता है। जो संगठन अपनी लागतों को नियंत्रित करना चाहते है, उसे अन्य लागतों (जैसे– माल लागत, श्रम लागत, आदि) से पहले दबाव लागत पर नियंत्रण करना होगा। इसलिए यह कहना बिल्कुल ठीक है कि दबाव संगठनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण लागत के रुप में होता है।

(v) **इसके फलस्वरुप अनेक तरह के विचलन आ सकते हैं**ः दबाव के कारण एक व्यक्ति में अनेक विचलन अथवा अंतर देखे जा सकते हैं जैसे– शारीरिक, मनावैज्ञीनिक, तथा व्यवहारात्मक। शारीरिक विचलन के अंतर्गत उच्च्य रक्तचाप, दिल की बिमारियों आदि को सम्मिलित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक विचलन में मुख्यतः डिप्रेशन आता है। इसी प्रकार व्यवहारात्मक विचलन में अनुपस्थिति व उत्तेजना को सम्मिलित किया जाता है।

(vi) **यह व्यक्ति वि�श से संबंधित है**ः दबाव का प्रत्येक व्यक्ति पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। कुछ व्यक्तियों की सहन–शक्ति अधिक होती है और वे दबाव का डटकर मुकाबला करने लगते हैं। इसके विपरीत, कुछ लोग उतने ही दबाव से घबरा जाते हैं। उनमें थोड़ी–सी भी सहन–शक्ति नहीं होती। वे दैनिक समस्याओं से संबंधित दबाव को देखकर ही कांपने लगते हैं। अतः एक जैसा दबाव अलग–अलग लोगों को निम्न प्रकार से प्रभावित करता है।

13.5.2 दबाव प्रबंध का अर्थ

दबाव प्रबंध का अभिप्रायः उस प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से दबाव को नियंत्रित किया जा सकता है। ध्यान रहे कि दबाव प्रबंध में दबाव को बिल्कुल समाप्त करने की बात नहीं कही गई है बल्कि इसे नियंत्रित करने की बात कही गई है। इसका कारण यह है कि एक सीमा तक दबाव से कार्यकुशलता बढ़ती है। ऐसा कहा जाता है कि ''बिना दबाव के कोई जीवन नहीं है।''

टूल बाक्स – 7
दबाव प्रबंध इसका अभिप्राय उस पद्धति से है जो दबाव पर नियंत्रण करती है और उस हानि से छुटकारा दिलाती है जो इसके कारण हो सकती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 क्या संगठन में दबाव कार्य की वजह से ही होता है? प्र.11 क्या दबाव का समाधान है? प्र.12 दबाव से संगठन को क्या हानि हो सकती है?

13.5.3 कार्यकु□लता के स्तर एंव दबाव में संबंधं

कार्यकुशलता के स्तर एवं दबाव में सबंध के बारे में प्रबंध विशेषज्ञों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि इन दोनों में गहरा संबंध है जबकि कुछ इनके संबंध को नकारते हैं।

(1) **न्यूनतम दबाव** : जब दबाव शून्य अथवा न्यूनतम होता है तो व्यक्ति में एनर्जी की कमी होती है। वह उससे काम नहीं करता। परिणामतः कार्यकुशलता भी न्यूनतम स्तर पर आ जाती है।

(2) **मध्यम दबावः** जैसे–जैसे दबाव न्यूनतम स्तर से मध्यम स्तर की ओर चलता है, वैसे–वैसे कार्यकुशलता का स्तर भी ऊपर की ओर चलने लगता है। जब दबाव मध्यम स्तर पर होता है तो कार्यकुशलता शिखर पर होती है। दबाव के इस स्तर पर व्यक्ति में पूरी एनर्जी आ

जाती है। वह दिल से काम करने लगता है। उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग होने लगता है। परिणामतः कार्यकुशलता भी अधिकतम हो जाती है।

(3) **अधिकतम दबाव** : जैसे–जैसे दबाव मध्यम स्तर से अधिकतम स्तर की ओर चलता है वैसे – वैसे कार्यकुशलता का स्तर गिरने लगता है। एक ऐसी स्थिति आती है कि दबाव का स्तर अधिकतम होता है और कार्यकुशलता का न्यूनतम। इसका कारण यह है कि व्यक्ति एक सीमा से अधिक दबाव सहन नहीं कर सकता। अधिक दबाव से उसकी एनर्जी की कमी होने लगती है। उसका काम में मन नहीं लगता। वह निर्णय लेने में स्वयं को असहाय महसूस करता है। परिणामतः उसकी कार्यकुशलता घटते–घटते शून्य तक आ जाती है। इस स्थिति में वह काम से अनुपस्थित रहने लगता है। यहां तक कि वह जॉब छोड़ने को भी तैयार हो जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कार्यकुशलता को बनाए रखने के लिए कुछ दबाव का होना जरुरी है। लेकिन दबाव का होना एक सीमा तक ही उपयोगी है। इस सीमा के बाद इससे हानि होने लगती है।

13.6 दबाव के प्रकार

दबाव मुख्यतः दो प्रकार का होता हैः

(1) **यूस्ट्रेस** : यह एक ऐसा दबाव है जिसका होना जरुरी है। इसके सकारात्मक प्रभाव होते हैं। जैसे– परीक्षा के समय का दबाव। यदि यह दबाव विद्यार्थियों पर न हो तो वे ठीक से पढ़ाई नहीं करेंगे। यह दबाव एनर्जी पैदा करता है। परिणामतः कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

(2) **डिस्ट्रेसः** यह एक ऐसा दबाव है जो बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। इसके नकारात्मक परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिए, नौकरी की असुरक्षा। इससे तनाव पैदा होता है। यदि इसे समय पर नियंत्रित न किया जाए तो यह शत्रु का रुप धारण कर लेता है। इससे उच्च रक्तचाप व दिल की बिमारी जैसे भयंकर रोग पैदा होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.13 यूस्ट्रेस से क्या अभिप्राय है? प्र.14 क्या डिस्ट्रेस हानिकारक है?

प्र.15 कितना दबाव उचित है?

13.7 दबाव के कारण

अब प्रश्न यह उठता है कि कोई व्यक्ति दबाव में क्यों आता है? दबाव के लिए उत्तरदायी कारणों को स्ट्रेसरस कहते है। इनको निम्नलिखित चार श्रेणियों में विभक्त किया जाता है:

(i) संगठनात्मक स्ट्रेसरस

(ii) व्यक्तिगत स्ट्रेसरस

(iii) समूह स्ट्रेसरस

(iv) वातावरणीय स्ट्रेसरस

(i) **संगठनात्मक स्ट्रेसरस:** एक व्यक्ति पर दबाव डालने वाले संगठन से संबंधित मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(क) **संगठनात्मक नीतियां:** कम्पनी द्वारा निर्णयों में कर्मचारियों का मार्ग–दर्शन करने के लिए नीतियां निर्धारित की जाती है। कोई विशेष नीति किसी विशेष कर्मचारी की अपेक्षा के विपरीत हो सकती है। यदि ऐसा है तो नीति उस कर्मचारी पर दबाव बढ़ाएगी। उदाहरण के लिए, कम्पनी द्वारा यह सेविवर्गीय नीति बनाई गई कि कर्मचारियों की तरक्की का आधार उसकी आयु होगा। माना, मि. 'ए' का मानना है कि तरक्की का आधार कार्यकुशलता होना चाहिए न कि आयु। क्योंकि वह बहुत कार्यकुशल कर्मचारी है। उसकी अपेक्षा के विपरीत बनी हुई नीति उस पर दबाव बनाएगी। इसी प्रकार ऐसी स्थानान्तरण नीति जिसमें जल्दी–जल्दी स्थानान्तरण की बात कही गई हो, भी कर्मचारियों पर दबाव डालती है।

(ख) **संगठनात्मक प्रक्रियाएं:** प्रत्येक संगठन में अनेक प्रक्रियाएं काम करती हैं। जैसे – संदेशवाहन प्रक्रिया, निर्णयन प्रक्रिया, नियुक्तिकरण प्रक्रिया, नियंत्रण प्रक्रिया, आदि। यदि ये प्रक्रियाएं अस्पष्ट, लम्बी व कठिन हैं तो कर्मचारियों पर दबाव बढेगा। उदाहरण के लिए, यदि प्रत्येक संदेशवाहन लिखित में किया जाना हो तो कोई भी कर्मचारी पसंद नहीं करेगा और वे दबाव में रहेंगे। इसी प्रकार यदि सूचनाएं एकत्रित

करने की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं है तो निर्णयन में कठिनाई आएगी और कर्मचारी दबाव में रहेंगे। परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में कमी आएगी।

(ग) **संगठनात्मक ढांचा**: संगठन ढांचा एक संगठन में काम करने वाले लोगों को विभिन्न स्तरों (जैसे– उच्च स्तर, मध्यम स्तर, निम्न स्तर, आदि) में विभक्त करता है। इसके अंतर्गत काम का बंटवारा किया जाता है। पूरे संगठन को सुचारु रुप से चलाने के लिए नियम बनाए जाते है। अधिकार एवं उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया जाता है।

यदि संगठन ढांचे में प्रबंध के स्तर आवश्यकता से अधिक अथवा कम बनाए गए हैं तो इससे कर्मचारी परेशान रहते हैं और उन पर दबाव बढ़ता है। काम के बंटवारे में भेदभाव भी कर्मचारियों पर दबाव का कारण बन सकता है। बहुत अधिक अथवा बहुत कम काम सौंपना, दोनों ही स्थितियां कर्मचारी पर दबाव बढ़ाती हैं। यदि संगठन को चलाने के लिए कठोर नियम बनाए गए हैं तब कर्मचारियों पर दबाव बढ़ता है। इसी प्रकार अधिकार एवं उत्तरदायित्व में असमानता से भी कर्मचारी दबाव में आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त संगठन ढांचे से संबंधित और भी अनेक कारण हो सकते हैं जो कर्मचारियों पर दबाव बढ़ाते हैं।

(ii) **व्यक्तिगत स्ट्रेसरस**: यह दबाव का ऐसा कारण है जिसका संबंध व्यक्ति विशेष से होता है। इसमें मुख्यतः निम्न को सम्मिलित किया जाता है:

(क) **जॉब** : कोई भी जॉब ऐसी नहीं है जो दबावरहित हो। हां, ऐसा हो सकता है कि एक जॉब में दबाव अधिक हो और दूसरी में कम। प्रायः देखा जाता है कि जॉब पूरी तरह से हमारे नियंत्रण में होती है वहां दबाव कम होता है और इसके विपरीत। उदाहरण के लिए, एक सर्जन व एक पुलिस अधिकारी की जॉब अधिक दबाव वाली होती है।

(ख) **अनिश्चितता**: क्योंकि भविष्य अनिश्चित है इसलिए हर व्यक्ति का जीवन अनिश्चितताओं से भरा रहता है। फिर भी कुछ लोग जो आर्थिक व अन्य दृष्टि से मजबूत होते हैं भावी अनिश्चितताओं की परवाह नही करते। ये लोग किसी भी विपरीत परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने की क्षमता रखते हैं। परिणामतः दबाव रहित रहते हैं इसके विपरीत, जो लोग भावी अनिश्चितताओं से डरते हैं वे शीघ ही दबाव में आ जाते हैं। ये लोग कभी नौकरी की असुरक्षा को लेकर दबाव में आ जाते हैं तो कभी किसी अन्य कारण से। इन्हें जल्दी–जल्दी हो रहे तकनीकी परिवर्तन भी

सताते रहते हैं क्योंकि इन परिवर्तनों का सामना करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है।

(ग) **जीवन–परिवर्तनः** प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में प्रायः दो तरह के परिवर्तन होते हैं। प्रथम, वे जो धीमी गति से होते हैं (जैसे– आयु का बढ़ना) तथा द्वितीय, वे जो तेज गति से अथवा अचानक होते है। (जैसे– शादी होना, किसी निकटस्थ की मृत्यु होना) जो परिवर्तन धीमी गति से होते हैं, वे कम दबाव डालते है। इसके विपरीत, तेजी से अथवा अचानक होने वाले परिवर्तन अधिक दबाव डालते हैं।

(घ) **व्यक्तिगत वि◻शताएंः** प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण होते हैं। ये गुण ही इस बात का निर्धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति कितनी शीघ्रता से अथवा कितनी देरी से दबाव में आता है।

(iii) **वातावरणीय स्ट्रेसरस**

जिस वातावरण में कर्मचारी काम करते हैं यदि वहां की दशाएं ठीक नहीं हैं तो कर्मचारियों पर दबाव बढ़ता है। जैसे– कम रोशनी, अधिक शोर, धूल का होना, असुविधाजनक तापमान, आदि ऐसे वातावरणीय घटक हैं जो कर्मचारियों पर दबाव बढ़ाने में अहम् भूमिका अदा करते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विपरीत काम की दशाएं कार्यकुशलता में कमी लाती है और दबाव बढ़ता है।

13.8 कार्य दबाव का प्रबंध

अब प्रश्न यह उठता है कि दबाव को समाप्त अथवा कैसे नियंत्रित किया जाए? इसका उत्तर है–दबाव को 'दबाव प्रबंध' द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। पुनः प्रश्न यह उठता है कि दबाव प्रबंध कैसे किया जाए? इसका उत्तर है– दबाव प्रबंध निम्नलिखित पद्धतियों से संभव है, ये हैं :

(i) व्यक्ति से संबंधित पद्धतियां

(ii) संगठन से संबंधित पद्धतियां

अब हम दबाव प्रबंध की इन दोनों तरह की पद्धतियों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

(i) **व्यक्ति से संबंधित पद्धतियां**

सर्वप्रथम हमें यह समझ लेना चाहिए कि दबाव से छुटकारा पाना संभव है। यदि एक व्यक्ति चाहे तो दबावपूर्ण परिस्थिति को टाल सकता है, उसे परिवर्तित कर सकता है अथवा उसका सामना

करने की हिम्मत जुटा सकता है। व्यक्तिगत स्तर पर दबाव से छुटकारा पाने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं:

(क) **ध्यान:** ध्यान, दबाव से बाहर आने का महत्वपूर्ण माध्यम है। ध्यान का अभिप्राय मस्तिष्क को, व्याकुल करने वाले विचारों से दूर, एक ओर केन्द्रित करने से है। ध्यान के लिए आंखे बन्द करके शान्त स्थान पर बैठा जाता है। एक मंत्र का बार–बार उच्चारण किया जाता है। ऐसा करने से मस्तिष्क में आने वाले बेकार के विचार दूर हो जाते हैं और शारीरिक व मानसिक शांति प्राप्त होती है। जब शारीरिक व मानसिक शांति प्राप्त होती है तो दबाव दूर हो जाता है।

(ख) **योग:** पिछले कुछ वर्षों से योग का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। यह दबाव निवारण की एक अचूक दवा है। योग के अंतर्गत कुछ आसन किए जाते हैं। इनको करने से हमारे हड्डियों के ढांचे और मांसपेशियों में लचीलापन आता है। फलस्वरुप, हमारा नाड़ी तंत्र उत्तेजित होने लगता है तथा पूरे शरीर में रक्त की संतुलित पूर्ती होने लगती है। इस प्रकार हमें शारीरिक व मानसिक शांति प्राप्त होती है। और ऐसी स्थिति में दबाव को दूर होना निश्चित है।

(ग) **व्यायाम:** ध्यान व योग के अतिरिक्त हल्के शारीरिक व्यायामों से भी दबाव कम होता है। हल्के व्यायामों के अंतर्गत सैर, धीरे–धीरे चलना, कूदना, साइकिल चलाना, तैरना, आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(घ) **संतुलित आहार:** संतुलित आहार हमें शरीरिक व मानसिक शक्ति प्रदान करता है। फलस्वरुप हम दबाव का अधिक मजबूती से सामना कर सकते हैं। हमें ऐसा आहार लेना चाहिए जिसमें फल, सब्जी, दालें, रोटी, दूध आदि सभी उचित मात्रा में हों। जरुरत से अधिक व जरुरत के कम आहार लेना, दोनों ही हानिकारक है। अतः हम संतुलित आहार लेकर दबाव से बच सकते हैं।

(ङ) **समय प्रबंध:** प्रायः हम देखते हैं कि वही लोग दबाव में रहते हें जो समय पर अपना काम पूरा नहीं करते। इसका कारण है 'समय प्रबंध' न करना। अतः समय प्रबंध करके हम दबाव से बच सकते हैं। समय प्रबंध के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- अगले दिन क्या करना है, इसका निर्धारण पूर्व संध्या को कर लेना चाहिए।

- प्रतिदिन की प्राथमिकताओं का निर्धारण कर लेना चाहिए।
- एक समय पर एक ही काम करना चाहिए।
- काम मिलते ही, शीघ्र खत्म करने की कोशिश करनी चाहिए।

(च) **पर्याप्त निंद्राः** एक व्यक्ति के लिए जितना जरुरी खाना–पीना व अन्य काम हैं उतना ही जरुरी नींद भी है। पर्याप्त नींद से व्यक्ति तरोताजा रहता है और वह दबाव महसूस नहीं करता।

(छ) **सीमाओं का ध्यान रखनाः** कुछ लोग इसलिए भी दबाव में रहते हैं कि उनसे सभी लोग खुश नहीं हैं। हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह किसी का बुरा और अपनी ओर से जितना बढ़िया कर सकता है करे। फिर भी कोई नाराज रहे तो परवाह नहीं करनी चाहिए। सभी को खुश न कर पाना हर व्यक्ति की सीमा होती है। अतः यह बात हमारी समझ में आ जाए तो हम दबाव को कम कर सकते हैं।

(ज) **सामाजिक मददः** प्रायः देखा जाता है कि कोई व्यक्ति हमेशा खुश नहीं रह सकता। जीवन में दुःख आते ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का दबाव में आना स्वाभाविक है। इस दबाव से सामाजिक मदद के द्वारा छुटकारा पाया जा सकता है। सामाजिक मदद का अर्थ परिवार, पड़ौसी, रिश्तेदार, साथी कर्मचारी, आदि की ओर से प्राप्त मदद से है। प्रत्येक व्यक्ति को इन सभी की जरुरत होती है ताकि वह अपने दुःख के पल इनके साथ बांट सके। यदि उसे यह मदद प्राप्त हो जाए तो वह निश्चित ही दबाव से बाहर आ जाएगा। इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज के विभिन्न अंगों से संबंध बनाकर रखने चाहिए ताकि समय आने पर वे काम आ सके। इसके अतिरिक्त भगवान की शरण में जाने से भी व्यक्ति को मानसिक मजबूती प्राप्त होती है और उसे दबाव से छुटकारा मिलता है।

(झ) **वास्तविक लक्ष्यः** प्रायः देखा जाता है कि लोग इतने ऊँचे लक्ष्य निर्धारित कर लेते है जिन्हें प्राप्त करना असंभव होता है। जब ये लक्ष्य प्राप्त नहीं होते तो वे दबाव में आ जाते है। अतः हमे ऐसे लक्ष्य निर्धारित नहीं करने चाहिए जिन्हे प्राप्त करना संभव न हो। यदि गलती से ऊँचे लक्ष्य निर्धारित हो जाते हैं तो उन्हें समय पर संशोधित कर लेना चाहिए। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि प्राप्त करने योग्य लक्ष्य निर्धारित करके हम दबाव से छुटकारा पर सकते हैं।

(ण) **मालिशः** शरीर की मालिश करवाने से मांसपेशियों को आराम मिलता है। नींद अच्छी आती है। परिणामतः दबाव कम होता है।

(ii) **संगठन से संबंधित पद्धतियां**

अनेक ऐसे संगठनात्मक तत्व है जिनके कारण कर्मचारी दबाव में आ जाते हैं इन तत्वों में नीतियां, नियम, प्रक्रियाएं, संगठन ढांचा, अधिकार, उत्तरदायित्व, आदि प्रमुख हैं। जब ये सभी तत्व कर्मचारी की इच्छा के विपरीत होते हैं तो वे दबाव में आ जाते हैं। अतः व्यक्तिगत स्तर के साथ – साथ संगठन स्तर भी कर्मचारियों को दबाव से बाहर निकालने के प्रयास किए जाने चाहिएं। संगठन स्तर पर किए जाने वाले मुख्य प्रयास निम्नलिखित हैंः

(क) **कार्य सम्पन्नताः** कार्य सम्पन्नता का अर्थ कार्य के महत्व को बढ़ाने से है। अर्थात, ऐसी जॉब जिसमेंः

- अधिकार, उत्तरदायित्व एवं चुनौतियों का क्षेत्र विस्तृत हो,
- उच्च–स्तरीय ज्ञान एवं अनुभव की जरुरत हो,
- व्यक्तिगत विकास के अवसर उपलब्ध हों,
- निर्णय लेने का स्वतन्त्रता हो।

कर्मचारी इस तरह की जॉब प्राप्त करके गर्व महसूस करते है और उनकी काम में रुचि बढ़ती है। इस प्रकार कार्य सम्पन्नता से कर्मचारियों के दबाव को कम किया जा सकत है।

(ख) **प्रशिक्षण देनाः** प्रत्येक कर्मचारी चाहता है कि वह अपने काम में निपुण हो। कर्मचारियों की इस भावना का ध्यान रखते हुए उनके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। फलस्वरुप, वे अपने काम में निपुणता प्राप्त कर लेंगे और उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। उनकी संगठन में पहचान बनेगी। इस प्रकार से वे खुश रहेंगे और दबाव उनके नज़दीक नहीं आएगा।

(ग) **प्रबंध में भागीदारीः** प्रायः देखा जाता है कि कर्मचारियों को यह स्पष्ट नहीं होता कि संगठन में उनकी क्या भूमिका है। फलस्वरुप, वे दबाव में रहते हैं। इसका कारण है उनकी प्रबंध अथवा नियमों में भागीदारी बना लिया जाए तो इससे तीन लाभ प्राप्त होंगेः

(क) प्रथम, कर्मचारी गर्व महसूस करेंगे।

(ख) द्वितीय, उन्हे संगठन में अपनी भूमिका स्पष्ट हो जाएगी।

(ग) तृतिय, वे निर्णयों को दिल से लागू करेंगे और उनका विरोध नहीं करेंगे।

इस प्रकार निर्णयों में उनकी भागीदारी से उन्हें स्पष्ट हो जाएगा कि संगठन को उनसे क्या अपेक्षाएं हैं। उनकी कार्यकुशलता बढेगी। वे संतुष्ट रहेंगे और दबाव का डटकर मुकाबला करेंगें।

(घ) **स्वतंत्र संदे□वाहनः** स्वतंत्र संदेशवाहन दबाव से छुटकारा पाने का महत्वपूर्ण माध्यम है। स्वतंत्र संदेशवाहन के अंतर्गत सभी कर्मचारी खुले दिमाग से दूसरों की बात सुनते भी हैं और अपनी बात कहते भी है। अतः आदेशों, सुझावों, शिकायतों, आदि का आदान–प्रदान स्वतंत्रता पूर्वक होता है। ऐसी स्थिति में सभी अस्पष्टताएं दूर हो जाती हैं और कर्मचारियों को दबाव से राहत मिलती है।

(ङ) **सही चयनः** अकुशल चयन प्रक्रिया से दबाव बढ़ता है। यदि कर्मचारी का उनकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार काम नहीं दिया जाएगा तो उनकी कार्यकुशलता कम हो जाएगी। वे दबाव महसूस करेंगें अतः कर्मचारियों का चयन करते समय जॉब की आवश्यकताओं को ध्यान रखना चाहिए। ऐसे में उनकी प्रत्येक जॉब पर योग्य व्यक्ति ही नियुक्त करना चाहिए। ऐसा करने से कर्मचारी जब काम पर आएंगे तो संतुष्ट रहेंगे न कि दबाव में।

(च) **प्रभावी पारितोशिक पद्धतिः** यदि कर्मचारियों के काम को पहचाना जाए और उन्हें उचित पारितोषिक दिया जाए तो उनको दबाव से राहत मिलेगी। अतः जो कर्मचारी बढ़िया काम करते हैं, उन्हें पारितोषिक अवश्य मिलना चाहिए। ऐसा करने से उनकी कार्यकुशलता बढ़ेगी और वे दबाव मुक्त रहेंगे।

(छ) **कैरियर बढ़ोतरी अवसरः** जब कर्मचारियों को लगता है कि उन्हें कैरियर बढ़ोतरी के अवसर उपलब्ध नहीं हो रहे हैं तो वे दबाव में आ जाते हैं। वे महसूस करते हैं कि उनकी क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। वे अपनी जॉब के प्रति उदासीन होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें कैरियर बढ़ोतरी के अवसर प्रदान किए जाएं तो वे दबाव से बाहर आ सकते हैं। हर कर्मचारी चाहता है कि उनकी पदोन्नति के लिए अधिक कार्यकुशल होना जरुरी है। एक कर्मचारी कार्यकुशल तभी बन सकता है जबकि उसे प्रशिक्षण एवं विकास की सुविधाएं उपलब्ध हों। अतः ये सुविधाएं उपलब्ध कराकर कर्मचारियों की पदोन्नति का रास्ता साफ किया जा सकता है। पदोन्नति के अवसर प्राप्त होते ही कर्मचारी खुश हो जाएंगे और स्वयं को दबाव मुक्त महसूस करेंगे।

(ज) **कर्मचारी भलाई स्कीमः** अनेक ऐसी कर्मचारी भलाई स्कीमें है जिन्हें लागू करके उनके दबाव को कम किया जा सकता है। इन स्कीमों का उद्देश्य कर्मचारियों की गंदी आदतें छुड़वाना है। उदाहरण के लिए, शराब, धूम्रपान, बेईमानी, कामचोरी, आदि मुद्दों पर विशेषज्ञों के लैक्चर करवाए जा सकते हैं। विशेषज्ञों की मदद से उन्हें उनके अधिकार एवं कर्तव्यों का पाठ पढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कम्पनी की ओर से अग्रिम शिक्षा, सेहत व दवाइयों आदि की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसा करने से कर्मचारी को लगेगा कि कम्पनी उनमें रुचि ले रही है। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। वे अधिक कार्यकुशल होंगे और दबावमुक्त रहेंगे।

(झ) **उपयुक्त नीतियांः** संगठन को सुचारु रुप से चलाने के लिए नितियों का निर्धारण किया जाता है। यदि नीतियां कर्मचारियों की अपेक्षाओं के विपरीत हैं तो वे दबाव में आ जाते हैं। इस तरह के दबाव को समाप्त करने के लिए नीतियों का उपयुक्त होना जरुरी है। ऐसी नीतियां बनाई जाएं जो दोनों पक्षकारों को मान्य हो। यदि मजबूरी में कोई विपरीत नीति बनानी भी पड़े तो ऐसा कर्मचारियों को विश्वास में लेकर करना चाहिए। इससे वे दबाव में नहीं आएंगे।

(ण) **सरल प्रक्रियाएंः** प्रत्येक संगठन में अनेक प्रक्रियाएं (जैसे– निर्णयन, संदेशवाहन, नियंत्रण, आदि) काम करती है। यदि ये प्रक्रियाएं अस्पष्ट व कठिन हैं तो कोई भी काम समय पर नहीं हो सकेगा और कर्मचारी दबाव में आ जाएंगे। अतः संगठन में लागू सभी प्रक्रियाएं स्पष्ट व सरल होनी चाहिएं। ऐसा न करने से हर व्यक्ति उनको समझ सकेगा और उनका पालन करेगा। परिणामतः उनकी कार्यकुशलता बढ़ेगी और वे दबाव मुक्त होंगे।

सारां�

विवाद विद्यमान परिस्थितियों की समीक्षा हेतु तथा सम्बद्धतः पक्षकारों को स्वीकार्य श्रेंष्ठ विकल्पों के सृजन हेतु अवसर की व्यवस्था भी करते हैं। यद्यपि एक विवाद किसी व्यक्ति की भावनात्मक प्रसन्नता को अवरुद्ध कर सकता है फिर भी यह व्यक्तिगत विकास में एक धनात्मक घटक भी हो सकता है। यह एक चुनौतीभरी भावना पैदा कर सकता है। विवाद तथा समस्याएं प्रगति का मूल्य होते हैं। इसलिए विवाद अनिवार्यतः हतोत्साहक नही होते वरन उनके प्रति रूझान ऐसा हो सकता है यदि उचित रुप से संभाला जाए तो वे संगठन को उसके उद्देश्यों को पाने में सहायतार्थ सृजनात्मक समस्या समाधान परिस्थितियां प्रदान कर सकते हैं। परम्परागत प्रबन्ध सिद्धांत विवादों को

आंतरिक तौर पर बुरा तथा नुकसानदेह मानते है तथा उनको दबाने की सिफारशें करते हैं लेकिन आज यह विचार ठीक नहीं माना जाता। विवाद संगठनों में अपिरहार्य है जो भी श्रमिकों के अलग–अलग दृष्टिकोण, जीवन मूल्य तथा रुझाान होते हैं। यही नहीं, एक विवाद कुल मिलाकर बुरा नहीं होता। उसमें सृजन के तत्व भी होते हैं। अतः जोर इस बात पर दिया जाना चाहिए कि नुकसान भरा मानकर लड़ने के स्थान पर सुधार हेतु उनका उपयोग किया जाए। परस्पर विरोधी पक्षकारों को हार–जीत की लड़ाई के स्थान पर समस्या समाधान के रुप में विवाद को देखना चाहिए। हार–जीत की प्रवृत्ति अराजकता पैदा करती है। वह रचनात्मक समाधानों की सभावना ही मिटा देती है। आज के प्रतियोगितावादी व तेज गति से चलते युग में प्रत्येक व्यक्ति दबाव में है। दबाव का अर्थ उस शारीरिक तनाव से है जो एक व्यक्ति वातावरणीय घटकों के संपर्क में आने के फलस्वरुप महसूस करता है। हम जिस वातावरण में रहते हैं उसमें अनेक ऐसे घटक हैं जो हमें प्रभावित करते हैं। जैसे –परीक्षा नज़दीक आती देख विद्यार्थी दबाव में आ जाते हैं, क्योंकि अब उन्हें अधिक पढ़ना होगा। इसी प्रकार तकनीकी परिवर्तनों से कर्मचारियों पर कुछ नया सीखने का दबाव आ जाता है। एक अन्य उदाहरण के अनुसार, जब–जब हमारी आवश्यकताओं हमारे पास उपलब्ध संसाधनों से अधिक होती है तब–तब हम दबाव महसूस करते हैं।

दबाव के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जरुरी नही कि यह हानिकारक ही हो। इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव होते हैं।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्र󠀠न

प्र.1 संघर्ष क्या है? भूमिका सघर्ष के क्या कारण हैं? भूमिका संघर्ष को टालने की तकनीकों की व्याख्या कीजिए।

प्र.2 संघर्ष के स्तर क्या हैं? इन स्तरों पर संघर्ष के क्या कारण हैं

प्र.3 संघर्ष के प्रबन्ध की विकल्प विचारधारा के विश्लेषण दीजिए।

प्र.4 कुछ व्यक्ति कहते हैं कि विवाद एकदम बुरे होते हैं, जबकि कुछ अन्य का विश्वास है कि संगठनों में किसी हद तक विवाद वांछनीय है। आप किस मत का समर्थन करते हैं तथा क्यों?

प्र.5 विवाद से आप क्या समझते हैं? एक संगठन में विभिन्न प्रकार के विवादों के कारणों को समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.6 भूमिका संघर्ष से आप क्या समझते हैं? उदाहरण दीजिए।

प्र.7 परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष का कोई उदाहरण दीजिए।

प्र.8 अंतवैयक्तिक संघर्ष के क्या उच्चस्तरीय घटक हैं?